श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

ज्ञानार्णव प्रवचन

प्रथम व द्वितीय भाग

मूल रचियता :

पूज्य पाद श्री शुभ चन्द्राचार्य

प्रवक्ता .

अध्यात्म योगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी

"श्री मत्सहजानन्द" महाराज

सम्पादक

पवन कुमार जैन ज्वैलर्स सदर मेरठ

प्रकाशक

खेमचन्द जैन, सर्राफ

मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्र माला

१८५-ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

तीय वृत्ति ११००] १९८३ [मूल्य १० रुपये लाग

संपादकीय

परम शान्तिप्रद ज्ञानार्णव नामक यह एक पवित्र ग्रन्थ है। इसका दूसरा नाम योगार्णव भी है इस ग्रन्थ मे योगीश्वरो के आचरण करने योग्य व जानने योग्य सम्पूर्ण जैन सिद्धान्त का रहस्य भरा हुआ है। जैनियो का यह अद्वितोय ग्रन्थराज है।

इस ग्रन्थराज के मूल रचियता पूज्यपाद श्री शुभचन्द्राचार्य है। जोकि शतकत्रय के कर्त्ता राजर्षि भर्तृहरि के बडे भाई थे। विद्वानो ने इतिहास के आधार पर आचार्य शुभ चन्द्र का समय ईसा को ११वी शताब्दी निश्चित किया है। धाराधीश राजा भोज का भी यही समय माना जाना है।

इस महान् ग्रन्थराज को एक दो सस्कृत टोकायें तथा कुछ हिन्दी टोकायें भी हुई है। उनमे कुछ अनुपलब्ध हैं। जनसाधारण के हित की उत्कट इच्छा हृदय मे रखते हुये पूज्य अध्यात्म योगी श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' महाराज ने इस ग्रन्थराज पर प्रवचन किये हैं। महाराज श्री की प्रवचन शैली अत्यन्त सरल एव सुबोध होती है। जन-साधारण से लेकर सिद्धान्त व साहित्य के मर्मज्ञ भी महाराज श्री के प्रवचनो से लाभ लेते रहे हैं। महाराज श्री ने कुल मिलाकर लगभग ५०० ग्रन्थ लिखे है। जिनमे से लगभग ३०० ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुके हैं। आशा है कि आत्महित चलने वाले ज्ञान पिपासु इन प्रवचनो से अवश्य ही लाभान्वित होगें।

यह ग्रन्थ वास्तव मे ज्ञान का समुद्र है। सस्कृत मे 'अर्णव' शब्द का अथ सागर या समुद्र होना है। तो यह कहना अतिशयोक्ति न होगो कि आचार्य प्रवर श्री शुभचन्द्र जो महाराज ने इस ग्रन्थ को ज्ञान का समुद्र रूप प्रदान करके 'ज्ञानार्णव' नाम ठीक ही रखा है।

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला सदर मेरठ इस प्रकार के प्रवचनो के प्रकाशन मे सतत प्रयत्नशील है। भविष्य मे भी इसी प्रकार के प्रवचन आपको सुलभ होते रहेंगे।

निवेदक
पवन कुमार जैन ज्वैलर्स
सदर मेरठ (उ प्र)

प्रथम भाग

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्याय तीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी
'सहजानन्द' महाराज

ज्ञानलक्ष्मीघनाश्लेषप्रभवानन्दनन्दितम् ।
निष्ठितार्थमज नौमि परमात्मानमव्ययम् ॥१॥

परमातत्त्वको नमस्कार—ज्ञानरूपी लक्ष्मी के दृढ आश्लेषसे उत्पन्न हुए आनदसे जो नदित है, निराकुल है, समृद्ध है, कृतकृत्य है, अजन्मा है, अविनाशी है—ऐसे परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। इस ग्रन्थका नाम ज्ञानार्णव है। अर्णवका अर्थ है समुद्र, ज्ञानार्णवका अर्थ है ज्ञानरूपी समुद्र। इस ज्ञानार्णव नामक ग्रथके कर्ता पूज्य श्री शुभचद्र आचार्य हैं। वे इस ग्रथके आदिमे मगलाचरण भी ज्ञानशब्द से शुरू कर रहे है। इस मगलाचरणमे कितनी दार्शनिक दृष्टिया भरी है, जो पढनेमे तो सीधा लग रहा है, किंतु अनेक दार्शनिक दृष्टिया इसमे हैं।

ग्रन्थकर्ताका परिचय व वैराग्य—शुभचन्द्र और भर्तृहरी ये दोनो राजपुत्र थे। किसी समय इन दोनोमे भर्तृहरीको वैराग्य हुआ और उन्होने सन्यासपद धारण किया। शुभचद्र को वैराग्य हुआ और उन्होने दिगम्बरी दीक्षा धारण की। दोनों तपस्यामे जुट गये। भर्तृहरी सन्यासीको तपस्याकी सिद्धिमे एक ऐसा सिद्धिरस सिद्ध हो गया, जिससे तांबेको स्वर्ण बनाया जा सके। शुभचन्द्राचार्यने केवल आत्मसाधनामे अपना समय लगा दिया। एक समय भर्तृहरीको अपने भाई शुभचद्रकी चिता हुई कि अकेले वनमे क्या करते होंगे और सुना भी है कि उनके साथ कोई शिष्य भी नही है तो भर्तृहरीने एक तूमाभर सिद्धिरस एक शिष्य द्वारा शुभचद्र के पास भेजा और कहा कि हमारे भाई शुभचद्र वनमे तपस्या कर रहे है, उन्हे यह दे आना और इसकी तारीफ भी बता देना। शिष्य पहुँचा शुभचद्राचार्य के पास और निवेदन किया कि आपके भाई भर्तृहरीने यह सिद्धिरस भेजा है, इससे लोहा ताम्बा आदि को मनमाना स्वर्ण बनाया जा सकता है। उसे शुभचन्द्राचार्यने हाथमे लेकर जमीन पर उस तूमेको पटक दिया। शिष्यने जाकर भर्तृहरीसे कहा कि महाराज ! उस सिद्धिरसको तो उन्होने जमीन पर पटक दिया।

ग्रथकर्ताकी सिद्ध सिद्धि—अब भर्तृहरी स्वय गये और अपने भाई शुभचन्द्राचार्यकी स्थिति देखकर उनके मनमे खेद हुआ कि ये कितने तकलीफमे है, कोई भी इनके साथ नही

है, वस्त्र तक भी नही रख सक रहे हैं। तब भर्तृहरिने कहा—भाई अब तुम क्लेश मत उठावो। हमे यह सिद्धरस सिद्ध हुआ है, इससे मनमाना लोहा, ताबाका भी स्वर्ण बना लो। तब शुभचन्द्रने उस तूमीको एक पत्थरकी शिलापर पटक दिया और कहा कि इस सिद्धिरससे यह पत्थर तो स्वर्ण नही हो सका। अब भर्तृहरीको खेद हुआ कि मैंने १२ वर्ष तपस्या करके इस सिद्धिरसको पाया था और इस तूमीभर सिद्धिरसको जमीन पर पटक कर भाईने कोई बुद्धिमानीका काम नही किया। भर्तृहरीने कहा आपने हमारा यह सारा परिश्रम व्यर्थ किया। यदि आपको हमारी कलापर विश्वास न था तो पहिले ही बता देते। मैं ऐसा जानता तो क्यो अपना सिद्धिरस इस तरहसे जमीनपर लुढकाकर व्यर्थ करा देता। आपमे यदि कला हो तो आप अपनी कला दिखावें। अब शुभचन्द्राचार्यने बहुत समझाया कि अरे! तुमको यदि स्वर्णकी इच्छा थी तो राज्यपदमे कौनसी कमी थी, क्यो छोडकर यहां आये? और उसको प्रतिबोध करानेके लिए शुभचन्द्राचार्यने अपने पैरोके नीचेकी धूल उठाकर उस पर्वतके उस शिलाखण्ड पर डाली तो वह शिलाखण्ड स्वर्ण हो गया। भर्तृहरीको बड़ा आश्चर्य हुआ, तब शुभचन्द्रने एक बडा उपदेश दिया और यह ग्रथ बनाया।

प्रभुकी ज्ञानश्री—यह ज्ञानार्णव ग्रथ सभी ससार सकटोकी समस्यावोका समाधानोको करता हुआ बारहों भावनाओका बोध करानेके लिये लिखा है। इस मंगलाचरणमे जो उत्तर दिया है उस पर कुछ गम्भीर दृष्टि दें। ज्ञानलक्ष्मीके घन आश्लेषसे जो आनन्द सम्पन्न हुआ, उससे ये परम आत्मा समृद्ध है। प्रथम तो इसमे यह बात घटित हुई कि जैसे बहुतसे लोग अपनी कल्पनासे माना करते है कि भगवान और भगवती ये दोनो साथ रहते हैं। देखो यहा लोग कहते हैं ना कि पण्डित पण्डितानी, मास्टर और मास्टरनी—ऐसे ही कुछ लोग भगवान और भगवती भी बोला करते हैं। भगवान और उनकी स्त्री भगवती—ऐसा कहा करते है, पर वास्तव मे भगवान कौन है और भगवती कौन है? इसको समझो। जो ज्ञानलक्ष्मी है, वह तो है भगवती। भगवत इय इति भगवती"—जो भगवान की चीज हो, उसे भगवती कहा है। कहा है ना कि परमात्मा इस ज्ञानलक्ष्मीके घन सबन्धसे आनन्दित है। यह ज्ञानरूपी भगवतो भगवानका स्वरूप है, उससे अलग अन्य कुछ चोज नही है। किसी समय चाहे रूपक दिया गया हो, पर उसे न समझनेके कारण फिर लोगोने उसका सीधा ही अर्थ लगा डाला—क्या? ये भगवान हैं और इनके सग जिसका विवाह हुआ, वह उनकी भगवती है और उनके स्त्री पुरुषके रूपमें लोगोने फोटो भी बना दिये है। पर भगवानकी जो शक्ति है, भगवानका जो स्वरूप है,

वही भगवानकी लक्ष्मी है और उस लक्ष्मीसे प्रभु तन्मय रहा करते हैं।

परमात्माके ज्ञान लक्ष्मीका घन आश्लेष—कुछ शब्दोके शब्दार्थसे भी यही बात पावेगी। लोग कहा कहते है कि राधेश्याम। राधा शब्द बना है राधृ धातुसे, जिसका अर्थ है आत्मसिद्धि और श्यामका अर्थ है काला अर्थात् जो कर्मशत्रुको नष्ट करने के लिये प्रचण्ड हो। अथवा श्यामवर्ण वाला कोई हो—नेमिनाथ हुए, पार्श्वनाथ हुए या जो जो भी मोक्ष पधारे हैं, वे श्याम राधामे तन्मय थे अर्थात् आत्मसिद्धिसे वे परमात्मा जुड़े हुए थे। मन-चाहे किसी भी रूपमे भगवान और भगवती लोग मानते है, किंतु भगवान तो शुद्ध परमात्मतत्त्व है और भगवती उनकी ज्ञानलक्ष्मी है, इसकी जब एकता हो, ज्ञान और ज्ञाता मे भेद न रहे। इतने सम्बन्धकी एकता होनेपर जो आनन्द उत्पन्न हो, उस आनदसे ये परमात्मा तृप्त है और इसी कारण वे निष्ठितार्थ है, कृतकृत्य हैं।

प्रभुकी ज्ञानानदस्वरूपता—कुछ दार्शनिक लोग प्रभुमे आनंद गुण नही मानते। उनका मतव्य है कि वुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, सस्कार—ये सभीके सभी नष्ट हो जायें, उसका नाम मोक्ष है। ये ९ चीजे जब तक रहती है, तब तक जीव ससार मे भटकता है और इन ९ का विनाश हो, तब मोक्ष मिलता है। जब इन सबका अभाव हो जाय, तब भगवानका मोक्ष हुआ समझिये— ऐसा उन दार्शनिकोने कहा है। इसमे परभावका अभाव हुआ यह तो ठीक है, किन्तु इसके साथ ज्ञान व आनदके अभावको कह डाला, इस अवमतके प्रतिपक्षमे प्रथम विशेषणमे यह बात दिखायी है कि प्रभु आनदमग्न है और ज्ञानशून्य भी नही हैं। ज्ञान और आनद तो परमात्माका स्वरूप है।

जगमगरूपता—जैसे प्रत्येक वस्तु जगमगस्वरूप है—ऐसे ही परमात्मा जगमगस्वरूप है। पदार्थमे कोई नवीन विकास होता है, उत्पाद होता है, वह तो पदार्थका जगरूप है और जो पर्याय विलीन हुई है, वह उस पदार्थका मगरूप है। जो भी पदार्थ परिणमता है, उस पदार्थमें जग और मग होता रहता है। जग मायने वृद्धि और मग मायने अन्तर्यमन। यह जीव प्रतिसमय ज्ञान और आनदस्वरूप है। ज्ञानके प्रतापसे यह जीव जगरूप रहता है और आनदके प्रतापसे यह जीव मगरूप रहता है। ज्ञानमे जगना होता है और आनंदमे मग्नता होती हैं, यो ज्ञान और आनद प्रभुका सहजस्वरूप है। इसही विश्लेषणमे यह भी बात आ गयी कि ज्ञानका और परमात्माका घन आश्लेष तादात्म्य है, एकता हो जाती है। इसमे जो लोग ज्ञानको पृथक मानकर ऐसे ज्ञानके समवायसे आत्माको ज्ञाता मानते हैं उस भेद भावका निराकरण हो जाता है।

कृतकृत्यता—यह प्रभु इस ज्ञानानन्द परिणतिके कारण कृतकृत्य है, निष्ठितार्थ है।

निष्ठितार्थका अर्थ है सम्पूर्ण हो गये हैं प्रयोजन जिनके और कृतकृत्यका अर्थ है जो कुछ करने योग्य था सो कर लिया है, अथवा पर पदार्थोंमे जो अज्ञान अवस्थामे करनेका भाव बना रहता था, अब ज्ञान का उदय होने पर, स्वतन्त्रता स्पष्ट विदित हो जानेसे अब उनमे करनेका भाव नही रहा। यह भी कृतकृत्यता का रूप है। वास्तवमे काम सम्पूर्ण किया हुआ तब कहलाता है जब उसके बारेमे कुछ करनेको नही पडा रहता है। कोई सा भी आप काम करे वह काम पूर्ण हुआ कब कहलायेगा ? जब उसके लिये कुछ करनेको रहा नही। तो जिस महात्माको ऐसा उज्जवल ज्ञान उत्पन्न हुआ है जिस ज्ञानके कारण अब उनको जगत्के किसी परपदार्थमे करनेको कुछ नही रहा है तो यही कृतकृत्यपना है। ऐसा यह परमात्मा निष्ठितार्थ है।

निष्ठितार्थ विशेषणसे प्रभुके लोककर्तृत्वका खण्डन—इस विशेषणसे इस मतव्यका निराकरण होता है जो मतव्य यह मानते हैं कि प्रभु हम सबको बनाते है, इस शरीर की रचना करते है, इस जगतको रचते रहते है। वे इस युक्तिको जान लेवें कि जो जगत्को रचते रहने वाले या किसी भी थोडेसे कार्यविभागको रचने वाले पुरुष है वे निराकुल नही कहला सकते है। हा भले ही यह बात हो कि किसी बडे गडबड कामको न रचकर कम गडबड कामको रचे तो उसमे यह जीव कुछ सन्तोष और विश्राम मानता है लेकिन वस्तुतः किसी भी पदार्थके सम्बन्धमे कुछ भी करने का काम पडा हो, विकल्प चलते हो तो वह परमार्थ निराकुलताकी स्थिति नही है। निष्ठितार्थ शब्द कहनेसे यह ध्वनित होता है कि ये प्रभु सयोगकेवली अब निष्ठित होने पर कृतकृत्य हुए हैं। इन सयोगकेवलीको किसी भी परपदार्थमे कुछ भी करनेको नही रहा, जो कुछ करने योग्य कार्य था सो कर लिया, अब ये कृतकृत्य हैं।

परमात्माकी अजता—परमात्मा अज है। कुछ लोग तो परमात्माकी उत्पत्ति बताते हैं और परमातमा बारबार उत्पन्न होते रहते हैं अवतार लेते रहते हैं, अवतार का अर्थ है उतरना। किसी बडी जगहसे उतरनेको अवतार कहते हैं। किसी बडी उत्कृष्ट दशासे उतरकर इस ससारमे जन्म लेनेको अवतार कहते हैं। किसी घटनामे सही, प्रभुका तो जन्ममान लिया गया किसीमा बापसे पैदा हुए मान लिया। किसी घटनामे जन्म ले लिया अथवा किसी ढगसे या भूलसे उत्पन्न हो गए, किसी भी रूपमे परमात्माको उत्पन्न हुआ मानते हैं कुछ मतव्य, लेकिन परमात्मा ही क्या, जगतमे जो भी पदार्थ हैं, कोई भी पदार्थ किसी भी समय नया उत्पन्न हुआ हो ऐसा है ही नही। यह आत्मा सत् भी कभी उत्पन्न हुआ ऐसा नही है। प्रकृतमे फिर यह बात कही जा रही है कि परमात्मा हो चुकनेके बाद फिर उन्हे जन्म नही लेना

पडता है, ऐसे अजन्मा परमात्माको नमस्कार किया जा रहा है।

परमात्मत्वकी अव्ययता--यह परमात्मा अव्यय है, अविनाशी है। व्यय अर्थात् विनाश भी परमात्मत्त्वका हो जाता है ऐसा कुछ लोग मानते हैं। मुक्त होनेके बाद वह पूर्ण अधिकारो नही है कि ऐसा मुक्त सदा रहे। हा चिरकाल तक वह मुक्त रहा करता है फिर अल्पकाल बीतनेके बाद फिर उनको नीचे जन्म लेना पड़ता है और जैसे यहा जीवलोक की रचना है उसी रचनामे रहना पडता है, फिर कभी उनसे बन जाय तो फिर उनकी मुक्ति कुछ कालके लिये है। ऐसी मुक्तिको तो नवग्रैवेयक का निवास समझ लो। नवग्रैवेयक स्वर्गसे ऊपर ऊर्ध्वलोकमे होता है, वहा अधिकसे अधिक ३१ सागर तक ही वह सुख भोगता है, उनकी स्थिति अप्रवीचार है, कामवासनासे रहित है, वे मदकषायी है, इनमे कुछ देवता लोग सम्यग्दृष्टि भी होते हैं, कुछ देवता मिथ्यात्वके आशय वाले भी होते हैं। तो जैसे ग्रैवयेक एक निवास है, वैसा ही वैकुण्ठ समझिये। जितने काल तक वहां निवास है सुखके लिये है जहा कई हजार वर्षोमे तो कुछ रच भूख लगती है सो कठसे अमृत झडता है, उससे उनकी क्षुधा शान्त हो जाती है और कई पक्षोमें कई पखवारो मे उनका श्वासोच्छवास होता है। जल्दी-जल्दी श्वास निकालने व लेनेमें वेदना होती है। उन देवताओका ऐसा अद्भुत शरीर है कि कई पखवारोमे श्वासोच्छवास होता है। यहाके लोगोसे विलक्षण सुख होनेके कारण लोग उसे मुक्ति जैसा रूप दे दिया करते है और नाम भी उसका वैकुण्ठ है। ग्रैवेयक कहो या वैकुण्ठ कहो। लोककी रचनामे जिस जगह ग्रैवेयक है वह इस लोकका कठस्थान है, वहासे ये देव अपनी आयु पूरी करके जन्म लिया करते हैं। ये ससारी ही जीव है, मुक्त नही हुये। मुक्त होनेके बाद ऐसा जन्म नही होता है।

ज्ञानानन्दस्वरूपताके कारण परमात्माकी उपासनीयता—मुक्त होने पर अद्भुत और असीम आनन्द रहता है, ऐसा मुक्तिका कार्य बन जाना सबके सुगम नही है, बड़े ज्ञानयोगपूर्वक बडी अत तपस्याकी साधनासे यह बात प्रकट होती है। ऐसे अविनाशी परमात्माको शुभचन्द्राचार्य ग्रन्थके मगलाचरणमे नमस्कार कर रहे है। इसमे एक स्पष्ट बात यह भी आयी कि परमात्मा हैं, अवश्य हैं, न हो तो अवस्तुको कौन नमस्कार करता है और फिर दूसरे सभी लोगोकी ऐसी प्रकृति बनी है कि कोई कष्ट आये तो वे परमात्माको किसी रूप मे स्मरण कर लेते हैं। परमात्मा ज्ञानानन्द स्वरूप ही हैं तभी वे उपासनीय हैं।

आत्मा व परमामाकी समझ—राजा अपने दीवानके घरके सामनेसे निकला और बोला ऐ दीवान! तुम आत्मापर विश्वास करते हो सो तुम बतलावो क्या आत्मा है और

क्या परमात्मा है ? दीवानने कहा महाराज आप घोडेसे उतर आवो, आध पौन घटे तक बैठो, तब हम बतलावे कि आत्मा क्या है और परमात्मा क्या है ? राजा बोला कि हमारे पास इतना अवकाश नही है, हमे तो तुम १० मिनटमे समझा दो। दीवान बोला महाराज हमारा कसूर माफ हो तो हम १० मिनट तो क्या १ मिनट मे समझा देंगे कि आत्मा क्या परमात्मा क्या है ? राजा बोला—अच्छा तुम्हारा कसूर माफ। तुम समझा दो कि आत्मा क्या है और परमात्मा क्या है ? दीवान तन्दुरुस्त तो था ही, सो क्या किया कि राजाके हाथमे जो कोडा था उसे छीनकर चार पाच कोडे राजाके जमा दिये। राजा कहने लगा, अरे रे रे भगवान ! दीवान बोला देखो राजन् ! जो अरे रे रे करता है वह तो है आत्मा और जिसे तुम भगवान कहते हो वह है परमात्मा। तो भगवानका किसी न किसी रूपमे सभी लोग स्मरण करते हैं।

प्रभुका लोकान्तनिवास व विशेषण सार्थक्य—लोग ऊपरको मुह करके भगवानका स्मरण करते है। यह बुद्धि सबके जगी है कि भगवान ऊपर रहा करता है। और वह भगवान कहा तक रहेगा ? थोडा ऊपर रहेगा तो उससे ऊपर जो जीव होंगे उनसे वह भगवान नीचे हो गया। तो उस भगवानको कितना ऊपर रहना चाहिये सर्वसे ऊपर रहना चाहिये। सर्व जीवो के ऊपर तीन लोकके शिखर पर उनको रहना चाहिये। सो प्रभु सिद्ध लोकमे विराजते हैं। ऐसे इन ज्ञानानन्दस्वरूप कृतकृत्य अविनाशी परमात्माको नमस्कार किया है। यो सभीके सभी विशेषण बहुत-बहुत महत्व रख रहे है जिनके स्मरण करनेसे हम परमात्मतत्त्वके वास्तविक स्मरण पर पहुँच सकते है। वे ही विशेषण इस श्लोकमे कहे गये हैं। सीधा अर्थ यह है कि जो ज्ञानपुञ्ज है, आनन्दमग्न हैं, जिन्हे करनेको कुछ नही पडा है, और कभी मरेंगे नही, जो कभी शरीर धारण करेंगे नही, ऐसा सच्चिदानन्दस्वरूप जो परम आत्मतत्त्व है उस परम आत्मतत्त्वको नमस्कार है।

भुवनाम्भोजमार्तण्ड धर्मामृतपयोधरम्।
योगिकल्पतरु नौमि देवदेव वृषध्वजम् ॥२॥

वृषभदेवको नमस्कार—प्रथम श्लोकमे परमात्मतत्त्वको नमस्कार किया है, जिसमे किसी साकार व्यक्तिका ध्यान न रखकर केवल जो स्वरूप है, शुद्ध विकास है, उसकी दृष्टि से परमात्माको नमस्कार किया है, क्योकि यही ज्ञानानन्दस्वरूप वह शुद्ध विकासरूप परमात्मतत्त्व ही एक नमस्कार करने योग्य है। नमस्कार कहते है झुकाव करनेको। हम किस ओर झुकें, कौनसा जगत्मे शरण तत्त्व है, जिस ओर झुकनेसे हमे शान्ति मिलेगी और सतोषका अनुभव होगा ? वह है परमात्मतत्त्व।

जीवकी वर्तमान परिस्थिति—यह जीव नामक पदार्थ निश्चयनयसे स्वयं ही परमात्मा है। इसका स्वरूप एक प्रतिभासका है और वह प्रतिभास असीम है, परन्तु अनादिकालसे कर्मोंसे आच्छादित होनेके कारण यह जीव अपने स्वरूपकी सुधि भूला है और बाहरी पदार्थोंके विषयोमे अटक गया है, इस कारण यह निरन्तर बेचैन रहा करता है। कदाचित पुण्योदयसे कुछ योग्य समागम मिल जाये, सुखका साधन वैभव मिल जाये, तब भी तो इससे कुछ पूरा नही पडता। प्रथम तो वैभव सुखका कारण बने, यह भी निर्णय नही है। वैभव पाकर कुछ ऐसी विचित्र कल्पनाएं जगती है कि वह वैभव दुःखका कारण बनता है, सुखका कारण बन नही पाता। और कदाचित् कल्पनावश कुछ सुख मान भी ले कोई तो आखिर वियोग तो होगा ही, उस वियोगके कालमे यह जीव दुःखी होगा, क्योकि सयोगके समयमें ममताकी, हर्ष माना। यो विविध सतापसे पीड़ित यह ससारी हो रहा है।

त्रिविधात्मत्व—जब तक इसका बहिरात्मत्व रहता है अर्थात् ज्ञानातिरिक्त अन्यभाव व परपदार्थ आत्मरूपसे दृष्टिमे रहता है, तब तक इसका नाम प्रसिद्ध शब्दोमे जीवात्मा है। जीव अनेक हैं। जो जीव कर्म काटकर सिद्ध हुये है, उनका स्वरूप जानकर और उन्ही का जैसा अपना स्वरूप जाने तो यह अतरात्मा हो जाता है, महात्मा हो जाता है। इस महात्माके सहजस्वरूपके ध्यानके आलम्बनसे कर्म मुक्त होता है, तब यही परमात्मा हो जाता है। यह बात हम आपमे मौजूद है कि परमात्मा हो सकते है, अतएव हमारा झुकाव, हमारी दृष्टि परमात्मस्वरूपकी ओर होना चाहिये, जिससे विकल्प दूर हो और सहज विश्राम मिले।

वृषध्वज श्री वृषभदेव—यो प्रथम श्लोकमे परमात्मतत्त्वको नमस्कार करके अब इस द्वितीय श्लोकमे आजके युगमे जो धर्ममार्ग चल रहा है, इसके जो आदि प्रवर्तक है ऋषभ-देव, उनको नमस्कार किया है। ये ऋषभदेव वृषध्वज है। वृष नाम धर्मका है, वह जिस की ध्वजा है, वे वृषध्वज है। वृष कहते है बैलको। जिसके जन्मसमारोहके समय ध्वजामे बैलका चिह्न हो, उसे वृषध्वज कहते है। ऋषभदेवके चरणोमे वृषभका चिह्न नजर आया जब इन्द्रकी गोदमे जन्मसमय आदिदेवको शचीने दिया और उन्होने अपनी ध्वजामे वृषभ का चिह्न घोषित कर दिया, तबसे ऋषभदेवका चिह्न वृषभ प्रसिद्ध हो गया। जिस ऋषभ देवने धर्मकी ध्वजा फहराई—ऐसे ऋषभदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। जो देवाधिदेव कहलाते है, जो भवनवासी, व्यतर, ज्योतिष और वैमानिक इत्यादि सभी देवो के द्वारा पूज्य है, उन देवाधिदेवको मैं नमस्कार करता हूँ।

त्रिभुवन जीवानदी—ये प्रभु तीन लोकरूपी कमलोको प्रफुल्लित करनेके लिये सूर्यकी

तरह हैं। जैसे सूर्योदय होता है तो कमल प्रफुल्लित हो जाते है, इसी प्रकार ऋषभदेवका जब जन्म होता है तो तीनो लोक प्रफुल्लित हो जाते है। जन्मकाल पर स्वर्गोमे घण्टे अपने आप बजने लगे, शङ्खध्वनि अपने आप होने लगी, इन्द्रके आसन कम्पित होने लगे, जिससे लोगोने यह जाना कि तीर्थकर प्रभुका जन्म हुआ है। यह तो केवल एक सूचनामात्र थी, पर सभी लोग प्रसन्न होकर प्रभु सेवामे आये। उनके जन्मके समय मनुष्योमे बड़ा हर्ष छा गया था। तीनों लोकके प्राणीरूपी कमलोको प्रफुल्लित करनेके लिये ये ऋषभदेव सूर्यकी तरह हुये। इस विशेषणने भगवानके जन्मकल्याणककी प्रसिद्धि की। भैया ! आप यहीकी बात देख लो कि यही किसी परोपकारी पुरुषके पुत्र हो तो घरके लोग तो प्रसन्न होते ही है, किन्तु गावके लोग भी बडी खुशी मनाते है। फिर भला जो एक मोक्षमार्गके विधाता हो, जिससे पहिले १८ कोडाकोडी सागर तक कोई धर्मका प्रसार न था, सयमकी प्रवृत्ति न थी, भोगभूमिका काल था, इतने अधिक कालके विच्छेदके वाद ऋषभदेवका जन्म हुआ सोचिये वह कितने महान् आनदका समय था ?

दीर्घकालीन धर्मविरहके बाद श्री वृषभदेवका अवतरण—आजका यह समय जो चल रहा है अवसर्पिणी काल है। इस अवसर्पिणीकालसे पहिले उत्सर्पिणीकाल था यह चतुर्थ काल जिसमे पचमकाल और छठेकालकी स्थिति गर्भित है, एक कोड़ाकोड़ी सागरके आदि मे ऋषभदेवका जन्म हुआ। इससे पहिले तीसराकाल था, उसमे २ कोडाकोडी सागरकी स्थिति है। उससे पहिले द्वितीयकाल था, जिसकी स्थिति ३ कोडाकोडी सागर है उससे पहिले प्रथमकाल था, जिसकी स्थिति ४ कोडाकोडी सागर है, यो ४ व ३ तथा २ मिलकर कुल ६ कोडाकोडी सागरकी स्थिति है। इस प्रथमकालके पहिले उत्सर्पिणीका प्रथमकाल था, यह पीछेकी ओर बता रहे है। प्रथमकालमे ४ कोड़कोड़ी सागरकी स्थिति थी, उससे पहिले द्वितीयकालमे तीन कोडाकोडीकी स्थिति थी, उससे पहिले तृतीयकालमे २ कोडा-कोड़ी सागरकी स्थिति थी, ये ६ कोडाकोडी सागर हुये। उससे पहिले चतुर्थकाल था और तीर्थकी प्रवृत्ति थी। यो १८ कोडाकोड सागरके बाद प्रथम धर्मप्रवर्तक ऋषभदेव भगवान भरतक्षेत्रमें हुये। पुण्यनिधान तीर्थंकर जैसी पुण्यप्रकृति वाले ऋषभदेवका उदय किसको हर्षकारी न हुआ होगा ?

धर्मामृतपयोधर—ये ऋषभदेव धर्मरूपी अमृत बरसानेके लिये मेघके समान है। जब ऋषभदेवप्रभु विरक्त होकर तपस्यामे लीन हुए तो उसके प्रतापसे उनको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। केवलज्ञान उत्पन्न होते ही तीर्थङ्कर प्रकृतिका उदय आ जाता है। १३ वें गुण स्थानसे पहिले तीर्थङ्कर प्रकृतिका उदय नही होता, लेकिन जिस पुण्यशाली जीवके, जिस

मोक्षगामी जीवके तीर्थङ्कर प्रकृतिका बंध हुआ है, वह प्रकृति अभी सत्तामे ही है, फिर भी ऐसी विशिष्ट प्रकृति पुण्यके साथ पड़ी हुई रहती है, जिससे गर्भकल्याणक, जन्म-कल्याणक, तपकल्याणक—ये तीन कल्याणक इन्द्र आकर मनाता है। अभी तो तीर्थकर का उदय नही है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका उदय १३वे गुणस्थानमे हुआ करता है, लेकिन जो तीर्थङ्कर होगा, जिसको तीर्थकरप्रकृतिकी सत्ता है, वह इतना पुण्यशाली होता है कि उसके गर्भमे आते ही बड़े समारोह मनाये जाया करते है। इन प्रभुने केवलज्ञानी होकर धर्मरूपी अमृतको बरसाया था। इस विशेषणसे ज्ञानकल्याणक पर दृष्टि दी गई है।

योगिकल्पतरु—ये प्रभु योगियोके लिये कल्पवृक्ष तुल्य है। योगीजनी इनका ध्यान करके, इनके कर्तव्योका स्मरण करके अपने आपमे ज्ञानज्योतिका अनुभव किया करते है। ऐसे योगिकल्पतरु ऋषभदेवस्वामीको यह मैं नमस्कार करता हू। तीर्थकर प्रभु बहुत समर्थ होते है। यद्यपि लोग यह कहते है कि जब भोगभूमिका काल था, कल्पवृक्ष सब फलरहित होने लगे थे, तिर्यञ्चोमे सिहादि जानवर हिंसक क्रूर होने लगे थे, जब आजविकाका कोई साधन न रहा था, ऐसी विकट परिस्थितिमे ऋषभदेवस्वामीने बहुत ऊंचा कार्य किया, जो कार्य सबसे नही बन सकता। सबको विधियाँ बतलाई, सबको अभयदान दिया। वह सब तो प्रभुके लिये लीलामात्रकी बात थी। क्या क्या ज्ञान दिया ? लोगोको बड़ी बड़ी विधिया बता दी, लेकिन उनके लिये तो कुछ कठिन काम न था, पर हम लोग चूकि समर्थहीन है, अतएव यह एक बहुत बड़ा कार्य लगता है। उन्होने इस लौकिक दृष्टिसे बहुत ऊंचा कार्य इस कर्म भूमिकी आदिमें किया। केवलज्ञानी प्रभु हुए, तब इनका जो वीतरागस्वरूप सर्वज्ञता का स्वरूप जो मूर्तिके रूपमे साक्षात् दर्शनमें आया करते हैं, उन प्रभुका ध्यान करके योगीजन अपने योगकी सिद्धि करते है। कल्पवृक्ष उसे कहते है कि जो चाहे सो मिल जाये। अब योगी ऋषिराज प्रभुका निरखकर क्या चाहेगे ? आत्मशाति, मोक्षमार्ग, भेदविज्ञान, आत्मरमण—ये सब बाते ऋषभदेवके ध्यानसे योगीजन प्राप्त किया करते थे। अतएव ऋषभदेवस्वामी योगिकल्पतरु है, ऐसे देवाधिदेव ऋषभदेवस्वामीको यहाँ नमस्कार किया है।

भवज्वलनसंभ्रान्तसत्त्वशातिसुधार्णव. ।
देवश्चन्द्रप्रभ पुष्यात् ज्ञानरत्नाकरश्रियम् ॥३॥

चंद्रप्रभदेवको नमस्कार—प्रथम श्लोकमें परमात्मतत्त्वको नमस्कार किया है। द्वितीय श्लोकमे ऋषभदेव भगवानको नमस्कार किया। अब इस तृतीय श्लोकमे जैसे कि लोकरुचि मे भी जनताकी अभिरुचि है अथवा एक प्रमत्तविरत अवस्थामे ही तो यह ग्रथ रचा जा

रहा है। ध्यानावस्थामे पडे हुए मुनि तो ग्रंथ नही रच पाते। सो एक विशिष्ट अत प्रभावसे अथवा आचार्यदेवका नाम शुभचद्र है तो एक चद्रप्रभका स्मरण हुआ, यो कविके अलकारमे समझकर चंद्रप्रभका स्मरण अवतरित होता है याने इस तृतीय श्लोकमे चद्रप्रभदेवको नमस्कार किया है।

संतापहारी—ये चद्रप्रभदेव भवकी अग्निसे सक्रात हुए प्राणियोको शातिरूपी सुधाके समुद्र हैं। जैसे चद्रमा समुद्रकी वृद्धि करने वाला होता है। शुक्लपक्षमे जैसे चद्रमा अपने पूर्ण विकासके साथ उदित होता है, पूर्णचद्र होता है तो उस कालमें समुद्रका पानी बढने लगता है। नदिया नही मिलती, फिर भी ऐसा योग है कि उन किरणोका सन्निधान पाकर जलमें उछाल वृद्धि होने लगती है। ऐसे ही निरखिये ये चद्रप्रभ भगवान भवके ज्वलनसे संतप्त हुए प्राणियोके लिये एक शात सुधार्णव है, शातिके समुद्र है अथवा इन प्राणियोको शातिसुधाकी वृद्धि करने वाले है। कोई जीव अग्निमें ज्वलित हो रहा हो और उसको एकाएक सुधार्णव मिल जाए, अमृतजलकी वर्षा उसपर हो जाए तो वह कितना सुखी होता है—ऐसे ही ससारके प्राणी इस भवभ्रमणकी ज्वालामे जल रहे है, भ्रम रहे हैं। इन प्राणियोकी शान्तिके लिये ये चन्द्रप्रभ भगवान सुधार्णवकी तरह है।

अभीष्टप्रार्थना—चन्द्रप्रभदेव ज्ञानरूपी रत्नाकरकी श्रीको पुष्ट करें। जैसे चन्द्र समुद्र के जलमे वृद्धि करता है—ऐसे हो चद्रप्रभ भगवानसे अपने ज्ञानवृद्धिके लिये प्रार्थना की गई है। चद्रप्रभ ज्ञानरत्नाकरकी शोभाको पुष्ट करे। रत्नाकर नाम अर्णवका है, समुद्रका है। जो रत्नो का आकर हो सो रत्नाकार। जैसे रत्नाकारमे अनेक रत्न भरे पड़े हुए हैं, ऐसे हो इस ग्रन्थमे अनेक प्रकारसे सम्बोधन किया जाएगा और जिस सम्बोधनमे ज्ञानरत्न ज्ञानकिरण प्राप्त होगी। ये चन्द्रप्रभु भगवान मेरे ज्ञानकी वृद्धिकरें अर्थात् उनके ध्यानके प्रतापसे हम विकारोसे हटकर निर्विकार चित्स्वरूपका आलम्बन ले। मोहमे प्राणी जिन परतत्त्वोका आलम्बन कर लेते हैं वे सब परतत्त्व इनके दु खके कारण बनते हैं। चाहे वह चेतन परपदार्थ हो, चाहे अचेतन परपदार्थ हो, इन परपदार्थोंके आलम्बनसे आत्माको शाति नही मिलती। एक निजआत्मतत्त्वके आलम्बनमे ही शाति है। वह ज्ञान मेरे प्रकट हो। जो ज्ञानविकारोको न ग्रहण करे, किसी परतत्त्वका आलम्बन न करे, केवलज्ञानके स्वरूपका ज्ञान करता रहे—ऐसा ज्ञान हमारेमे पुष्ट होवे।

सत्य विज्ञान—ज्ञान सच्चा वही है जो ज्ञान ज्ञानस्वरूपकी उपासना करता रहे। जो ज्ञान वाह्यपदार्थोंको विषय बनाकर उनमे रत रहता है, वह ज्ञान तो अज्ञान है। अज्ञान का अर्थ ज्ञानका अभाव नही है किंतु खोटा ज्ञान होता है। यथार्थज्ञानमे निर्विकारताकी

प्रेरणा मिलती है। निर्विकारस्वरूपका विकास ही हम आप लोगोका सच्चा वैभव है। यह वर्तमान वैभव तो तृणवत् असार है।

बाह्य अर्थोकी अनालम्ब्यता—जैसे स्वप्नमे देखी हुई चीजका कोई आधार नही, स्वप्न मे देखी हुई सारी चीजें मायामय है, यथार्थ नही है, इसी प्रकार यहाँके ये समस्त समागम असार है, मायारूप है, स्वप्नवत् है, यथार्थ नही है। जैसे स्वप्न देखने वालेको यह पता स्वप्नमे नही पडता है कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ, यह सब झूठ है, ऐसे ही आखोसे यहा जो कुछ भी दिख रहा है, उसे यह पता नही पडता है कि ये सभी बाते निराधार है, ये सभी पदार्थ मेरे आलम्बन करने योग्य नही है। किसमे अपना दिल रमाकर, किसमे अपना आत्मसतोष पानेका यत्न किया जा रहा है? बाह्यमे कुछ भी ऐसा नही है जो हमारे हितका साधन हो और आलम्बनके योग्य हो। क्यो परके आलम्बनके पीछे व्यर्थका श्रम बनाकर कष्ट उठाया जा रहा है? कोईसा राग तक भी तो वही बनकर नही रह पाता है, क्षण क्षणमे बदलता रहता है। अब वर्तमानमे किसी वस्तुविषयक राग जगा है तो थोड़े समयमे अन्यविषयक राग हुआ, यो रागका परिवर्तन होता रहता है।

आत्महितके प्रसगोमें—भैया! किसी भी परवस्तुके ग्रहणमे हमारा हित नही है क्योकि उन सब अवसरोमे विकल्पोको अवसर मिलता रहता है, किन्तु यह ज्ञान केवल-ज्ञानके स्वरूपका ज्ञान करे तो ऐसी स्थितिमे अद्भुत आनन्द पानेकी पद्धति बन जाती है और वहा तृप्ति रहा करती है। ऐसा जो ज्ञानस्वरूपका ही ज्ञानी बन रहा हो वही वास्तवमे ज्ञानी है, ऐसा ज्ञान हे प्रभु मेरे बने, जो ज्ञान ज्ञानके स्वरूपका ज्ञान करता रहे और इस सत्य पुरुषार्थमे हमारा उपयोग जमा रहे—ऐसे चन्द्रप्रभदेवका स्मरण करके आचार्यदेव अपने अभीष्ट प्रयोजनको भी रखने जा रहे है। अब इसके बाद जैसे लोकरूढ़ि है, लोगोका एक सहज झुकाव है अथवा ग्रन्थकी आदिमे विघ्नकी शाति करनेके भावसे नाम साम्य है, अतः शान्तिनाथ भगवानको अब नमस्कार करेंगे।

सत्संयमपय.पूरपवित्रितजगत्त्रयम्।
शान्तिनाथं नमस्यामि विश्वविघ्नौघशान्तये ॥४॥

प्रभु शान्तिनाथको नमस्कार—मंगलाचरणके प्रसगमे प्रथम छदमे परमात्मतत्त्वको, द्वितीय छदमे श्री ऋषभदेवको और तृतीय छंदमे चन्द्रप्रभ भगवानको नमस्कार करके अब इस चतुर्थ श्लोकमे शान्तिनाथ भगवानको नमस्कार कर रहे है। शान्तिनाथ भगवान्‌की प्रसिद्धि शान्तिकर्त्ताके रूपमे है। इसका आकर्षण एक तो नामके कारण है कि इस प्रभुका नाम स्वय शान्तिनाथ है। प्रधान आकर्षण एक नाम पर है। नामका भी बहुत बड़ा

आकर्षण होता है, फिर इसके साथ ही ये शान्तिनाथ प्रभु पंचम चक्रवर्ती सोलहवे तीर्थंकर और बारहवें कामदेव, यो तीन पदके धारी हुए।

प्रभुका आदर्श—चक्रवर्तीको विभूतिका परित्याग करके इन्होने संयम धारण किया ऐसी चर्या दिखाकर जीवोको पवित्र किया है। अन्य जीव भी इनकी इस उत्कृष्ट चर्याको निरखकर अपनी अन्त चर्या पवित्र बना लेते हैं। सत्संयमरूपी जलसमूहके पूरसे तीनो लोकोको जिसने पवित्र किया है ऐसे शान्तिनाथ प्रभुको समस्त विघ्नोकी शान्तिके लिए नमस्कार करता हूँ। विघ्नोकी शान्ति इस निर्विघ्न सहजस्वरूपकी दृष्टिमे हो जाती है। और परमात्माकी दृष्टि करके जो शान्ति मिलती है वह भी निजका स्पर्श होनेसे मिलती है। वस्तुत. कोई दूसरा प्रभु मुझे शान्त करदे ऐसा नही होता, किन्तु प्रभु की प्रभुता निरखकर उस प्रभुताके समान जो खुदमे प्रभुता बसी हुई है उसका स्मरण होता है, उससे शान्ति और समृद्धि होती है।

आत्मप्रभावका प्रभाव—जैसे किसी दु खी आदमीको निरखकर सेठको दया आती है तो यो ही दया नही आ जाती, किन्तु उस दुःखी आदमीको देखकर उसके ही समान अपने मे दुःख बना लिया कल्पनासे, उससे इस सेठको दया उपजी है। कही रास्तेमे कोई प्राणी मारा पीटा जा रहा हो, गाडीमे जुतने वाले भैसोको बुरी तरहसे चाबुक मारते हुए किसी को आपने देखा तो आपके अन्दर एक दया उत्पन्न हो जाती है। वह दया आपमे यो ही नही हो गई किन्तु उसके दु खकी तरह अपने आपमे भी कल्पना करके जो दु.ख उत्पन्न किया है उससे दया उत्पन्न हुई है। ऐसे ही प्रभुके स्मरणसे परमात्मतत्त्वकी सुधसे एकदम सीधा कल्याण नही हो गया, किन्तु परमात्माकी सुधसे अपने आपमे बसे हुए परमात्म-तत्त्वका स्पर्श हुआ है उसमे इसका कल्याण जगा है। ऐसे ही प्रभुके गुणस्मरणका माध्यम लेकर स्वयमे एक शुभ कल्पना बनती है। उस कल्पनासे इसे शान्ति प्रकट हुई है।

प्रभुस्मरणमे प्रभुताकी मुख्यता—इस प्रसगमे शान्तिनाथ प्रभुका स्मरण कर रहे हैं। जैनसमूहमे भी २४ तीर्थंकरोमे से प्राय ऋषभदेव चन्द्रप्रभु, शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ प्राय इन्हीका विशेषकर नाम आधार लिया करते हैं। इनमेसे इस ग्रन्थमे भी पार्श्वनाथ और नेमिनाथके अतिरिक्त इन सबको नमस्कारका वर्णन आया है। किसी तीर्थंकरको छोड दे याने नाम न ले इससे कही यह बात नही हुई कि वे तीर्थंकर नमस्कार के योग्य नही है या साधारण है, किन्तु चलती हुई पद्धतिमे किसी भी प्रभुका नाम ले लें, उस नाममे प्रभुताकी मुख्यता है, नामकी मुख्यता नही है। इस कारण किसी एकका भी नाम लेने पर सब गर्भित हो जाते हैं। जिस घरमे ४-६ भाई बसते है उसमे किसी एक

भाईका नाम ले लेनेसे था किसीका नाम आ जानेसे वे सब भाई सतुष्ट रहते है। वे सोचते है कि इसमे हम सब आ गए। नाममे प्रभुताकी मुख्यता है और नमस्कार करने वाला, नाम लेने वाला पुरुष अपने हृदयमें यह भाव नही रखता कि मैं इनको ही नमस्कार करूं औरको नही, इस कारण सभी इसमें गर्भित हो जाते है।

श्रिय सकलकल्याणकुमुदाकर चद्रमा:।
देव: श्री व मानाख्य' क्रियाद्भव्याभिनन्दिताम्॥५॥

श्री वर्द्धमान प्रभुको नमस्कार—श्री वर्द्धमान नामक स्वामी अन्तिम तीर्थकरदेव जो भव्य पुरुषोके द्वारा वदनीय है, प्रशसित है, वे इष्ट लक्ष्मीको अभिनन्दित, वर्द्धित करे। ये वर्द्धमान स्वामी सकलजनोके कल्याणरूपी कमलोके समूहके लिये चद्रमाकी तरह है। जैसे चद्र कमलको प्रफुल्लित करने वाला है इसी प्रकार यह वर्द्धमान प्रभु भव्य जीवोके कल्याणको उत्पन्न करने वाले है। वर्द्धमान प्रभु चूंकि वर्द्धमान नाम हैं न, तो अपनी किसी वृद्धिके लिये वर्द्धमानका नाम विशेषतया लोग चुना करते है। वह नामकी समता है। तीर्थकर तो सभी एक समान है। इस युगमे इस वर्तमान समयमें जिस धर्म तीर्थको पाकर जिस तत्त्वज्ञानको पाकर हम आप सतुष्ट होते है, आकुलता दूर करते है, ज्ञानका आनन्द लेते है, इस युगमे उस धर्म तीर्थके प्रणेता वर्द्धमान स्वामी है। पार्श्वनाथ और वर्द्धमान स्वामीके बीचके समयमे धर्मकी हीनता हो गयी थी और अब जो धर्मका प्रवाह चल रहा है यह वर्द्धमान स्वामीके समवशरणमे प्रकट हुए धर्म परम्परासे चल रहा है। इस कारण प्रथम तीर्थकर महावीर स्वामी कहलाते है।

सम्यग्दर्शन कर्णधार—प्रभु स्वय कल्याणसे परिपूर्ण है अतएव वे भव्य जीवोके कल्याणके भी कारण है। प्रभु स्वयं कर्मोका विनाश कर चुके है अतएव भव्यजीवोके विघ्नो के विनाशके कारण है। इनके वचन मोक्षमार्ग रूप निकले है। ऐसे वर्द्धमान स्वामीसे वाञ्छित लक्ष्मीकी प्रार्थना करना युक्त है। जैसे नाव चलाने वाला खूब चलाता है पर नाव का कर्णधार जो नावके पीछे खडा रहता है, एक सूपके आकारका करिया नामक काष्ठ का यत्र लिए रहता है, वह जिस प्रकारसे घुमा दे, नाव उस ओर चल देती है। इसमें तो कुछ शक नही है कि प्रत्येक जीव बडा जागरूक है और निरतर कार्य करता रहता है। सिद्ध प्रभु हो तो, ससारी जीव हो तो सभी जागरूक है अपने काममे और निरतर चेष्टा करते जा रहे है, पुरुषार्थ करते जा रहे है। बस जिनको वह सम्यग्ज्ञानका काष्ठयंत्र मिला सम्यग्दर्शन कर्णधार मिला तो वह अपनो चर्याको योग्यपद्धतिमे निभा ले जाते है और जिसको यह कर्णधार नही प्राप्त हुआ है उसकी नैया तो भवोदधिमे यत्र तत्र डोलती रहेगी।

उन्हे क्रोध आता है। उसका कारण क्या है ? दूसरेको खाते, घूमते, फिरते, मौजसे रहते देख रहा है और अपनेको कही मक्खी बैठ जाय तो उसको भी उडा सकने मे असमर्थ देख रहा है, इस कारण वह दूसरोको रगा चगा देखकर क्रोध न करे तो और क्या हो ? ऐसे ही बढ़ती हुई अवस्थामे प्राय. कषायोकी वृद्धि होती है। यह बात सब पर लागू नही होती अन्यथा तपस्या करना व्यर्थ हो जायेगा। फिर तो यह सोचा जायेगा कि अरे तपस्यासे क्या लाभ बूढे होने पर फिर विकल्प आ जायेगे तो उस तपस्यासे क्या लाभ ?

ज्ञानसे उत्तरोत्तर विकास—जिसने ज्ञान नही सीखा और वृद्धावस्था तक विषयभोगो मे रत रहे उनकी स्थिति बुढापेमे ऐसी बनती है कि जैसे कहते है अर्द्धमृतक जैसी स्थिति होना। अब आत्मध्यान और धर्मपालन क्या करेगे ? धर्मपालन शरीरकी स्थितिके आधीन नही है। जो अपने आपमे अपने ज्ञानका दर्शन, आलम्बन, आश्रय करके इस ज्ञानको दृढाता है, इस ज्ञानस्वभावको विकसित करता है वह वृद्ध होने पर और भी अधिक चमकता है और भी अधिक प्रकाशमान होता है। इससे कर्तव्य एक ज्ञान प्राप्त करने का है।

ज्ञानकी कमनीयता—ज्ञान भी वास्तवमे वह है जो अपने आपमे शान्ति उत्पन्न करे। जो ज्ञान अशान्ति उत्पन्न करनेका कारण बनता है वह ज्ञान ज्ञान नही है। किन्तु बाह्य धनकी तरह एक धन है। ज्ञान वही है जो ज्ञानीको सन्तोष उत्पन्न करे। यह बात उस ज्ञानमे है जो ज्ञान अपने ज्ञानके स्वरूपका स्पर्श कराता है लोकमें जीव अन्य जीवोसे अपने आपको अधिक मान लेने पर मै इन सबसे उच्च हूँ, बडा हूँ, इस प्रकारकी बुद्धि बनने पर इस जीवको क्लेश होता है, क्षोभ होता है, मलिनता होती है, तब ऐसी सरलता और नम्रताकी प्रकृति बने कि अपने आपमे उत्पन्न हुये ज्ञानादिक वैभवोमे इतनी महत्ता न कूत लें कि अन्य जीव इसकी दृष्टिमे तुच्छ जचने लगें। ऐसी परिस्थितिमे वह ज्ञान शान्तिका कारण नही होता। तो हमारा ही एक विशुद्ध ज्ञान अपने आपको वाञ्छित लक्ष्मीकी प्राप्ति करा देता है और वह विशुद्ध ज्ञान जिन चरणोके प्रसादसे प्राप्त हुआ है उन चरणोकी कृतज्ञता होनी ही चाहिये। सो यहा वर्द्धमानप्रभुका अभिनन्दन अभीप्सित लक्ष्मी की प्राप्तिके लिये किया गया है। अब इसके बाद भगवान महावीर स्वामीके मुख्य गण-धर गौतम स्वामीको नमस्कार कर रहे है।

श्रुतस्कन्धनभश्चन्द्र सयमश्रीविशेषकम्।
इन्द्रभूति नमस्यामि योगीन्द्र ध्यानसिद्धये ।।६।

गौतम स्वामीको नमस्कार—जो श्रुत स्कधरूपी आकाशमें चन्द्रकी तरह है, जैसे

आशयकी विशुद्धताका स्थान—आत्माके उत्थानके लिये आशयकी विशुद्धता हितपंथका सुनिर्णय होना प्रथम आवश्यक है। यदि हितपथका निर्णय आशयकी विशुद्धता प्रकट हुई है तो कीचडमे पडे हुये स्वर्णकी तरह ऊपरसे मलिन भी रहे, गदा रहे, व्याकुल रहे तो भी सम्यग्दृष्टि जीव अपने अतःपुरुषार्थको बराबर बनाये चला जाता है। यह निर्मल है। भीत पर छहो महीने चित्रकारी करने वाले पुरुष यदि भीतको बहुत स्वच्छ नही बनाते है तो उनका चित्र बनानेका परिश्रम व्यर्थ है। प्रथम तो उस भित्तिकी विशुद्धि चाहिये। ऐसे ही हम धर्मकार्यमे समय लगाते, श्रम करते, त्याग करते पर एक विशुद्ध आशय बन जाय और हितपथका निर्णय बन जाय तो हमारे सब काम सफल हैं। यह दृष्टि जगे कि मेरा तो कल्याण सर्व परद्रव्योसे अलग हटकर केवल ज्ञानानन्दस्वरूप केवल सहजस्वरूप मात्र रहनेसे है। इतना भीतरमे निर्णय होने पर यह धर्मपालनका अधिकारी है भला, अतः निर्णयको कौन छुडायेगा ? किसकी जबरदस्ती होगी जो कि अत निर्णयमे कोई विघ्न डाले। कुछ भी करते हुये किसी भी परिस्थितिमे और कितना भी उपयोग बाहर चला जाय तब भी भीतरकी शुभावना भीतर ही भीतर इस आत्माका कल्याण कर रही है।

लोकमे जीवकी असहायता—इस लोकमे दूसरा कौन साथी है, कौन शरण है ? कौन सा समागम अभिमानके योग्य है, कौन सी विभूति यहाँ की हितरूप है ? ये समस्त मिले हुए समागम एक दिन क्लेशके कारण बनेंगे। यह वैभव सम्पदा कुछ भी सारभूत नही है। यह जग सम्पदा सारभूत होती तो बडे-बडे तीर्थकर चक्रवर्ती इस सम्पदाको त्यागकर क्यो अपनेमे उस केवल निजस्वरूपका ध्यान करते ? बहुत-बहुत धक्के खानेके बाद बुद्धि व्यवस्थित बनती है पर इस जीव पर मोहका ऐसा तीव्र नशा है कि बहुत आपत्ति और धक्के खा लेनेके बाद भी इसकी बुद्धिमे व्यवस्थिता नही आ पाती है। लो कुछ जरा ठीक ठिकानेसे हुये थे एक भवमे बुढापेमे या अन्तिम समयमे कुछ बुद्धि बननेका अवसर ठीक आया था कि तब भी न चेते तो मरण हुआ व दूसरे भवमे गये, अब वहाँ वही अ आ इ ई फिर पढना शुरू किया, वही मोह ममता फिर प्रारम्भ हो गयी।

अज्ञानसे उत्तरोत्तर विडम्बना—भैया ! प्रथम तो यही बडा कठिन है कि बडी अवस्थामे इतनी बुद्धि और विवेक व्यवस्थित बन जाय। प्राय देखा जाता है कि वृद्ध अवस्थामे तृष्णा, क्रोध, अभिमान बढता है उनका आना है कि इसके कमजोरी आई। यह मन जो चाहे वह काम तो कर नही सकता, भोग नही सकता है और इसने अपनी उन वाञ्छावोपर पहिले विजय नही की, ऐसी स्थितिमे क्रोधका आना स्वाभाविक सा है। जैसे प्रायः अधिक बीमार आदमी अधिक क्रुद्ध हो जाया करते है। जरा जरा सी बातोमे

ान करके मोक्ष पधारे। उसही ध्यानकी प्राप्तिके लिये श्री गौतम गणेशको यहा मस्कार किया है।

प्रशान्तमतिगम्भीरं विश्वविद्याकुलगृहम्।
भव्यैकशरणं जीयाच्छ्रीमत्सर्वज्ञशासनम् ॥७॥

सर्वज्ञशासनके जयवादका उपक्रम--पूर्व ६ श्लोकोमे परमात्मतत्त्वको, ऋषभदेवको, ौतम गणधरको, शान्तिनाथ प्रभुको, वर्द्धमान स्वामीको नमस्कार करके अब इस ७वे लोकमे श्रीमत् सर्वज्ञदेवके शासनका जयवाद करते है।

दुःखशमक सर्वज्ञशासन—इस असार दु.खपूर्ण लोकमे भ्रमते हुए प्राणियोका यदि कुछ रण है तो यह सर्वज्ञदेवका शासन शरण है। मोहकी ज्वालामे जल रहे इस प्राणीको दि कोई शमन कर सकने वाला जल है तो भगवान्के उपदेशमे कहा हुआ जो तत्त्वका र्म है उसका हृदयमे अवधारण करना, यही इस ज्वालाको शान्त कर सकता है। यह ोक भ्रमवश रागद्वेषकी ज्वालामे जलभुनकर अपने आपके ज्ञानानन्दनिधानका घात किये ा रहा है। यह स्वय अपने आपही अपना विनाश कर रहा है। यद्यपि इस विकारका ामित्त परपुद्गल है, कर्मवर्गणा है, आश्रयभूत विषयोके साधन हैं और ये सब होते हुये ी वे तो निमित्त मात्र हैं, आश्रय मात्र हैं। किस पर बीत रही है और कौन बिता रहा ? इस पर दृष्टि दे तो यही आत्मा स्वय अपने आपही अपना विनाश करता जा रहा है।

भ्रमजालकी परेशानी—भैया! क्लेश तो है ही, पर भ्रमका ऐसा जाल भी छाया कि जिन साधनोसे इसका विनाश हो रहा है, उन्हीको अपनाता जा रहा है। जैसे किसी कोई रोग है और उस रोगको ही उसका इलाज मान ले, ऐसा विकट भ्रम हो जाय ा उसका इलाज क्या ? एक बुढियाके दो बालक थे। एकको कम दीखे, पर सही दीखे। ौर एकको तीव्र दीखे, पर कुछ पीला दीखे। दोनो बालकोका इलाज बुढ़ियाने एक वैद्य करवाया। वैद्यने दोनो बालकोका एक इलाज किया। सफेद मोती भस्म दिया और हा मा यह दवा लो, इसे चादीके गिलासमे गायके दूधमे मिलाकर देना, दोनो बालको आंखोकी बीमारी ठीक हो जायेगी। बुढ़ियाने ऐसा ही किया। सबसे पहिले जो बालक म देखता था किन्तु सही देखता था उसे पीनेको दिया। उसने तो उस दवाको पी डाला ौर जिसे तेज दीखता था पर सब कुछ पीला दीखता था, उसे जब दवा पीनेको दिया ो उसने कहा, मा तुम ही तुम्हे दुश्मन मिले। क्या मा ! अरे पीतलके गिलासमे गायके ूधमे यह हरताल डालकर मुझे पिला रही हो, उसे सब कुछ पीला दिखता था। उसने न दवाको न पिया, तो एककी तो आंखें ठीक हो गयी, पर एककी ठीक न हुई। ऐसे

आकाशमे चन्द्रकी शोभा है इसही प्रकार श्रुत ज्ञानके विस्तारमे यह गौतम गणधर चन्द्रकी तरह शोभित हुये थे, जिनमे सयम श्रीकी विशेषता है। भला ऐसा कोई और उदाहरण है जैसा इस इन्द्रभूति गणधरका है। जो अभिमानवश महावीर स्वामीसे वाद विवाद करनेके लिये गये थे। चल देखे तेरा गुरु कौन है ? मेरा गुरु महावीर है। तेरा गुरु महावीरा है अभिमानमे आकर महावीरसे बाते करने उनको नीचा दिखानेके लिये गौतम गणधर पहुँचे। भगवान् महावीरके समवशरणमे प्रथम भागमे बने हुये मानस्तम्भको निरख कर उनका मान चूर होता है और उसी समय बोध होता है। वही समवशरणमे दीक्षा ले लेते हैं और मन पर्यय ज्ञानके धारी बन जाते है। इस प्रकारका दृष्टात बहुत कम दृष्टातोमें कही मिलेगा। गौतम गणधरका इस दिगम्बरी दीक्षासे पहिले भी विशाल ज्ञान था किन्तु स्याद्वादकी शैलीके बिना सब एकान्तरूप था, अब इतनी दृष्टिके मिलने पर वह समस्त ज्ञान सम्यक् बन गया। ऐसी बुद्धिकी महिमा है ना यहा। इस कारण ज्ञानके प्रसगमे लोग गौतम गणधरका अभिवादन करते हैं। गणधरका नाम गणेश भी है।

सिद्ध भगवंतकी विद्यारंभमे आद्यता व गणेशका विद्याधिपत्य—पहिले समयमे किसी बालकको किसी पाठशालामे पढने भेजा जाता था तो सर्वप्रथम पाठ यही दिया जाता था श्री गणेशाय नम'। श्री गणेशका स्मरण करनेसे भी पहिले एक मन्त्र लिखते थे ॐ नम' सिद्ध। जिसका बिगडकर ओना मासी ध हो गया। यह सबको पढाया जाता था। पुराने लोग हो तो उनको याद होगा 'सी दो वन्न समामनाया चतुरो चतुरो दासा आदि। ओना मासी धम. 'यह पाठ पढाया जाता था, यह पाठ जैन व्याकरणका सूत्र है जिसका शुद्ध उच्चारण है—ॐ नमः सिद्ध, सिद्धावर्णसमाम्नाय.। सिद्धको नमस्कार हो। वर्णोंकी परम्परा स्वयसिद्ध है। कोई लोग कहते हैं वर्णपरम्परा अमुककी डमरूमेंसे निकली, कोई लोग कुछ कल्पना करते हैं। जैन व्याकरण सीधा स्पष्ट बता देता है कि यह वर्ण परम्परासे स्वयसिद्ध चला आ रहा है। तत्र चतुर्दशादौ स्वरा। आदिके १४ वर्ण स्वर कहलाते हैं इनको स्वर क्यो कहा ? स्वय राजते इति स्वर। जो दूसरेका सहारा लिये बिना विराजे, शोभें, बोले जा सकें उनका नाम स्वर है। व्यञ्जनोको आप स्वरकी सहायता बिना नही बोल सकते। जरा आधा क (क्) बोलो। कोई नही बोल सकता। उसमे स्वर मिलाकर बोला जायेगा। इन सब विद्यावोके अधिपति गौतम गणधर माने जाते हैं। उन इन्द्रभूति स्वामीको ध्यानकी सिद्धिके लिये नमस्कार करता हूँ। गौतम गणधरने, श्री गणेशजीने शिवपति वर्द्धमान स्वामीकी ध्वनि सुनकर द्वादशागकी रचना की, चतुर्वेदकी रचनाकी, प्रथमानुयोग, करुणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोगकी रचना की और आप स्वय शुद्ध

यान करके मोक्ष पधारे। उसही ध्यानकी प्राप्तिके लिये श्री गौतम गणेशको यहा मस्कार किया है।

प्रशान्तमतिगम्भीर विश्वविद्याकुलगृहम्।
भव्यैकशरणं जीयाच्छ्रीमत्सर्वज्ञशासनम् ॥७॥

सर्वज्ञशासनके जयवादका उपक्रम--पूर्व ६ श्लोकोमे परमात्मतत्त्वको, ऋषभदेवको, ौतम गणधरको, शान्तिनाथ प्रभुको, वर्द्धमान स्वामीको नमस्कार करके अब इस ७वे लोकमे श्रीमत् सर्वज्ञदेवके शासनका जयवाद करते है।

दु.खशमक सर्वज्ञशासन—इस असार दु.खपूर्ण लोकमे भ्रमते हुए प्राणियोका यदि कुछ रण है तो यह सर्वज्ञदेवका शासन शरण है। मोहकी ज्वालामे जल रहे इस प्राणीको दि कोई शमन कर सकने वाला जल है तो भगवान्के उपदेशमे कहा हुआ जो तत्त्वका र्म है उसका हृदयमे अवधारण करना, यही इस ज्वालाको शान्त कर सकता है। यह ीक भ्रमवश रागद्वेषकी ज्वालामे जलभुनकर अपने आपके ज्ञानानन्दनिधानका घात किये ा रहा हे। यह स्वय अपने आपही अपना विनाश कर रहा है। यद्यपि इस विकारका िमित्त परपुद्गल है, कर्मवर्गणा है, आश्रयभूत विषयोके साधन है और ये सब होते हुये ी वे तो निमित्त मात्र है, आश्रय मात्र हैं। किस पर बीत रही है और कौन बिता रहा ? इस पर दृष्टि दे तो यही आत्मा स्वय अपने आपही अपना विनाश करता जा रहा है।

भ्रमजालकी परेशानी—भैया ! क्लेश तो है ही, पर भ्रमका ऐसा जाल भी छाया कि जिन साधनोसे इसका विनाश हो रहा है, उन्हीको अपनाता जा रहा है। जैसे किसी ो कोई रोग है और उस रोगको ही उसका इलाज मान ले, ऐसा विकट भ्रम हो जाय ो उसका इलाज क्या ? एक बुढियाके दो बालक थे। एकको कम दीखे, पर सही दीखे। ौर एकको तीव्र दीखे, पर कुछ पीला दीखे। दोनो बालकोका इलाज बुढ़ियाने एक वैद्य ा करवाया। वैद्यने दोनो बालकोका एक इलाज किया। सफेद मोती भस्म दिया और हा मा यह दवा लो, इसे चादीके गिलासमे गायके दूधमे मिलाकर देना, दोनो बालको ो आंखोकी बीमारी ठीक हो जायेगी। बुढियाने ऐसा ही किया। सबसे पहिले जो बालक म देखता था किन्तु सही देखता था उसे पीनेको दिया। उसने तो उस दवाको पी डाला, ौर जिसे तेज दीखता था पर सब कुछ पीला दीखता था, उसे जब दवा पीनेको दिया ो उसने कहा, मा हम ही तुम्हे दुश्मन मिले। क्या मा ! अरे पीतलके गिलासमे गायके ूत्रमे यह हरताल डालकर मुझे पिला रही हो, उसे सब कुछ पीला दिखता था। उसने स दवाको न पिया, तो एककी तो आखें ठीक हो गयी, पर एककी ठीक न हुई। ऐसे

ही ये ससारीजन हैं। मार्ग है कुछ और समझ रहे है कुछ। इसलिये उनके क्लेशोको मिटानेका सही इलाज नही हो पा रहा है।

आनन्दका धाम—आनन्द निर्विकारतामे है। अपना उपयोग जव विषय और कषायो के आधीन न रहे, निर्विषय निष्कषाय अपने अतस्तत्त्वको परख लें, उस अनुभूतिमे ही आनन्द है। ये मोहीजन जड वैभवोमे आसक्त हो रहे है, इन्हे ही अपना सर्व कुछ मान रहे है। सबसे निराले अपने आपके स्वरूपकी इन्हे सुध नही होती। ऐसी विकट परि-स्थितिमे फसे हुये इन जीवोको वास्तविक कोई आलम्बन है तो अव यह सर्वज्ञदेवका शासन आलम्बन है।

सर्वज्ञशासनकी लोकव्यापकताके अभावका कारण—समन्तभद्र स्वामीने युक्त्यनुशासन मे स्तवन करते हुये एक जगह एक प्रश्न स्वय कर छेडा, किस बात पर जब कि इससे पहिले यह स्तवन कर रहे थे कि हे प्रभो! हममे ऐसी शक्ति नही है कि आपके गुणोका वर्णन कर सकें, पर हां एक छोटीसी वात मैं जरूर कह सकता हूँ आपके सबंधमे। वह क्या, हे प्रभो! मै जानता हूँ कि तुम ज्ञान और आनन्दकी पराकाष्ठा हो। तुम्हारा स्तवन हम और क्या करें, इस बातपर एकाएक यह प्रश्न हो उठता है कि जब वीतराग सर्वज्ञदेवका निर्विकार स्वरूप है, और शासन सर्वहितकारी है तो यह सारी जनता इसे क्यो नही मानती? इस स्वरूपसे विमुख होकर अपनी कल्पनासे जो समझमे आया उसको ही अपना स्वरूप मान लेते हैं। वीतरागप्रभुके निर्विकार स्वरूपको सभी लोग क्यो नही मानते? हे प्रभो! जब तुम्हारा शासन निर्दोष है, हितकारी है, जो माने उसका भला है, फिर इस शासनका फैलाव इस दुनियामे एकछत्र क्यो नही होता?

उसके उत्तरमे उन्होने कहा है—

काल. कलिर्वा कलुषाशयो वा श्रोतु प्रवक्तुर्वचनानयो वा।
त्वच्छासनैकाधिपतित्वलक्ष्मीप्रभुत्वशक्तेरपवादहेतुः॥

हे नाथ! तुम्हारे शासनका एकाधिपतित्व नही हो सका। इसका क्या कारण है? उसके ये तीन कारण हैं—प्रथम कारण तो कलिकाल है, दूसरा कारण सुनने वालोके हृदयमे मलिनता है और तीसरा कारण यह है कि कहने वालोको समझाने वालोको नयोका अपरि-ज्ञान है। ये तीन कारण है, जिसकी वजहसे आपके शासनका एकाधिपतित्व नही हो सका है।

सर्वज्ञशासनके अप्रसारका प्रथम कारण—भगवानके शासनके प्रसारके अवरोधक कारणो का मतलब सुनिये। प्रथम कारण तो कलिकाल है। कलिकालके सम्बन्धमे एक कथानक है कि जिस दिन कलिकाल लगना था, उससे एक दिन पहिले एक पुरुषने अपना मकान

बेचा। जिसने खरीदा था, उसने नीव खोदी तो नीचे उसमें अशर्फियोका भरा हण्डा मिला। वह बेचने वालेके पास पहुँचा और कहा कि आपने जो घर बेचा है, उसके खोदने पर यह अशर्फियोका हण्डा मिला है, इसे आप ले लो। उसने कहा कि मैं क्यो इन्हे लूं ? ये मेरे नही है। यदि ये अशर्फिया मेरी होती तो मुझे पहिले क्यो न मिलती ? खरीदने वाले ने कहा कि हमने तो सिर्फ जमीन खरीदी है, ये अशर्फिया मेरी नही है। दोनोमे झगडा हुआ तो न्याय राजाके पास पहुँचा। खरीदने वालेने बताया कि ये अशर्फिया हमने इनसे जो घर खरीदा है, उसकी नीव खोदनेमे निकली हैं। ये मेरी नही हैं। मैं न लूंगा। सो राजाने कहा कि अच्छा ! इसका निर्णय कल कर देंगे। अब कलिकालकी रात लगी। सभी अपने अपने घरमे सोचते है। खरीदने वालेने सोचा कि मैं क्यो दू, पाया तो मैंने ? बेचने वालेने सोचा कि मैं कैसा मूर्ख निकला कि वह हण्डा देने आया और मैंने न लिया, अब कल हमी ले लेगे। राजाने सोचा कि मैं व्यर्थमे क्यो परेशान होऊं न्याय करनेमे ? मैं तो कह दूँगा कि यह धन तुम्हारा नही है, यह तो राज्यका है। लो यह एक कलियुग को बात बतायी है। हुआ क्या ? सो हमे क्या पता ? इस प्रकार कलिकालके दोषकी बाते आजकल भी देख लो। लोग दुराचरणसे कितने परेशान है ? झूठ, धोखा, विश्वासघात और अनेक तरहके अन्य दुराचार, हिंसाका इतना प्रचार कितनी ही बाते हो रही है, यह सब कलिकालका प्रभाव है। प्रभुके शासनका जो एकाधिपतित्त्व नही हो सका उसका कारण एक तो कलिकाल है।

सर्वज्ञशासनके अप्रसारका द्वितीय व तृतीय कारण—अब सर्वज्ञशासनका अवरोधक द्वितीय कारण सुनिये—सुनने वाले भी कलुषित आशयके है। उनका मन धर्मकी चर्चावोमे नही लगता, वे अपने मनके अनुकूल उपदेश सुनना चाहते हैं। दूसरी बात सुनने वाले प्राय इस ताकमे भी रहते हैं कि कहनेकी पद्धतिमे या किसी कथनमे कोई दोष मिले तो उसे बताऊं ताकि दुनिया समझे कि हां ये भी कुछ है, मेरा जिससे प्रताप फैले। इस प्रकार का दोष श्रोतावोमे है। जिससे उनका कुछ हितभावसे ज्ञानको बाते सुननेमे मन नही लगता। सर्वज्ञशासनके अवरोधका तीसरा कारण है वक्ताओको नयका परिज्ञान नही है। उनको बोलनेकी कुछ पद्धति भी विदित नही है कि कैसे बोले ? उन्हे बोलनेका ढग ही नही आता। नयोका कुछ पता ही नही है। न जाने उनकी कैसी दृष्टि है, कैसी स्थिति है ? तो हे नाथ ! ये तीन कारण हैं जिससे आपके शासनका एकाधिपतित्त्व नही हो सका।

प्रसार समीचीनताका अहेतु—लोग इस शासनका अनुकरण नही करते तो क्या हुआ ? पत्थरोके ढेर तो लाखो मिलेंगे, पर रत्नोके ढेर बहुत कम मिलेगे। कोई किसीको मानने

वाले अधिक है तो क्या इससे, उसकी समीचीनता जानी जाती है ? यदि लोकमे मोहको मानने वाले अनन्तानन्त है तो फिर मोह अच्छा हुआ और सम्यक्चारित्रके मानने वाले बिरले है, अंगुलीपर गिनने लायक है तो वह अच्छा नही हुआ। ऐसी बात है क्या ? अरे, इन विकल्पोमे क्या सार है ? पहिचान कर लो, खूब परख लो और निर्णय कर लो। जो जैसी बात है, उसे वैसी माननेमे क्यो विलम्ब करते हो ? यह तो आपके उपयोगकी बात है।

सर्वज्ञशासनकी भव्यैकशरणता—यह सर्वज्ञदेवका शासन भव्य जीवोके लिये एक शरण है। यह सारा जगत् मोहसे परेशान है और वह मोह भी व्यर्थका। न कुछ उसमेसे आत्मामे आता है, न उससे कुछ पूरा पडता है। मोहको मिटानेके लिये सम्यग्ज्ञानका प्रकाश ही समर्थ है। मोहका घनान्धकार इस ज्ञानप्रकाशसे मिटता है। जिसके शासनमे वस्तुस्वरूपका निष्पक्ष प्रतिपादन किया गया, जिसमे देव और गुरुको मान्यतामे भी पक्ष नही रक्खा गया, जो निर्दोष हो और पूर्ण गुण सम्पन्न हो वही हमारा देव है। जो निर्दोषताके यत्नमे लग रहे हो, जिनमे गुण विकास भी चल रहा हो, वे हमारे गुरु है। जिसमे निश्चयव्यवहार सब निष्पक्ष कथन है, वह प्रकाश हमारे मोहको दूर कर देता है ? अपने जीवनमे भी अदाज कर लो कि सुख परके समागममे मिलता है या विरक्तिमे मिलता है ? जिस किसी भी समय आप उदासीन बैठे हुए है अर्थात् सर्वपरकी उपेक्षा किये हुये एक ज्ञानदृष्टिमें लग रहे हो, उस समयके आनदकी, निराकुलताकी परख कर लीजिये और जब परिजनोके समागममे रहकर मौज माना जा रहा है, उस स्थितिकी परख कर लीजिये। वह विशुद्ध आनन्द कहा है ?

सर्वज्ञशासनकी शरणताका कारण—जिस शासनमे वस्तुस्वरूपके अवगमके मार्गसे चलकर जहा मूलसे मोहके विध्वस करनेका यत्न कराया गया, प्रत्येक पदार्थ अपने आपमे परिपूर्ण है, यह मैं भी अपने स्वरूपमे परिपूर्ण हू, मेरा जो कुछ बनता है, वह मेरेमे मुझसे ही बना करता है, किसीका किसी पदार्थमे कुछ करनेका वश नही चलता, कुछ अधिकार भी नही है। वह वही है, मैं अपनेमे हूँ, जब ऐसी वस्तुस्वरूपकी दृष्टि बनती है, इस वस्तु स्वरूपके अवगमके प्रतापसे तब वहा मोह नहीं रहता है।

भेदज्ञानमे मोहहारिताका दृष्टांत—कोई दो पडौसी थे। उन दोनोने अपनी अपनी चादर एक धोबीके यहा धोनेको डाल दी। धुल जानेपर एक पडौसी अपनी चादर बदलेमें दूसरे पड़ौसीकी ले आया और घरमें उस चादरको तानकर सो गया। दूसरा पडौसी जब अपनी चादर लेने उस धोबीके यहा गया तो देखा कि यह तो मेरी चादर नही है। धोबीने बताया कि तुम्हारी चादर बदलकर अमुक पडौसीके यहा चली गयी है। सो आप ः

चादरको ले जाइये, उसे दे देना और अपनी चादर ले लेना या वह अपनी चादर यहाँसे ले जाये और तुम अपनी चादर उससे ले लेना। वह पडौसी गया उसके पास, वहाँ देखा कि वह उसी चादरको ताने सो रहा है। उसे जगाया और कहा कि यह चादर जो तुम ओढे हो, मेरी है, मेरी चादर तुम्हारी चादरसे बदल गई है। इतनी बात सुनकर उस चादरको वह गम्भीरतासे देखने लगा। उसे जब अपनी चादरके चिह्न उसमे न दीखे तो समझ गया कि हा यह मेरी चादर नही है। बस उसका जो भ्रम था कि यह मेरी चादर है वह भ्रम मिट गया। इस प्रकाशको अब कौन मिटा सकता है ? जो एक बार यह समझ बैठ गई कि यह चादर मेरी नही है। इसमे तो मेरी चादरके चिह्न भी नही हैं, यह ज्ञान हो जाने पर उसमे उसकी आसक्ति नही रही, लेकिन सम्भव है कि यदि राग भी हट गया है तो जितनी देर वह चादर उसके तन पर है, उतनी देर भी उसका उस चादर मे राग नही उत्पन्न होता, चाहे अभी चादर उतारनेमे कुछ देर लगेगी। अथवा वह चाहता हो कि मेरी चादर पहिले मिल जाये, तब मैं इसे दूँगा। यह जानते हुए भी कि यह चादर मेरी नही है, फिर भी परिस्थिति ऐसी बना ली अपनी कल्पनामे कि वह विवाद कर रहा है। भले ही विवाद करे, किंतु अब उसको भ्रम तो नही रहा। भ्रम मिटते ही भीतरमें उसके चादरका त्याग हो गया। अब इस अन्त करणको कौन मेट सकता है ?

भेदविज्ञानमें मोहविनाशकता—ऐसे ही जब अपने स्वरूपका पता नही है, तब पर पदार्थसे सुख और हित माननेका भ्रम लगा है और ये ही मेरे हितकारी है, ये ही मेरे सब कुछ है, यह भ्रम पडा है। आचार्यगुरु बारबार समझाते हैं कि ये बाह्यसमागम, तन, मन, धन, वचन—ये तेरे नही है तू इनको परख। तेरा स्वरूप तो एक चैतन्यमात्र है, उसे निरख, इनको छोड। क्यो इनको व्यर्थ ग्रहण किये है ? ये समस्त बाह्यसमागम असार हैं, भिन्न है, रूप, रस, गध, स्पर्शके पिण्ड है, सदा रहने वाले नही है। इतनी बात जिसकी समझमे आ गयी, उसके इस भीतरी प्रकाशको कौन मेट सकता है ? ऐसी भीतरमे जो ज्योति जगती है, वही शातिका मार्ग है और यह मार्ग सर्वज्ञके शासनसे हमे प्राप्त होता है। तब ये सर्वज्ञदेव एक शरणभूत हुये ना ? इस सर्वज्ञशासनमे आदिसे अत तक शाति का उपदेश भरा हुआ है। किसी परिस्थितिमे कोई पुरुप किसीसे विवाद भी करे, युद्ध भी करे, विरोध भी करे, प्रत्याक्रमण भी करे, फिर भी यदि वह ज्ञानी है तो उसका झुकाव अपनी आत्मशातिकी ओर होता है, विवादकी ओर नही होता है।

सर्वज्ञ शासनमें शांतिकी प्रधानता—जिस शासनमे आदिसे अन्त तक एक शांतिका उपदेश दिया गया है—ऐसा सर्वज्ञशासन जयवन्त होवो, परम्परा इसकी चलती रहे। इस

वाले अधिक हैं तो क्या इससे उसकी समीचीनता जानी जाती है ? यदि लोकमे मोहको मानने वाले अनन्तानन्त है तो फिर मोह अच्छा हुआ और सम्यक्चारित्रके मानने वाले बिरले है, अंगुलीपर गिनने लायक हैं तो वह अच्छा नही हुआ। ऐसी बात है क्या ? अरे, इन विकल्पोमे क्या सार है ? पहिचान कर लो, खूब परख लो और निर्णय कर लो। जो जैसी बात है, उसे वैसी माननेमे क्यो विलम्ब करते हो ? यह तो आपके उपयोगकी वात है।

सर्वज्ञशासनकी भव्यैकशरणता—यह सर्वज्ञदेवका शासन भव्य जीवोके लिये एक शरण है। यह सारा जगत् मोहसे परेशान है और वह मोह भी व्यर्थका। न कुछ उसमेसे आत्मामे आता है, न उससे कुछ पूरा पड़ता है। मोहको मिटानेके लिये सम्यग्ज्ञानका प्रकाश ही समर्थ है। मोहका घनान्धकार इस ज्ञानप्रकाशसे मिटता है। जिसके शासनमे वस्तुस्वरूपका निष्पक्ष प्रतिपादन किया गया, जिसमे देव और गुरुकी मान्यतामे भी पक्ष नही रक्खा गया, जो निर्दोष हो और पूर्ण गुण सम्पन्न हो वही हमारा देव है। जो निर्दोषताके यत्नमे लग रहे हो, जिनमे गुण विकास भी चल रहा हो, वे हमारे गुरु है। जिसमे निश्चयव्यवहार सब निष्पक्ष कथन है, वह प्रकाश हमारे मोहको दूर कर देता है ? अपने जीवनमें भी अदाज कर लो कि सुख परके समागममे मिलता है या विरक्तिमे मिलता है ? जिस किसी भी समय आप उदासीन बैठे हुए हैं अर्थात् सर्वपरकी उपेक्षा किये हुये एक ज्ञानदृष्टिमें लग रहे हो, उस समयके आनदकी, निराकुलताकी परख कर लीजिये और जब परिजनोके समागममे रहकर मौज माना जा रहा है, उस स्थितिकी परख कर लीजिये। वह विशुद्ध आनन्द कहा है ?

सर्वज्ञशासनकी शरणताका कारण—जिस शासनमे वस्तुस्वरूपके अवगमके मार्गसे चलकर जहा मूलसे मोहके विध्वस करनेका यत्न कराया गया, प्रत्येक पदार्थ अपने आपमे परिपूर्ण है, यह मैं भी अपने स्वरूपमे परिपूर्ण हू, मेरा जो कुछ बनता है, वह मेरेमे मुझसे ही बना करता है, किसीका किसी पदार्थमे कुछ करनेका वश नही चलता, कुछ अधिकार भी नही है। वह वही है, मैं अपनेमे हूँ, जब ऐसी वस्तुस्वरूपकी दृष्टि बनती है, इस वस्तु स्वरूपके अवगमके प्रतापसे तब वहा मोह नहीं रहता है।

भेदज्ञानमे मोहहारिताका दृष्टांत—कोई दो पडौसी थे। उन दोनोने अपनी अपनी चादर एक धोबीके यहा धोनेको डाल दी। धुल जानेपर एक पडौसी अपनी चादर बदलेम दूसरे पडौसीकी ले आया और घरमें उस चादरको तानकर सो गया। दूसरा पडौसी जब अपनी चादर लेने उस धोबीके यहा गया तो देखा कि यह तो मेरी चादर नही है। धोबीने बताया कि तुम्हारी चादर बदलकर अमुक पडौसीके यहा चली गयी है। सो आप इस

आम है, साधारण है कि पदार्थोंके सम्बन्धमे जितना विशेष परिज्ञान होगा, भेदविज्ञानमे उतनी ही निर्मलता आयेगी।

विशद ज्ञानमें विशेष ज्ञानका सहयोग—जैसे एक तो सीधे यह जान लिया कि शरीर जुदा है और आत्मा जुदा है, जैसा कि सभी लोग कहते हैं, देहातोमे भी आबाल गोपाल सभी लोग कहा करते हैं। किसीके मर जाने पर मरघट ले जाते हुये सभी याद किया करते है कि शरीर जुदा है, जीव जुदा है। शरीरको छोडकर यह जीव चला गया। किन्तु विशेष ज्ञानके परिज्ञानकी विशेषता देखिये। यह शरीर एक मायारूप स्कध है, आहार-वर्गणावोसे बना हुआ है। उन आहारवर्गणावोमे मूल परमाणु है वह परमाणु कैसा होता है, कैसे स्कध बनता है और कैसे इन्द्रजाल बनता है ? शरीरके सम्बन्धमे बहुतसी बाते विदित हो, जीवके सम्बन्धमे बहुत परिज्ञान हो, इसका क्या स्वभाव है, सहज परिणमन कैसा है, साधारण गुणका क्या प्रभाव है, विशेष गुणसे इसमे कौनसी विशेषता है, कैसा परिणमन है, कैसे यह इन पर्यायोमे आता है ? जिसके विशेष विशेषज्ञान हो, ऐसा पुरुष देहसे भिन्न जीव है, इतनी सी बातको कितनी विशदतासे जानता है।

विशेष परिज्ञानकी विशेषकता—प्रयोजनकी सिद्धिमे, शान्तिकी साधनामे पदार्थोंका विशेषपरिज्ञान भी आवश्यक है। जैसे कोई पुराना नौकर है तो उसे सारी बातें मालूम रहती है इस कारण उसे थोडीसी बात बता दी। लो वह सब इशारेसे ही समझ जाता है और कोई नया ही नौकर आये तो उसे वह थोडीसी बात भी समझनेमे कठिनाई होती है। ऐसे ही जिस पुरुषके ज्ञान है, प्रतिभा है वह थोड़ीसी बात सुनकर बहुत अधिक परि-ज्ञान कर लेता है और कोई पुरुष जिसके ज्ञान नही है, प्रतिभा नही है उसे जितना बतावो उतना ही अवधारण करता है। यह सब एक भीतरी प्रकाशका प्रताप है।

प्रतिभाका एक छोटा दृष्टांत—एक बार किसी दुकान पर रहने वाले पल्लेदारने कहा मालिकसे कि ऐ मालिक ! मै तो रात दिन कितना बोझा ढोता हूँ, आपका बहुत काम करता हूँ, मुझे आप २० रु० ही देते है और यह मुनीम जो कुछ नही करता, बैठे-बैठे हुकुम चलाया करता है इसे आप हमसे ५ गुना अधिक देते है, यह क्यो अन्तर है ? मालिकने कहा बता देंगे १०-५ दिनमे कभी। दूसरे दिन ही सड़क परसे एक बारात गुजर रही थी। तो मालिकने पल्लेदारसे कहा, जावो मालूम करो कि यह क्या चीज है ? वह पल्लेदार मालूम करने गया। पूछा किसीसे तो बता दिया कि यह बारात है। वह आकर मालिकसे कहता है हजूर यह बारात है। ठीक, थोडी देर बाद मुनीमसे कहा सेठ ने कि देखो यह क्या बात है ? तो मुनीम गया और बहुतसी बाते पूछकर जान लिया कि

सर्वज्ञशासनसे लाभ लूट लो। यदि इसका सचमुचमेलाभ लूटना है तो यह भावना प्रथम होगी कि यह परिपाटी आगे भी चलती रहे। दूसरे लोग भी लाभसे क्यो वञ्चित हो ? यह शासन प्रशात और अतिगम्भीर है। देखो ये जैनशासनके पर्व कितने धैर्य और शाति को प्रसारित करने वाले है, सर्वत्र जिसमे अहिंसाका ही विस्तार है। दस लाक्षणीका पर्व आ गया तो क्षमा, सरलता, नम्रता इत्यादिका गुणानुवाद होगा, इनकी ओर दृष्टि जगेगी। अनशन और व्रत इत्यादि अनेक प्रकारके सदाचार धारण किये जायेगे। तो जहा पर इस प्रकारके शातिका प्रसार करने वाले उपदेश भरे है।

विश्वविद्याधाम सर्वज्ञशासनका जयवाद—सर्वज्ञशासनको समस्त विद्याओका घर कहा है। आध्यात्मिकज्ञान लो, करुणानुयोगका ज्ञान लो, विज्ञान लो, अविष्कारकके मूलमत्र लो, ज्योतिष आयुर्वेद इत्यादि ये सभीकी सभी विद्यायें इस सर्वज्ञशासनसे मिलती हैं। ऐसी कोई विद्या नहीं है, जो सर्वज्ञशासनमे न हो अथवा यह सर्वज्ञशासन सर्वविद्याओका घर है। द्वादशांगका कितना विस्तार है, इसको समझने वाले स्पष्ट जानते हैं। जो भव्य जीवोको एक शरणभूत हैं—ऐसा श्रीमत् सर्वज्ञदेवका यह शासन चिरकाल तक जयवन्त रहे। इस प्रकार शुभचन्द्राचार्य इस सर्वज्ञशासनका गुणानुवाद कर रहे हैं।

प्रबोधाय विवेकाय हिताय प्रशमाय च।
सम्यक् तत्त्वोपदेशाय सता सूक्ति. प्रवर्तते ॥८॥

सत्पुरुषोंकी सूक्तियोंके प्रयोजन—सत्पुरुष क्यो उपदेश किया करते हैं, उनके उपदेश से जनताको क्या मिलता है ? उपदेशके उन प्रयोजनोको वतानेके लिये यह श्लोक आया है। सज्जन पुरुषोकी वाणी जीवोके प्रबोधके लिये, विवेकके लिये, हितके लिये, शातिके लिये, और सम्यक्तत्त्वोपदेशके लिये प्रवृत्त हुआ करती है। जिस वाणीमे ये प्रयोजन न हो, प्रत्युत उससे उल्टा ही प्रयोजन निकले तो वाणी एक बकवाद है। वह सूक्ति नही कही जा सकती है।

सूक्तिका प्रथम प्रयोजन—जो वाणी जीवोको प्रबोध दे सके ऐसी वाणी सत्पुरुषोकी हुआ करती है। जो वाणी रागमे अधा बना दे वह वाणी सूक्ति नही कहला सकती। सज्जन पुरुषोका उपदेश विशेष रूपसे इसलिये होता है कि लोगोका सही ज्ञान वने। यद्यपि उपदेशश्रवणका प्रयोजन इतना ही है कि तुम निजको निज जान लो और परको पर समझ लो तथा परसे निवृत्त होकर अपने आपमे लग जावो, किन्तु इतना सा काम करनेके लिये स्वपरविषयक विशेष ज्ञान होना चाहिये। यद्यपि स्वपरके सम्बन्धमे जिसके जितना भी यथार्थ ज्ञान है वह इतनेसे प्रयोजनकी सिद्धि कर लेता है। फिर भी यह बात

आम है, साधारण है कि पदार्थोंके सम्बन्धमे जितना विशेप परिज्ञान होगा, भेदविज्ञानमे उतनी ही निर्मलता आयेगी।

विशद ज्ञानमें विशेष ज्ञानका सहयोग—जैसे एक तो सीधे यह जान लिया कि शरीर जुदा है और आत्मा जुदा है, जैसा कि सभी लोग कहते है, देहातोमे भी आबाल गोपाल सभी लोग कहा करते है। किसीके मर जाने पर मरघट ले जाते हुये सभी याद किया करते है कि शरीर जुदा है, जीव जुदा है। शरीरको छोडकर यह जीव चला गया। किन्तु विशेष ज्ञानके परिज्ञानकी विशेषता देखिये। यह शरीर एक मायारूप स्कध है, आहार-वर्गणावोसे बना हुआ है। उन आहारवर्गणावोमे मूल परमाणु है वह परमाणु कैसा होता है, कैसे स्कध बनता है और कैसे इन्द्रजाल बनता है ? शरीरके सम्बन्धमे बहुतसी बाते विदित हो, जीवके सम्बन्धमें बहुत परिज्ञान हो, इसका क्या स्वभाव है, सहज परिणमन कैसा है, साधारण गुणका क्या प्रभाव है, विशेष गुणसे इसमे कौनसी विशेषता है, कैसा परिणमन है, कैसे यह इन पर्यायोमे आता है ? जिसके विशेष विशेषज्ञान हो, ऐसा पुरुष देहसे भिन्न जीव है, इतनी सी बातको कितनी विशदतासे जानता है।

विशेष परिज्ञानकी विशेषकता—प्रयोजनकी सिद्धिमे, शान्तिकी साधनामे पदार्थोंका विशेषपरिज्ञान भी आवश्यक है। जैसे कोई पुराना नौकर है तो उसे सारी बाते मालूम रहती हैं इस कारण उसे थोडीसी बात बता दी। लो वह सब इशारेसे ही समझ जाता है और कोई नया ही नौकर आये तो उसे वह थोडीसी बात भी समझनेमे कठिनाई होती है। ऐसे ही जिस पुरुषके ज्ञान है, प्रतिभा है वह थोड़ीसी बात सुनकर बहुत अधिक परि-ज्ञान कर लेता है और कोई पुरुष जिसके ज्ञान नही है, प्रतिभा नही है उसे जितना वतावो उतना ही अवधारण करता है। यह सब एक भीतरी प्रकाशका प्रताप है।

प्रतिभाका एक छोटा दृष्टांत—एक बार किसी दुकान पर रहने वाले पल्लेदारने कहा मालिकसे कि ऐ मालिक ! मै तो रात दिन कितना बोझा ढोता हूँ, आपका बहुत काम करता हूँ, मुझे आप २० रु० ही देते है और यह मुनीम जो कुछ नही करता, बैठे-बैठे हुकुम चलाया करता है इसे आप हमसे ५ गुना अधिक देते है, यह क्यो अन्तर है ? मालिकने कहा बता देगे १०-५ दिनमे कभी। दूसरे दिन ही सडक परसे एक वारात गुजर रही थी। तो मालिकने पल्लेदारसे कहा, जावो मालूम करो कि यह क्या चीज है ? वह पल्लेदार मालूम करने गया। पूछा किसीसे तो बता दिया कि यह बारात है। वह आकर मालिकसे कहता है हजूर यह बारात है। ठीक, थोडी देर बाद मुनीमसे कहा सेठ ने कि देखो यह क्या बात है ? तो मुनीम गया और बहुतसी बाते पूछकर जान लिया कि

यह बारात है, किसकी है, कहाँसे आयी है, कहाँ जायेगी, कितने दिनमे लौटेगी ? ये सारी बाते जान करके आया और एकदम सबकी सब बातें बता दी। फलाने गाँवकी बारात है, अमुक आदमी की है, अमुक जगह जा रही है, सब कुछ बताया तो मालिकने नौकरसे कहा देखो यह अन्तर इस बातका है। जितना हमने कहा उतना ही तुम समाधान लेकर आये और देखो इस मुनीमने सारी बाते बता दी। यद्यपि ये सारी बातें बारातके सम्बन्धमे वह पल्लेदार भी जान सकता था, पर उन बातोकी ओर उसका लक्ष्य ही नही दौड सका। तो अपना लक्ष्य होना चाहिये कि हम इसे हितपद्धतिसे और अधिक समझें। सज्जनोकी सूक्ति ऐसे प्रकृष्ट ज्ञानके लिये होती है।

सत्पुरुषोंकी सूक्तिका द्वितीय प्रयोजन—सज्जनोकी सूक्तिया विवेकके लिये होती हैं। विवेकका अर्थ यह है कि आत्मा और परका भेद जाननेमे आये। विवेकका अर्थ लोग ज्ञान करते हैं। इसने बडा विवेक किया अर्थात् बहुत ज्ञान किया। पर विवेकका अर्थ ज्ञान नही है। विवेकका सीधा अर्थ है टुकडे कर देना, न्यारा कर देना, पर न्यारा करना ज्ञानपूर्वक ही तो होता है, इसलिये विवेकका अर्थ ज्ञान प्रसिद्ध हो गया। पर जिसमे भेदविज्ञान न हो, हेयको छोडने, उपादेयको ग्रहण करने जैसी बात जिस ज्ञानमे न समायी हो उस ज्ञानको विवेक नही कहा, और कुछ सुननेमे ऐसा भद्दा भी लगता है जब विवेक शब्दका जहा सही प्रयोग होना है वहाँ ज्ञानका प्रयोग करे तो अटपटासा थोडा लगेगा। जैसे किसी चतुर पुरुषने हेय चीजको छोडकर उपादेयको ग्रहण करनेकी बुद्धिमानी की, उसके सम्बन्ध मे लोग यह कहेंगे ना, इसने बडे विवेकसे काम लिया। इसने बडा विवेक किया। उस प्रसगमे, उस कार्यके प्रतिबोधनके लिये यदि हम ऐसा कहे कि इसने बडा ज्ञान किया तो कुछ अटपटासा लगा या नही ? विवेकका अर्थ भेद कर देना है। सज्जनोकी सूक्ति हेयको छुटाकर उपादेयको ग्रहण करानेके लिये होती है। जिस ज्ञानके फलमे हेयका त्याग और उपादेयका ग्रहण करनेकी बुद्धि नही जगती है वह ज्ञान किस कामका ?

अविवेककी स्थितिमे जानकारीकी दशा—एक बहुत प्रसिद्ध दृष्टात है, सुवाको खूब रटा दिया सुवा पिंजडेमे पला हुआ था। उसे रटा दिया गया पाठ कि देख तू इस पिंजडे से भागना नही, भागना तो नलनी पर न बैठ जाना, नलनी पर बैठ जाना तो दाने चुगने की कोशिश न करना, दाने चुगना तो उलट न जाना, उलट भी जाना तो छोडकर उड जाना। पाठ इस तरहका उस तोतेने याद कर लिया। ज्ञान विवेक तो था नही। सो मौका पाकर वह पिंजडेसे उड़ गया, नलनी पर बैठ गया, दाने चुगने लगा, उलट गया, मज-बूतीसे पकड़े है नलनीको, और पाठ वही पढता जा रहा है। उसे छोडकर भाग नही पाता।

ऐसे ही मोही जीवका पाठ तो यह था कि जो मायामय चीजें है, विनाशकारी बाते है, इनका त्याग कर दो और सुखी करने की बातोको ग्रहण कर लो, पर यह न करे तो उस रटनेसे और उस ज्ञानसे लाभ क्या ?

विवेकसे ही ज्ञानकी सार्थकता—भैया ! हम भी पढते है, आप भी पढते हैं–'आतम के अहित विषय कषाय, इनमे मेरी परिणति न जाय ।' और कभी दिलमे ठोकर ही न लगे । मै कितनी निम्न दशामे हूँ, कैसा विषयकषायोमे जकड़ा हूँ, यह वास्तवमे अहितकारी है, मेरे लाभके लिये नही है । इतना तक भी चित्तमे न आये और रटा हुआ पाठ पढते जायें तो उसे ज्ञान कैसे कहा जाय ? ज्ञान तो वही है जो विवेकके लिये बने । सज्जन पुरुषोकी प्रवृत्ति विवेकके लिये होती है । जैसे किसीको रटा दिया यस और नो, इन दोनो शब्दोको बहुतसे लोग जानते है । कोई लोग ऐसे भी है जो यसकी जगह नो कह देते और नोको जगह यस कह बैठते हैं, क्योकि उन्हे सही पता तो है नही । वह यस और नो रटा लिया है, विवेकपूर्ण नही है । तो विवेक बिना तो यह ज्ञान भार है । चूकि इस चैतन्यमे ज्ञान हो रहा है ऐसा नही कह सकते, फिर भी करीब-करीब ऐसा मानो जैसे रिकार्ड बोल जाते हैं, ये विवेकपूर्वक बोलते हैं क्या ? ऐसे ही विवेक बिना ज्ञान भार है । सज्जन पुरुषों की सूक्तिया विवेकके लिये हुआ करती हैं ।

सत्पुरुषोंकी सूक्तिका तृतीय प्रयोजन—सत्पुरुषोका उपदेश हितके लिये होता है । हित उसे कहते है जिसमे शान्ति मिले । आत्माका हित शान्ति है, और शान्ति वही है वास्तव मे जहाँ आकुलता न हो, निराकुलता हो । निराकुलता सर्व प्रकारसे सदाके लिये हो सके । मोक्षमे निराकुलता है। उस मोक्षके लिये यत्न करना बस यही हितका प्रयत्न है। परम हित मुक्तिमे है । मुक्तिका अर्थ है छूटना। शरीर, कर्म, कषाय, विषय इच्छाएँ ये हम आपको जकडे हुये हैं, और इस जकडावसे-पदभ्रष्ट भी हम कोई हो जाते हैं । इस अज्ञान अधकारमे हम यत्न तो करते है बहुत बहुत सुखके लिये, पर जो यत्न होते हैं वे दु खके लिये होते है ।

ससरणदशामे हानि पर हानि—जैसे कोई कहते हैं ना जिसका उदय अच्छा नही होता कि भाई हमारा तो पापका उदय है, हम जिसमे हाथ डालते है उसमे ही नुकसान पडता है और यहाँ ससार अवस्थामे देखो तो तीव्र पापका उदय है । ये संसारी जीव जो भी यत्न करते है, पुरुषार्थ करते हैं उसमे ही इन्हे हानि उठानी पड़ती है, लाभ कुछ नही मिलता है। जैसे २०, ५० वर्ष हो गये, घर गृहस्थी, बाल बच्चोकी संभालमे कष्ट भी बहुत-बहुत उठाया। सब कुछ करनेके बाद आज भी सतोषकी स्थितिमे नही हैं, कहो उल्टा

और क्लेशकी स्थितिमे आ गये हो। जहाँ बहुत समूह हो जाता है, कोई बात मानता है, कोई नही मानता। समझ रहे है यह कि ये पुत्रादिक मेरे आधीन है, मैं जो कहूँ सो इन्हे शतप्रतिशत वही करना पड़ेगा, किन्तु है वे स्वतन्त्र पदार्थ। उनके मनमे आये तो करें न मनमे आये न करें, अब यहा दु खी होना पड रहा है क्योकि चित्तमे यह बसाया है कि मैं इनका अधिकारी हूँ। जो मैं कहूँ सो इन्हे करना पडेगा और यह बात वहा होती नही तो वहाँ दु खी होना पडता है।

भावसंसारमें शान्तिका नितान्त अभाव—भैया! १०, २०, ५० वर्ष गृहस्थीमे रहते हुये गृहस्थीके समस्त कार्य करते हुये आज बतावो कितनी शान्ति है, कितना लाभ हासिल किया है? कोई कुछ बता सकता है क्या? बता हो नही सकता क्योकि लाभ मिलता हो तो बतावें। कुछ हासिल हुआ हो तो बतावे। ऐसे ही इस समग्र ससारमे हर जगह भ्रमण करते हुये यह जीव अब तक इतने समागमोमे गुजर कर भी आज वैसाका ही वैसा दीन, कायर, आशावान्, जन्म-मरणके चक्रमे रहने वाला बना हुआ है। कितनी कठिन स्थितिमे फसा है और फिर भी कोई मोही अपनेको सुखी माने तो वह वास्तवमे सुखी नही है। घर, दूकानके कार्योमें और उस सुखकी मान्यताके विकल्पोमे भी निरन्तर क्षोभ बसा हुआ है, और वह शान्त विश्रान्त नही हो पा रहा है। इसकी उसे सुध नही है। इन सब बन्धनोसे मुक्ति मिले तो वहाँ निराकुलता समझिये।

मुक्तिके उद्यममें यथार्थ ज्ञानकी कर्तव्यता—मोक्ष पानेके लिये हमे यहीं अभीसे क्या काम प्रारम्भ करना चाहिये? काम यही करना चाहिये कि जिनसे हम छूटना चाहते है, उनसे हम इस समय भी अपने स्वरूप सत्वकी दृष्टिसे न्यारे है, इतनी बात ज्ञानमे आ जानी चाहिये, छूटना जब होगा तब होगा, पर शरीरका स्वरूप यह है, मेरा स्वरूप यह है अमूर्त ज्ञानानन्दस्वभाव है, ऐसा भेद जानने लगे, यदि यह भी नही किया तो अभी मुक्तिका मार्ग मिला न समझिये। बल्कि यह ससारभ्रमण और लम्बा होता चला जायगा। भेदविज्ञानकी बहुत बडी महिमा है। भेदविज्ञानका हम अब बहुत-बहुत उपयोग करे, इसका आश्रय लिये बिना, इसकी कृपा पाये बिना हम दु खोसे छूट नही सकते। सज्जन पुरुषोकी वाणी ऐसे ही हितके लिये हुआ करती है।

भेदविज्ञान व अभेदविज्ञानका कदम—हितपूर्ण ज्ञानमें प्रथम तो भेदविज्ञान है और फिर भेदविज्ञानका फल तो यह था कि हेयसे हटें और उपादेयमें लगे तो हेयसे हटकर हम अपने विषयभूत निज ज्ञानस्वरूपमे लग गये। अब परतत्वोकी सुध नही रही तो इसे कहते है अभेदज्ञान। तीन चीजें हुआ करती है, एक भेदविज्ञानका अभाव, दूसरी बात भेद

विज्ञान और तीसरी बात अभेदज्ञान। भेदविज्ञान अभाव तो दुःखमय ही है। वह तो अज्ञान अवस्था है। भेदविज्ञानके कालमे उत्कृष्ट शान्ति नही होती, पर हाँ शान्तिकी शुरूवात होने लगती है। उत्कृष्ट शान्तिका साधक तो निर्विकल्प अभेदज्ञान है, जिसमे सुख न मिले, शान्ति न मिले वह ज्ञान क्या ?

सत्पुरुषोकी सूक्तिका चतुर्थ प्रयोजन—सज्जन पुरुषोकी सूक्तिया शान्तिके लिये होती है, न तो चन्द्रमाकी किरणे इतनी शीतल है, न शीतल रत्नोके हार, न हिमगृह इतनी शीतल है जितने शीतल सज्जन पुरुषोके वचन हुआ करते है। क्या मानसिक क्लेश वाले को बर्फघरमे धर दे तो आताप शान्त हो जायेगा ? सज्जन पुरुषोके वचनोमे ही ऐसी क्षमता है कि मानसिक चिन्तावोके आशयसे जले हुये व्यक्तिको शीतल कर सके। सज्जन पुरुषोके वचन भेदविज्ञान उत्पन्न कराकर समस्त क्लेशोको शान्त करा देते है। सज्जन पुरुषोके वचन शान्तिके लिए ही हुआ करते है। शान्तिका अर्थ है विषाद, कषाये, आकुलताएँ मद होना। सज्जन पुरुषोकी सूक्तियाँ तो सभी जीवोमे शान्ति उत्पन्न करनेके लिए हुआ करती है।

सत्पुरुषोकी सूक्तिका पञ्चम प्रयोजन—सत्पुरुषोके उपदेश सम्यक्यथार्थतत्त्वके उपदेश के लिए ही हुआ करते हैं जिन वचनोमे विपरीत तत्त्वोका उपदेश भरा हो वे वचन सत्पुरुषोके नही है। जिनका अभिप्राय दूषित है वे जो बोलेंगे वह बिगाडके लिए बोलेंगे, और जिनका अभिप्राय विशुद्ध है वे जो भी वाणी बोलेंगे वह वाणी और परके उपकारके लिए होगी। सज्जन पुरुष कहते ही उसे है जो ससार, शरीर और भोगोसे विरक्त हो। जो न इस संसारमे लिपटना चाहता हो, न इस शरीर मे झुका रहता हो और भोगोसे अत्यन्त दूर रहता हो वह सज्जन पुरुष है। सज्जन पुरुषोकी वाणीका आश्रय लेकर भव्य जीव ससारके सकटोसे सदाके लिये मुक्त हो जाते है।

ग्रन्थकी भूमिकामे विविध ज्ञानका प्रकाश—यह ग्रन्थ ज्ञानार्णव रचा जा रहा है। क्यो रचा जा रहा है, क्या प्रयोजन पडा है ? इन बातोका समाधान देनेके लिए ये ५ प्रयोजन दिखाये है। इन ५ प्रयोजनोकी सिद्धिके लिए सज्जन पुरुषोकी वाणी होती है। इस श्लोकमे यह भी मर्म बताया गया है, रचयिताकी ओरसे मानो यहाँ कहा जा रहा है कि हम जो यह शास्त्र बना रहे है यह सर्वज्ञकी परम्परा से जो बात चली आयी है, जो उपदेश आया है उसीके अनुसार हम इसमे तत्त्वका उपदेश कहेंगे। सर्वज्ञ देवकी परम्परासे चले आये हुए उपदेश इन जीवोको हितकारी है क्योकि यही यथार्थ परम्परागत उपदेश प्रबोध करा सकता है, विवेक करा सकता है, हित करा सकता है, शान्ति करा सकता है,

उन्ही प्रयोजनोकी सिद्धिके लिये हम इस ग्रन्थको बतायेंगे। इस भूमिकामे क्या-क्या कहा जा रहा है ? वह सब वर्णन चल रहा है, इससे भी हम आप सब बहुत-बहुत परिज्ञान करेंगे। आचार्यदेवकी भूमिका कितना महान् आशय रखती है ? इस भूमिकामे आजके श्लोकोमे यह बात कही गई कि इसमे जो भी उपदेश होगा वह हितके लिये और शान्तिके लिये ही होगा।

तच्छ्रुत तच्च विज्ञान तद्ध्यान तत्पर तप'।
अयमात्मा यदासाद्य स्वस्वरूपे लय व्रजेत् ॥६॥

यह आत्मा जिसको पाकर अपने स्वरूपमे लयको प्राप्त हो जाय बस वही वास्तवमे श्रुत है अर्थात् शास्त्र श्रवण है, वही विज्ञान है, वही ध्यान है और वही उत्कृष्ट तप है।

शास्त्र श्रवणका प्रयोजन—जैसे कोई पुरुष बडे चावसे, बडे श्रमसे तो रसोई बनाये, भोजन व्यवस्था करे और सब कुछ कर चुकने पर भी खिलाने या खानेकी मनमे बात ही न सोचे, विचार ही न करे यो ही छोड़ दे, फेंक दे तो उसे लोग पागल जैसा कहेगे। काहे के लिये यह श्रम कर रहा है ? जैसे कोई नदीमे नावमे बैठकर नावको खेवे और कभी पूरब, कभी पश्चिम, कभी उत्तर और कभी दक्षिण दिशाको वह नाव खेता रहे, किसी किनारे पर लगनेका लक्ष्य ही न बनाये तो ऐसे नाव खेने वालेको तो कोई विवेकी न कहेगा। जैसे कोई लेखक भी ऐसे हो सकते है लिख डालें ५-७ सफे और उसमे क्या कहा गया है, कुछ न भरा हो तो ऐसा लेख लिखने वाला विवेकियोके आदर योग्य नही है, कोई पुरुष १०-१५-२० मिनट तक बोले कहीका छोर कहीका ओर ऐसा बोलने वालेको कोई विवेकी आदर तो न देगा। ऐसे ही धर्मके नाम पर कितना ही कुछ कष्ट कर लिया जाय, भक्ति, पूजा, ध्यान, उपवास गानतान, संगीत समारोह अथवा शास्त्रका प्रतिदिन सुनना, बड़ी ज्ञानकी बाते कहना सब कुछ कर लिया जाय, लेकिन किसी भी क्षण यह आत्मा पर पदार्थोंके विकल्पसे हट कर अपने स्वरूपमे प्रकाश न करे, अपने स्वरूपकी सुध भी न ले तो ऐसे बडे श्रमोको भी ज्ञानीसत आदर न देगा। शास्त्रश्रवण वही है जिसका आश्रय करके जिस बीच ऐसा ध्यान लगाये, चित्त बनाये कि अपने स्वरूपमे लीनताको प्राप्त हो सकता है।

श्रोतावोको धर्मानुभवका विशेष अवसर—देखो इस प्रसगमे वक्तासे भी अधिक आत्मीय आनन्द लेनेका अवसर श्रोताको है। सभामे बोलने वाला व्यक्ति किसी क्रमसे बोले, कुछ कहना चाहे तो वह स्वरूपमे लीन होकर तो नही बोल सकता, भले ही उसके निकट फिरता हुआ बोले। वक्ताको यह अवसर कहाँ है कि वह बोलते हुए अपने स्वरूपमे

लीन भी हो जाय और एक सहज आनन्दका अनुभव भी कर ले। क्योकि उसे श्रम करना है, बोलना है, लेकिन श्रोतावोको क्या है, बैठे है, बड़े ध्यानसे सुन रहे है, वही किसी समय सर्वविकल्प तोडकर अपने आपके स्वरूपमे लीन होना चाहे तो उसे अवसर है। शास्त्र श्रवण तो वास्तवमे वही है कि जिसको पाकर यह अपने स्वरूपमे लीनताको प्राप्त हो जाय। सुनते हुएमे यह ध्यान रहना चाहिये कि मेरा हित क्या है? मुझे हित चाहिये, शान्ति चाहिये, सत्यमार्ग चाहिये, मुझे कल्याणकी वाञ्छा है ऐसे भावपूर्वक शास्त्र श्रवण हो तो उससे इस प्रयोजनकी सिद्धि सम्भव है। कोई पुरुष पहिले घरसे ही चलते हुए यह सोचकर आये कि आजमै जाऊँगा शास्त्रमे और देखूँगा कि किस तरहसे वक्ता बोलता है, क्या ढग बनाता है और जो प्रभाविक कला होगी उसे भी हम सीखेगे, हम भी वैसा बोलेंगे अथवा कोई बात अनुचित दीखे विरुद्ध निकले तो मैं दुनियाको बताऊँगा कि इन मे यह दोष है। तो कुछ भी बात हो, अथवा आज मैं ऐसा पूछूँगा और देखूँगा कि क्या उत्तर देते हैं? कुछ भी विकल्प करके यह विकल्पक शास्त्र श्रवणका आनन्द नही ले सकता है। जो अपनेको न कुछसा समझकर आये, मुझ तो ससारके बडे सकट लगे है, क्लेश जालमे पड़े हुए है, ये मेरे क्लेशजाल कैसे छूटे, शान्तिका माग कैसे मिले, ऐसा विशुद्ध आशय हो तो शास्त्रश्रवणका आनन्द उसके हाथ लग सकता है, और इस प्रकारका शास्त्रश्रवण वास्तवमे श्रवण है।

श्रोताका एक दृष्टांत—एक कथानक है कि एक घुड़सवार जा रहा था। उसे एक भवनमे बडी जगहमे बहुतसे आदमियोकी भीड जाती हुई दीखी। लोगोसे पूछा कि यहाँ बहुतसे लोग क्यो जा रहे हैं? लोगोने बताया कि हम सभी कथा सुनने जा रहे है, यहाँ पडित जी रोज-रोज कथा पढते हैं। उसने कहा अच्छा मैं भी कथा सुनने चलूगा। घोड़े को बाहर छोड दिया वह भी उसी हालमे पहुँचा। सुयोगकी बात कि उस दिन कुछ वैराग्यका प्रकरण चला। उस प्रकरणको सुनकर इसको तो वैराग्य जग गया। घोडा तो कही चला गया और वह जगलमे जाकर किसी योगीसे सन्यास लेकर उसका पालन करने लगा है। अब एक दो वर्ष बाद वही फिर उसी शहरसे निकला तो उसी जगह बहुतसे आदमी जा रहे थे। लोगोसे पूछा कि भाई ये लोग कहाँ जा रहे हैं? बताया कि ये सभी लोग कथा सुनने जा रहे हैं। ये कथा सुनने कबसे जा रहे हैं? बताया कि इसकी परपरा १०-१२ वर्षसे चली आ रही है। तभीसे ये लोग जा रहे है। तब सन्यासी बोला कि अहो धन्य है ये भाई, हम तो एक दिन कथा सुनने पहुँचे तो हमारे ऐसे चोट लगी कि फिर मै घरमे नही रह सका और इनको धन्य है जो इतने दिनोसे कथा भी सुन रहे है व रोज-रोज उपदेशकी चोट भी सहते जाते हैं।

भैया ! भीतरसे यदि हितकी आकांक्षा जगी है तब तो शास्त्रश्रवणसे लाभ है और यदि परम्परा चलानेकी गरजमे हम इस कुलके हैं, हमारा यह काम है, हम ही न आयेंगे तो समाजके और लोग कैसे आयेंगे या किन्ही भी बातोसे शास्त्रका सुनना ही तो वह किसीको लाभ न देगा। इस कारण सुननेमे एक यह भावना हो कि मै कर्मोसे घिरा, शरीरसे बंधा, नाना सकटोमे पडा, कैसे इन सकटोसे मुक्त हो सकूं अब मेरा हित कैसे हो, शान्ति कैसे मिले, इस भावनाके साथ शास्त्रका श्रवण होना चाहिये। देखिये अपनी भलाईकी जो बात है वह सब अपने हाथ है। जिन विचारोमे कल्याण भरा है उन विचारोका करना तो मुझे ही है, मै ही अपनी भलाईके लिए सब कुछ कार्य कर सकता हूँ। शास्त्रश्रवण वही है जिसको पाकर यह आत्मा अपने स्वरूपमे लीन होनेका प्रयत्न करे।

सफल विज्ञान—विज्ञान भी वही है, विविध-ज्ञान, भेद-विज्ञान भी वही है जिसको पाकर यह जीव अपने स्वरूपमे लीन हो जाय। भेद-विज्ञान तब तक भेद-विज्ञान न कहलायेगा जब तक हेयसे हटने और उपादेयमे लगनेका परिणाम उत्पन्न न हो। जैसे चावल शोधे जाते हैं तो उसमे यह भेदविज्ञान रहता है कि चावल तो यह है और बाकी कूडा यह है, मुझे चावल अपने पास रखना है और कूडा फेकना है। ऐसा चावल शोधनेमे चित्त रहता है कि नही ? न रहे तो वहाँ जाना ही क्या ? ये क्रोधादिक भाव मेरे भाव नही है, परभाव हैं। मेरा भाव तो एक चैतन्य प्रतिभास है, प्रकाश है। ऐसा किसीको भेद-विज्ञान जगे और क्रोधादिकसे हटनेका यत्न न हो तो इसे कौन मान लेगा कि यह भेद-विज्ञान है ? आश्रव आदिक परभावोमे और आत्माके सहज स्वभावमे भेदविज्ञान है तो कषायोसे इसको हटाता हुआ ही उत्पन्न होता है। यह नही हो सकता कि भेदविज्ञान भी जग जाय और आश्रवमे कषायोमे विषयोमे आसक्ति बनी रहे। यदि आसक्ति है तो वहाँ ज्ञान नही है।

आत्मपरिच्छेदन बिना विज्ञानकी निष्फलता—विज्ञान वही है जिसकी प्राप्ति करके यह आत्मा अपने स्वरूपमे लीन हो जाय। ज्ञानकी बात जो बोले अर्थ तो उससे निकलेगा ही, पर उसका अर्थ हृदयमे घटित न हो तो इसके लिये वह ज्ञान; ज्ञान नही रहा, वह तो एक बोलचाल रहा, श्रम रहा, सीखना रहा। जैसे किसी छोटे बच्चेको व्याख्यान रटा दिया। कलापूर्ण ढगसे वह व्याख्यानको बोल देता है, लेकिन उसका मर्म उसे विदित नही हो पाता है। कितने ही लोग सस्कृतके स्तवन बड़े राग से पढते है परन्तु उनका अर्थ विदित नही है तो मर्म नही उतर सकता।

ऊपरी ज्ञान वचनका एक दृष्टान्त—एक किसी भाईने तोता पाल रखा था और उसे यह सिखा दिया था इसमे क्या शक ? एक कोई ब्राह्मण भाई आया, उसे वह तोता बड़ा सुन्दर लगा, पूछा क्यो भाई ! तोता बेचोगे ? वह बोला—हाँ-हाँ बेचेगे । ''' कितने रुपये लोगे ? १०० रुपये लेगे.। अरे ! तोते तो ८-८ आनेके आते है, इसमे १०० रु०के योग्य कौनसी खास बात है ? उसने बताया कि इस तोतेसे ही पूछ लो कि तुम्हारी १०० रु० कीमत है या नही । उस ब्राह्मणने तोतेसे पूछा—कहो तोते, तुम्हारी कीमत १०० रु० है क्या ? तो तोतेने क्या कहा—इसमे क्या शक ? ब्राह्मणने सोचा कि तोता योग्य है, सो उसे १०० रु० मे खरीद लिया । ब्राह्मणने अपने घर ले जाकर उसे खूब अच्छी-अच्छी चीजे खिलाई। शामको ब्राह्मण रामचरित्र लेकर बैठ गया, रामकी कहानी सुनाने लगा तो तोता बोला—इसमे क्या शक ? अब वह रामचन्द्रके गुण गाने लगा। तोतेसे पूछा कहो तोते ठीक है ना ? तो उसने क्या कहा ? इसमे क्या शक ? सोचा कि यह तो बहुत विद्वान् मालूम होता है । कुछ आत्मस्वरूपकी चर्चा करने लगा, फिर पूछा कहो ठीक है ना ? तो तोता क्या कहता—इसमे क्या शक ? अब तो ब्राह्मणको भी शक हुआ कि यह यही बात बार-बार बोलता है । ब्राह्मणने पूछा—कहो तोते क्या मेरे १०० रु० पानीमे चले गए ? तोता क्या बोला ? इसमे क्या शक ? तो मात्र ऊपरी ज्ञानकी बात, बोलने की बात और है, और घटमे उतरनेकी बात और है ।

वास्तविक विज्ञान—विज्ञान वही है जिसको पाकर यह आत्मा अपने स्वरूपमे लीन हो जाय, स्वरूपमे लीन होनेका अर्थ क्या है ? यह आत्मा जो परपदार्थोंके सम्बन्धमे नाना विकल्प मचा रहा है, इष्ट अनिष्ट, झगडा विवाद, पक्ष नाना तरगे उठ रही है ये सब तरगें समाप्त हो और केवल एक जाननमात्रका अनुभवन रहे, कोई विकल्प न उठे, केवल एक प्रतिभास ही चारो ओर सम्यग्ज्ञानका रहे ऐसी स्थिति बने उसे कहते है स्वरूपमे लीन होना । ऐसी स्थिति जिस विज्ञानको पाकर हो, विज्ञान तो वही है ।

अनुभूतिकी प्रयोग साध्यतापर एक लौकिक दृष्टान्त—यह ज्ञान प्रयोग और अनुभवसे सम्बन्ध रखता है । केवल एक शाब्दिक जालसे ज्ञान नही बनता । किसीको रोटी बनाने की विधि वचनोसे खूब सिखा दो, देखो आध घटा पहिले आटा सान लो, फिर उसे गूंदो, फिर उसकी लोई बना लो, लोई छोटी होनी चाहिये । परथन लगाकर उसे बेलो, फिर रोटी तवे पर डाल दो, उसे जल्दी ही पलट दो, दूसरे पर्तको कुछ देरमे पलटो फिर धधकते हुए कोयलेकी आंचमे रखकर उसे जल्दी-जल्दी उलटते जावो। किसी तरफ उसमे

छेद हो जाय तो चिमटेसे बंद कर दो। यों रोटी बन जायेगी। इस प्रकार वचनोंसे किसी को रोटी बनाना खूब सिखा दो और दूसरे दिन धर दो आटा व कहो बनावो साहब रोटी, तो क्या वह रोटी बना पायेगा? नहीं बना सकता। यों ही वचनोंसे चाहे चार महीने तक सिखा दो आत्मानुभवका स्वरूप, पर वह अनुभव नहीं बना सकता। जब तक कि खुद विकल्प तोड़कर अन्तस्तत्त्वका प्रकाश न पाये। अरे वह तो प्रयोग साध्य चीज है। जैसे आपने वचनोंसे रोटी बनाना सिखा दिया, प्रयोग करके नहीं सिखाया तो वह रोटी कैसे बना पायेगा? ऐसे ही इन ग्रन्थोंके पढ़ लेनेसे बाच लेनेसे अपने आपको कुछ लाभ नहीं मिल पाता। जो भी शास्त्रमें पढ़े अथवा सुने उसे अपने आपमें घटित करे, अपने आपमें अपना कार्यक्रम बनावे, यह विधि होगी शास्त्रविज्ञानकी।

हितकारी ध्यान—ध्यान भी वही है जिस ध्यानको पाकर आत्मा अपने स्वरूपमें लीन हो जाय। देखिये मनुष्य काम अनेक करता है, धन कमाना, मकान बनाना, बड़ी व्यवस्थाएं करना, लोकमें, गांवमें, देशमें अपना रुतबा रखना, नाम रखना ये कितने प्रकारके काम मनुष्य कर रहे हैं, पर वे सब काम इस मनुष्यको शान्त नहीं कर सकते। बहुत-बहुत काम करनेके बाद रोताका ही रोता अपनेको पाता है यह। बल्कि कभी-कभी तो अपनेको लुटासा अनुभव करता है। इससे तो अच्छी मेरी २० साल पहिलेकी स्थिति थी, आज अपनेको लुटा हुआसा अनुभव कर रहे हैं। बात यह है कि जो कुछ किया पर का विषय बनाकर, परके सम्बन्धमें जो भी भावात्मक यत्न किया वह सब अपने घातके लिये किया गया है, अपने विकासके लिये नहीं किया गया।

संसारी जीवमें ध्यानकी वृत्तियां—ध्यान बिना कोई रहता है क्या? प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी ध्यानमें रहता है, जिसको जो बात प्रिय है, जो बात इष्ट है वह उसके ध्यानमें बना रहता है। किसीका धनमें, किसीका पुत्रमें, किसीका स्त्रीमें, किसीका भगवानके भजनमें, किसीका आत्मस्वरूपमें ध्यान बना रहता है। ध्यान बिना कोई मनुष्य रह नहीं सकता। इन बातोंको अधिक बतानेकी आवश्यकता नहीं है। सभीको मालूम है, सभीको अपने-अपने जीवनका अनुभव है। सब पर घटनाएं गुजरती हैं। सबके बुद्धि और प्रतिभा है। थोड़ा हितकी आकांक्षाके भावसे निर्णय करें तो सब कुछ ठीक निर्णयमें आ जाता है। ध्यान तो वास्तवमें वही है जिसको पाकर अपने आत्मस्वरूपमें लीन हो जाय। सम्यग्ज्ञानके प्रकाश बिना ये सब बातें उत्पन्न नहीं हो सकती।

नीरंग और निस्तरङ्ग उपयोग—भैया! सम्यग्ज्ञान वही है जिस प्रकाशमें प्रत्येक पदार्थ खुदका अपना-अपना स्वरूप लिये हुए स्वतंत्र स्वयमें प्रभु हैं। इस प्रकारकी दृष्टि

न बने, ऐसा ज्ञान न जगे तव तक वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान नही कहला सकता। अहितसे हटाये, हितमे लगाये, ऐसा ज्ञान जब तक नही बन सकता तब तक सम्यग्ज्ञान कहला नही सकता। ध्यान वही श्रेष्ठ है जो इस आत्माको अपने आपमे लीन कर दे, नीरग, निस्तरग बना दे। समुद्रके या नदीके किनारे आप बैठें तो उसमे आपका प्रतिबिम्ब पडता है, आप अपना मुख उसमे देख सकते है। यदि वह जल नीरंग और निस्तरग है तो आप उसमे अपना फोटो साफ निरख सकते हैं और यदि सरग, सतरग है तो उसमे अपना फोटो नही देख सकते। वह पानी गदा हो, कीचडयुक्त हो तो उसमे आपको फोटो नही दीख सकती और जलमे यदि चारो ओरसे तेज लहरे चल रही हो तो भी उसमे आपको अपना फोटो नजर नही आ सकता। ऐसे ही इस आत्मामे रागद्वेषोका रग चढा हुआ हो तब भी अपने स्वरूपके दर्शन नही हो सकते और वे रागद्वेष रच भी कम हो, मद हो लेकिन चचलता अधिक हो, ज्ञानकी स्थिरता न बन सकती हो वहाँ भी आपको अपना दर्शन नही हो सकता। सम्यग्ज्ञानके बलसे जब एक सहजस्वरूपका ध्यान वनता है तो वहाँ रग और तरग दोनो हट जाते है और वहाँ स्वरूप दर्शन होता है। ज्ञानकी स्थिरताको ध्यान कहते है। ध्यान हितकर वही है जिसे पाकर यह जीव अपने स्वरूपमे लीन हो।

वास्तविक तपश्चरण—तपस्या भी परम वही है जिसमे स्वरूपदर्शन हो। अनशन कर लिया तो क्रोध और बढ गया, क्योकि जब भूख रहती है तो क्रोध बढनेका अवसर प्राय: जल्दी आता है। कोई प्रतिकूल बात करे तो क्रोध बढ जाता है, यह सबकी बाते नही कही जा रही हैं, किन्तु प्राय जैसा साधारणजनोंमे होता है, वैसा बताया जा रहा है। तो वह तपस्या क्या रही जिसमे कषाय और बढ जाय, अथवा मान बढ़ जाय, लोग समझे कि ये व्रती हैं, ये ऐसा उपवास रखते है। तो वह तपस्या क्या रही? अथवा माया-लोभ बढ जाय। देखो धर्म करनेसे पुण्यबध होता है, फिर उसे स्वर्गके सुख मिलते है। कर रहा है, लग रहा है तपस्यामे। अरे भैया! यहाँ शान्ति तो हुई ही नही अभी क्योकि उद्देश्य भी सांसारिक रख लिया। तपस्या भी वही है जिसमे रहकर यह जीव अपने स्वरूपमे लीन हो सके।

तपश्चरणकी लाभप्रद पद्धति—देखो अनशन हो, कायक्लेश हो, गर्मीका सहन हो, किसी प्रकारका भी तपश्चरण हो उस तपश्चरणमे सीधा लाभ तो यह होता है कि विषय कषायोमे चित्त नही बसता और ऐसी स्थितिमें जबकि विषयकषायोका विकल्प नही रहा तो इस तपस्वीको आत्माके स्वरूपके स्वरूपमें लीन होनेका मौका मिलता है। पर यह लीनता एक ज्ञानानुभाव द्वारा ही होती है। इसमें यह शिक्षा दी है कि सुनो तो इस तरह

कि अपने आपको छूते रहो, ज्ञान करो तो ऐसा कि अपनी आपकी सुध रहे, ध्यान करो तो ऐसा कि अपने आपमें लीनता हो जाय, तपस्या करो तो ऐसी कि अपने आपके निकट रहा करे, यही एक अपने कल्याणकी विधि है।

दुरन्तदुरिताक्रान्तनि सारमतिवञ्चकम् ।
जन्म विज्ञाय क स्वार्थे मुह्यत्यङ्गी सचेतन ॥१०॥

जन्मकी अनाद्यन्तता—यह जन्म अर्थात् ससारके इन भवोमे उत्पन्न होना बहुत पापो का आक्रान्तक है, जिसका परिणाम खोटा है। लोग जन्मको निरखकर सोचकर हर्ष मनाया करते है, किन्तु जन्म अच्छी चीज नही है, उसमे हर्षकी क्या वात आ गई? खुद के जन्ममे तो हर्ष मानने लायक बुद्धि भी नही चलती। किसने अपने जन्म पर खुशी मानी? अरे उसे तो कुछ होशहवास ही नही, जन्म लेने वाला खुशी क्या मनाये। जन्म लेने वाला व्यक्ति तो खुद वडा क्लेश भोग रहा है। जन्ममे एक तो निकलनेका दुख, दूसरे अत्यन्त कोमल शरीर, जगह-जगह चोट लगनेकी वेदना भोगता है, जन्म लेने वाले को कहाँ होश है कि इस बातकी खुशी मनाये कि लो मेरा जन्म हुआ है। हा, ये बडे लोग वच्चेके जन्मपर खुशी मनाया करते हैं। उनका वह खुशी मनाना एक मोहसे भरी हुई वात है। काहेकी खुशी?

जन्मसे अलाभ—कदाचित् कोई यह खुशीको सिद्ध करनेकी बात कहे कि मेरे घर एक जीव उत्पन्न हुआ है, वह श्रावक बनेगा, धर्मपालन करेगा, मोक्षका मार्ग निभायेगा उसकी खुशी है। यदि इस बच्चेके पैदा होने की खुशी है तो अन्य बहुतसे बच्चे पैदा होते हैं, उनके भी पैदा होनेकी खुशी मनाना चाहिये, पर कौन मनाता है? ग्रन्थोमे तो यह जरूर लिखा है कि गृहस्थको गृहस्थीका धर्म चलानेके लिये सतान उत्पन्न करना चाहिये, पर किसकी यह दृष्टि है? केवल मोहसे आक्रान्त होकर ही व्यवहार चलता है। खुदके जन्म पर दृष्टि दो। जन्म हुआ तो क्या हो गया है, कौनसी खास बात हुई? ससारमे परि-भ्रमण कर रहे थे, किसी जगहसे मरकर आये, यहाँ एक नया शरीर पा लिया। ऐसा तो करते आये अनन्तकालसे। कौनसी बडी विशेषताकी बात हुई?

हर्ष और विषादका वास्तविक आधार—भैया! जन्म कोई विशेषताकी बात नही है, और मरनेमे कुछ खो जानेकी भी बात नही मरण हो रहा है तो ठीक है, उस आत्माका क्या विगाड है, जिसे कल्याणकी वाञ्छा है, आत्मतत्त्वकी सुध है उसे मरण समयमे कुछ विषाद नही होता, और जिसके मोह है, पर्यायबुद्धि है, कुछ जीवोको अपना मान लिया है ऐसे पुरुष ही मरणके समयमे विषाद किया करते हैं। हाय! ये मेरे बच्चे नाती पोते अब

बड़े हो गये थे, सुख लूटनेके अब दिन थे। पर इन्हे छोडकर मरण करके जा रहे है, यो सोचकर दु खी तो मोही पुरुष होते है। दु ख काहेका ? अपनी खुशी आये थे अपनी खुशी जा रहे है, इसमे हर्ष विषाद क्या ? हर्ष विषाद तो उसका करे कि मेरा परिणाम निर्मल बने उसकी खुशी मनावे, उससे बढकर वैभव कुछ नही है। परिणामोमे मलिनता आये, विषयकषायोकी बात आये, दूसरेको धोखा देनेकी बात आये, और और भी गदगिया आये उसका रज करे। हाय ! मेरे कैसा पापका उदय है। यह कैसा अशुभ भाव बन रहा है ?

निर्वाणसे प्रथम स्थिति—यह जन्म पापोसे आक्रान्त है। जिसका बडा खोटा परिणाम है ऐसे पापोसे भरा हुआ यह जन्म है जन्मसे किसीकी सिद्धि नही होती है। मरणसे तो सिद्धि हुई है। भगवान मोक्ष गये तो मरणके बाद गए कि जन्मके बाद ? निर्वाण जन्मके बाद होता है कि मरणके बाद होता है ? मरणके बाद। आयुके क्षयका ही तो नाम मरण है। जब आयोगकेवली गुणस्थानमे अन्तमे आयुका भी क्षय हो जाता है तब ही तो वे निर्वाण पाते है, सिद्ध होते हैं। सदाके लिये शुद्धि और आनन्द मिल जाना यह मरण-पूर्वक होता है, जन्मपूर्वक नही होता। ज्ञानियोकी दुनियामे मरणका तो समारोह मनाया जाता है जन्मका समारोह नही मनाया जाता। मोहियोकी दुनियामे जन्म समारोह मनाया जाता है मरण पर नही मनाया जाता। मरणके समय समारोह मनानेकी बात वहाँ सोचियेगा जहाँ अनेक साधु संत हैं, सगमे और कोई साधु समाधिमरणमे आया है, समाधि धारणकी है उसकी आत्माकी रक्षा के लिये ४८ मुनि उसकी सेवा करते हैं, और किस प्रकारकी सेवा—कोई चार फर्लाङ्ग दूर बैठे है, कोई निकट सीमाके बाहर बैठे है ताकि कोई मोही आक्रान्ता वहासे न गुजरे और उस समाधिमरण-वाले साधुको विघ्न न करे, अथवा कोई उससे विवाद करने आया है तो उसे वे मुनि दूर हटा देते है, कितने ही मुनि उसकी सेवा करने वाले होते हैं। यह है उनका समारोह। तो ज्ञानी पुरुष मरणमें जलसा समारोह करते हैं।

मुट्ठी बांधे आना व हाथ पसारे जाना—लोग कहते है कि यह जीव मुट्ठी बाधे आता है और हाथ पसारे जाता है। इसका और क्या अर्थ है ? पूर्व भवकी कमाई साथमे लेकर आता है, और ज्यो-ज्यो बड़ा होता जाता है, विषयकषायोमे पडकर अपने पुण्यको खत्म करता जाता है, यो सारा पुण्य खत्म करके अन्तमे सब कुछ खोकर हाथ पसारे जा रहा है। यह जन्म नि.सार है। जैसे कही कोई गुडोके बीच फस जाये तो किसी भी प्रकार उनसे छूटनेके लिये रागका व्यवहार करना पड़ता है, ऐसे ही जानो कि हम अनन्त विषय वासनावोसे रगे हैं तो ऐसी स्थितिमे एक नरभवका जन्म ऐसा उत्तम सहारा है कि यहाँ

किसी तरह अपने बचावकी बात बनाकर इसके माध्यमसे हम सदाके लिये जन्मके पञ्जेसे छूट जायें, इस कारण इसे सारभूत कहा है, पर वस्तुत जन्म तो जन्म ही है।

जन्मकी वञ्चकता—यह जन्म, यह ससार अत्यन्त ठगिया है। जैसे कोई पुरुष थोडे से सुखका लोभ देकर उसका सर्वस्व हर लेता है इसी प्रकार यह जन्म थोडेसे विषयोका लोभ देकर इसका सर्वस्व हर लेता है और नरक निगोदका निवास दिया करता है। ऐसा यह नि सार जन्म है। इसकी असारता जानकर कौन बुद्धिमान् पुरुष अपने स्वार्थमे मोहको प्राप्त होता है, अर्थात् आत्मकल्याणमे प्रमादी होता है। इन सर्वसमागमोको असार जान कर आत्मकल्याणमे लग जावो, आत्मकल्याणमे प्रमादी मत बनो। तुम तुम्हारे साथ रहोगे, ये सारे समागम न रहेगे। जब हम ही हमारे साथ रहेगे तो अपनेको ऐसा योग्य बनायें कि भविष्यमे हम सकट न पायें। यहांकी ही सारी व्यवस्थाएं बनाते रहनेमे तो अपनी भूल ही है, और इस भूलके कारण कुछ सिद्धि नही होनेकी है।

निजके सुधकी भूलमे विडम्बना—एक बाबू जी अपने घरकी व्यवस्था बना रहे थे तो उस व्यवस्थामे जो चीज जहाँ रखनी है रख दिया और उस जगह उस चीजका नाम डाल दिया। जूतोको जगह जूता लिख दिया, छातेकी जगह छाता, कुर्तेकी जगह कुर्ता, छड़ीकी जगह छड़ी यो सभी चीजे रख दिया और उसी जगह उसका नाम लिख दिया। यही तो व्यवस्था कहलाती है। इसी धुनमे व्यवस्थामे लगे हुए बाबू जी को नीद आ गयी। बाबू जी पलग पर लेट गये। जहाँ लेटे उस जगह लिख दिया मैं, याने यहा मैं धरा हूँ। सो गए। जब सुबह सोकर जगे, उठे तो देखा कि हमने जो व्यवस्थाकी थी वह ठीक है कि नही। जो चीज जहाँ धरी थी वह चीज वही पर ठीक-ठीक रखी है या नही? सब कुछ देखा तो ठीक दीखा। जब पलग पर दृष्टि गई जहा पर मैं लिखा हुआ था वहाँ देखा तो मैं न था। सोचा कि मै कही खो गया। खाटके छेदोमे देखा वही मैं घुसा तो नही है, नीचे देखा कही टपक तो नही गया। जब कही न दीखा तो अपने नौकरको पुकारा। अरे मनुवा दौड, देख मेरा मैं गुम गया। नौकरने सोचा कि आज क्या हो बाबू जी को इस तरहकी बात कह रहे है। वह बात समझ गया। कहा बाबूजी आप थक गये है, सो लो, आपका मैं आपको मिल जायगा। उसे विश्वास हो गया कि यह पुराना नौकर है झूठ न बोलेगा। कही देखा होगा, मिल जायेगा। बाबूजी सो गए। बादमे नौकरने जगाया, उठो बाबूजी देखो आपका मै मिल गया कि नही। ज्यो ही जगे त्यो ही खाट पर हाथ फेरने लगे। बाबूजी बडे खुश हुए ओह! मेरा मै मिल गया।

व्यामोही प्राणीकी बेसुधी—अपनेको भूले हुए बाबूजीकी तरह ये लौकिकजन घर,

दूकान इत्यादिकी सारी व्यवस्थाएं बनाते है और इसका पता नही है कि मै क्या हूँ, मुझे क्या करना चाहिये ? ये सारी बाते भूल गए, इसका फल क्या होगा ? यहाँ जो दिखती हुई मायामय दुनिया है यह असार है। स्वप्नमे देखी हुई बात स्वप्नमे झूठ नही मालूम पडती, किन्तु जब जग जाता है तब पता होता है, ओह सारा झूठा देखा, ऐसे ही मोहकी नीदमे यह सब कुछ मायारूप नही मालूम होता, वाह मेरे ही तो लड़के है, मेरा ही तो घर है। जो खुद है वह खुदको बडा अच्छा लगता। अभी किसी लडकीसे कहो कि तुम लड़का हो तो वह कहेगी हट मै क्यो लडका होती ? किसी छोटे लोगोसे भी कहकर देख लो कोई बडी जातिका नाम लेकर तो वह उसे पसद नही करता। मै क्यो ऐसा होता ? कैसा जाल छाया है, जो जिस पर्यायमे है, जो जिस ढगमे है, तनमे है उसे वह ही सब कुछ मालूम होता है। आप किसी बूढे आदमीसे कहे कि तुम्हारे गाल भी पिचक गए, दात भी गिर गए, सारा शरीर सिकुड गया, भूत जैसा तुम्हारा शरीर लगता है, देखो हमारा शरीर पुष्ट है, अच्छा है, इससे तुम राग करने लगो, अपने शरीरका राग छोड दो तो क्या वह अपने शरीरका राग छोड़ देगा ? अरे कैसे छोड़ सकता है ? उसके लिये तो वही अच्छा है।

धर्मपालनमें एकचित्तताकी आवश्यकता—यह लोक मायाजाल है, यह जन्म यह ससार अति ठगिया है। अब अपने कदम बढावो आत्मकल्याणके लिये। जैसे किसी व्यापारीको समझाते है देखो तुम दसो काम न छेड़ो, किसी एक कामको मजबूतीसे पकड़ कर चलो तो तुम्हारा काम व्यवस्थित बनेगा। ऐसे ही थोडा पूजनमे आ गये, थोडा सत्सगमे आ गये, थोड़ा गुरुसेवामे आ गये, थोडा दूकानमे, थोडा लड़को बच्चोमे, सब काम कर रहे है। अरे, तुम जितनी देरको धर्म करना चाहो उतनी देरको ऐसा पक्का साहस बनाकर उतरो कि मेरा मात्र मैं हूँ, और चित्तमे प्रतीतिमे ऐसा दृढ विश्वास बना लो कि सब असार हैं बाते। मेरा तो केवल यह मै चित्स्वरूप ही मेरे लिये सार है। प्रतीति बना लो ऐसी। देखो इस शुद्ध ज्ञानके प्रतापसे क्षमा, नम्रता, उदारता, सरलता सभी गुण विकसित हो जायेगे। इस ग्रन्थकी भूमिकामे बात यह कह रहे हैं कि इस ससार को असार जानकर इसमे लीन मत हो और हितको न भूलो। एक आकांक्षा उत्पन्न करा रहे है ताकि हितभरी बातोको सुनकर यह श्रोता अपना कल्याण कर सके।

अविद्याप्रसरोद्भूतग्रहनिग्रहकोविदम्।
ज्ञानार्णवमिमं वक्ष्ये सतामानन्दमन्दिरम् ॥११॥

ग्रन्थकारका शुभ संकल्प—इस श्लोकमे ग्रन्थकार एक अपना शुभ सकल्प कर रहा है

कि मैं इस ज्ञानार्णव ग्रन्थको कहूँगा। जो ग्रन्थ अज्ञानके फैलावसे उत्पन्न हुआ जो परिग्रह पिशाच ग्रह है उसका विग्रह करनेमे प्रवीण है। बताओ भैया! अनादिकालसे जो अज्ञान अधकार आज तक छाया चला आ रहा है इसे समूल नष्ट करना है कि नही? नष्ट करना है ना? तो वह इन विधियोंसे ही तो नष्ट होगा। आचार्य सन्तोकी वाणी सुनना, ज्ञान विज्ञानके भेदविज्ञानकी बात सुनना और सुनकर उनका आचरण करना यही तो पद्धति है, इस अज्ञान अधकारके सकटोको मिटानेकी। तो यह करना चाहिये ना? अब जितना विलम्ब आप करेंगे उतना ही और संकटोमे रहनेकी बात है। इस ग्रन्थमे जो उपदेश होगा वह उपदेश अज्ञान अधकारको मिटानेमे समर्थ है।

आनन्दमन्दिर—यह ग्रन्थ सज्जन पुरुषोंके आनन्दका मदिर है। ज्ञानकी बात सुनते जावो, प्रसन्न होते जावो, अपने आत्माके निकट आते जावो। यही तो एक बड़ा बहुत आराम है, लोग आराम समझते हैं स्वच्छन्द होकर पड़े रहनेमे। प्रमादी रहनेमे। पर आराम शब्द तो यह बतलाता है कि आराम। हे राम. आ। तब आराम है। रमन्ते योगिनः अस्मिन् इति राम। जिस तत्त्वमे योगीजन रमण करे उसे राम कहते हैं। वह है सहज शुद्ध चैतन्यस्वरूप परमब्रह्म चित्प्रकाश, केवल ज्ञाताद्रष्टा रहना, ऐसी स्थिति आये तो उसका नाम है आराम। ज्ञानी पुरुष अपने आत्मस्वरूपमे रमण करके आत्माके निकट पहुँचकर अपनी सारी थकानको दूर कर देते है। तो ये ज्ञानकी बातें आनन्दके घर हैं। और बाहरी प्रसगोमें कोई चित्त लगाता है तो उसमे उसे क्षोभ होता है, वे बाहरी प्रसग शान्तिके कारण नही बन पाते हैं।

प्रकृत ग्रन्थकी विहतपक्षता—यह ज्ञानार्णव ग्रन्थ दो विशेषणोके द्वारा विशेष मर्म प्रकट कर रहा है—एक तो यह कि ग्रन्थ सभी पक्षोको मिटा देगा, एकान्त हठ मिटा देगा। ये जगतके प्राणो मिथ्यात्वके वशीभूत होकर अपनी-अपनी हठ बनाये हुये हैं। मिथ्यात्व दो प्रकारके है—एक अग्रहीत और दूसरा ग्रहीत। एक तो बिना सिखाये मिथ्यात्व बनता है और एक सिखानेसे मिथ्यात्व बनता है। जैसे शरीरको आपा मानना, विषयकपायोसे अपना हित समझना इन बातोको कोई सिखाता है क्या? यह अग्रहीत मिथ्यात्व है। इसमे पक्षमे बना है। क्या? जो मै नही हूँ उसे मैं मानना, जो अपना अहित है उसे हित मानना। और सिखाये हुए मिथ्यात्वमे तो वह बडे कलात्मक ढगसे पक्ष का लोभी बनता है। जीव तो नित्य ही है, अनित्य ही है, एक ही है, अनेक ही है, इन एकान्तोका पक्ष करता है। इस ग्रन्थके अध्ययनसे दोनो प्रकारके पक्ष दूर हो जायेंगे।

आनन्दधाम—ज्ञानार्णव शास्त्रका दूसरा विशेषण बताया है कि यह सज्जन पुरुषोंके

लिये शान्तिका मन्दिर है। ग्रन्थकी भूमिकाके बाद पहिले बारह भावनाओका वर्णन आयेगा। उन भावनाओमे जब हम भावित हो जावेंगे तब खुद समझेगे कि हा आनन्द का देने वाला यह ज्ञान है, इस ज्ञानको आनन्दमन्दिर कहा है। ज्ञानमें आनन्द विराजा है और यह ग्रन्थ भी ज्ञान है। ज्ञानरूप अर्णवमे अर्थात् समुद्रमे आनन्द बिराजा है। जैसे समुद्रमे अनेक रत्न भरे पड़े रहते है इस ही प्रकार इस ज्ञान समुद्रमे भी अनेक रत्न भरे पडे है. ऐसे इस ज्ञानार्णवग्रथको अथवा ऋषि संतोकी परम्परासे चले आये हुये विशेष विज्ञानको अब इस ग्रथमे कहेगे।

अपि तीर्येत बाहुभ्यामपारो मकरालयः।
न पुन. शक्यते वक्तु मद्विधैर्योगिरञ्जकम् ॥१२॥

योगिरञ्जक तत्त्वके प्रतिपादनकी कठिनता—योगी पुरुषोको कौनसी परिस्थिति रंजक होती है, उसका अर्थात् योगीजन किसमे रजायमान रहा करते हैं, उस ज्ञानतत्त्वका वर्णन इस ग्रंथमे करना अभीष्ट है लेकिन उस योगरजकवृत्तिको हम सरीखे अल्पबुद्धि जन कहने मे समर्थ नही हो सकते। चाहे अपार समुद्रको भुजावोसे तैर लिया जाये, यह सम्भव हो सकता है किन्तु योगी पुरुषोका रजक जो ज्ञानतत्त्व है, उसका वर्णन करनेमे हम जैसे लोग समर्थ नही हो सकते हैं। यह कह रहे हैं इस ग्रथके कर्ता शुभचन्द्राचार्य।

ज्ञातांशकी ही प्रतिपाद्यता—भगवान् अरहत देव केवलज्ञानीके ज्ञानमे जितना जो कुछ ज्ञात है अर्थात् सब ज्ञात है वह उनकी दिव्यध्वनिमे प्रकट नही होता। उसका अनन्तवा भाग तो दिव्यध्वनिमे प्रकट हुआ उतना गणधरदेव झेल नही पाते। जितना गणधरदेव झेल पाते उतना अन्य आचार्य प्रतिपादन नही कर पाते। फिर सोचते जाइये जिस आचार्यका जो ज्ञान था, जितना था वह सब प्रतिपादन नही किया जा सका और अपने से ही अनुमान कर लो—ज्ञान धर्मके बारेमे जितनी बाते आप समझ सकते हैं उतना सब कुछ आप वचनोसे बता सकते है क्या? कोई-कोई भाई तो यह स्पष्ट कह देते हैं कि देखो हमने समझ तो सब लिया है पर हम मुखसे कह नही सकते।

स्वसंविदित भावके पूर्ण प्रतिपादनकी अशक्यतापर एक लोकदृष्टान्त—जैसे अपार रत्नाकरमे रत्नोके ढेर पड़े हैं, ज्वारभाटा आने पर अर्थात् पानीके घट बढ जानेसे, पानी के उथल-पुथल हो जाने पर रत्नोंके ढेर उसमे प्रकट हो जायेंगे, उन रत्नोको आप देख सकते है पर गिन नही सकते है। रत्नोकी बात दूर जाने दो, पानीके हट जानेके बाद रेत रह जाता है। रेतके मोटे-मोटे कण अथवा छोटे-छोटे पत्थर जैसे देहरादूनकी बरसाती नदियोमें छोटे-छोटे पत्थर प्रकट होते है, आप उन सबको देख सकते है, पर गिन नही

सकते। ऐसे ही जो एक अद्भुत महिमा वाला शरणभूत ज्ञानतत्त्व है, परमात्मतत्त्वका मर्म है उसका आप अनुभव तो कर सकते है, पर उसका प्रतिपादन नही कर सकते।

अनुभाव्यता और अप्रतिपाद्यता—जैसे जो कुछ आप खाते है बढिया सरस भोजन मिश्री, वर्फी वगैरह या अन्य कोई स्वादिष्ट व्यञ्जन, तो उसके वारेमे आप पूरा अनुभव कर लेंग, कुछ कसर नही रह सकती। मीठा है, स्वादिष्ट हे, भला रुचने वाला है, यो सबका सब आप पूरा अनुभव कर लेंगे। वहा कसर न रहेगी, लेकिन जिसे अनुभव किया है उसे आप वैसा ही वचनोसे वता दें क्या यह हो सकता है? वचनोसे आप यही तो कहेंगे कि यह मीठा है, पर इसे समझ नही पायगा कोई जिसने कभी मीठा रस न चखा हो। ऐसे ही ज्ञान तत्त्व यह आत्माका शुद्ध स्वभाव जिस रूप अपनेको माना उसका प्रतिपादन कहा किया जा सकता है। भैया! जिस दिन मान जायेंगे यथार्थ कि मैं तो यह हूँ, उस दिनसे सब सकट दूर हो जायेंगे।

योगिरञ्जक तत्त्वकी महत्ता व ग्रन्थकर्ताकी लघुताका वर्णन—जैसे अभी ये अज्ञ मनुष्य माना करते है ना कि मैं अमुक चद हूँ, अमुक मक्त हूँ, अमुक प्रसाद हूँ, ऐसा ही अनुभव अपने बनाये रहते है ना, तब किसीने प्रतिकूल बात कह दी तो परमे आत्मीयता की बात अपने अनुभवमे होनेसे "मै" यह हूँ, इसने मुझे यो कह दिया यो विचार आया कि लो दुखी हो गये। अरे, ये सब व्यर्थकी बाते हैं, सब मायाजाल है, सदा रहनेकी नही है, न यह मेरा नाम है, न यह मेरी पोजीशन है, न ये सब वैभव समागम कुछ भी हैं। ऐसा यथार्थ अनुभव जब होगा कि मैं आत्मा तो मात्र एक जानन देखनहार अमूर्त तत्त्व हूँ, जिसका नाम भी नही है जिस दिन यह बात अनुभवमे आ जायेगी, उस दिन से यह बात ध्रुव सत्य है कि सब सकट मिट जायेंगे। घरमे रहते हुये भी सकट न आयेंगे। घरमे ज्यादा दिन तो फिर वह रहेगा ही क्या, उस स्थितिमे वैसे भी सकट न आयेगा और बहुत ही शीघ्र व्यक्ति निसकट हो जायेगा। प्रभुता प्रकट हो जायेगी, उस तत्त्वका इस ग्रन्थमे वर्णन है और जिन विधियोसे वह तत्त्व अनुभवमे आ सकता है उन सब विधियोका ढगसे वर्णन है। इस पर भी ग्रन्थकर्ता आचार्य कह रहे है कि हम इसको कहनेमे क्या समर्थ हैं?

महामतिभिर्निःशेषसिद्धान्तपथपारगैः।
क्रियते यत्र दिग्मोहस्तत्र कोऽन्यः प्रसर्पति ॥१३॥

सिद्धान्तपथमें महामतियोंके दिग्मोहकी संभावना—अरे जहाँ बडी बुद्धि वाले लोग, इस सिद्धान्त मार्गके पार करने वाले भी लोग दिशा भूल जाते है, तब अन्यजन उसे किस

प्रकार पार कर सकते है ? यह ज्ञानार्णव, यह ज्ञानसमुद्र अथाह है। इसमे बड़े-बड़े बुद्धिमान् पुरुष भी भूल जाते है चकरा जाते है, अन्य पुरुषोका तो कहना ही क्या है ? जिन्होने बडे-बड़े शास्त्रोका अध्ययन किया, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, अष्टसहस्री इत्यादि, वे समझ सकते होगे कि आचार्योंकी कितनी प्रखर बुद्धि थी, कैसा सुलझा हुआ सूक्ष्मतत्त्व किस प्रकारके वचनोसे उन्होने प्रस्तुत किया है, वे भी यह कहते है कि हम अल्प बुद्धि वाले है। हम इसमे कहा पार पा सकते है ?

श्रद्धालु व मूढोंकी पद्धतिका अन्तर—भैया ! कलिकी महिमा देखो—यह आजके समयका दुर्भाग्य कहिये या लोगोका दुर्भाग्य कहिये कि कुछ लोग ऐसे भी साधु सत रूप मे आकर खडे हो जाते है कि जो यह कहनेका भी साहस और यत्न करते हैं कि यह आचार्य भूल गये, यह गलत है, हम जो लिखते है वह सही है और इन अश्रद्धालुवोको प्रोत्साहन देने वाले भी हम है। भक्ता तत्त्वार्थसूत्र अथवा षटषण्डागम जैसे बड़े ग्रन्थो की टीका करने वाले अनेक आचार्य हुए हैं और उन आचार्योंने सूत्रोमे एक-एक शब्दका सार्थक्य बताया है, और कदाचित् कोई शब्द फालतू भी हो जाय, फालतू नही होता पर बोलनेकी एक शैली हुआ करती है। कुछ विश्राम लेनेके लिये कोई शब्द आ जाय तो उस शब्दमे आचार्यने बडी महिमा प्रकटकी है। उन ऋषि सतो द्वारा जो टीकाये की गई है उनमे दोषप्रतिपादन करनेकी बात कही पर नही आयी है। ये कहलाते है श्रद्धालुजन।

सिद्धान्तकी गहनता—आचार्यदेव यहाँ यह कह रहे है कि बडे-बडे बुद्धिमान् पुरुष भी गहन शास्त्रोकी चर्चामे चूक जाते है तो हम लोगोकी बात ही क्या है ? समयसार ग्रन्थ अध्यात्मग्रन्थोमे एक प्रधान ग्रन्थ है। कैसे-कैसे रत्न उसमे छिपे पडे हैं ? विद्वान् पुरुषोकी दृष्टिमे उन्हे नही पहुँचाया है प्रमादवश, पर जिन समझदार लोगोके हाथमे यह ग्रन्थ पहुँचता है वे उसकी महिमाको जानते हैं। श्रीमद् रामचन्द्र जो कि गाधी जीके भी गुरु थे, गाधी जी ने विलायत जाते समय जिनसे कुछ व्रतोका सकल्प किया था, वे प्रसिद्ध जौहरी थे पि० जैन। उनके हाथमे जिस समय किसीने समयसार ग्रन्थ दिया और उसकी पहिली दो पक्तिया पढी तो तुरन्त ही इतने हर्षित हुये कि यह न देखा कि हम पुरस्कार मे इसे क्या दिये दे रहे हैं ? जो भी हाथकी मुट्ठीमे आया वह उसे इनाममे दे दिया। उसमे बहुतसे हीरा रत्न थे।

जड़ वैभवकी निःसारता—भैया ! तीनो लोकोका वैभव भी ये सब जड पदार्थ है, ये क्या वैभव है। यथार्थ वैभव तो सम्यग्ज्ञान है और वही वास्तविक अमीर है जिसने निजको निज परको पर अनुभव किया, रहना तो किसीके पास कुछ भी नही है, छूटेगा तो

निश्चयसे। अब बुद्धिमानी यह है कि उसे अपने जीवनमें ही समझ बूझकर ज्ञानोपयोगका बल बढाकर उसे छोड दे। छूटना सबका ही है। एक बार अकबर बादशाहने बीरबल से पूछा—बीरबल यह तो बतलावो कि हमारी हथेलीमें रोम क्यो नही हैं ? किसीकी भी हथेलीमे रोम नही होते है ना ? तो बीरबल बोला—महाराज ! आपने अपने हाथोसे इतना दान दिया कि दान देते देतें आपकी हथेलीके रोम झड गये। अच्छा, बीरबल ! तुम्हारी हथेलीमे रोम क्यो नही है ? बीरबल बोला—महाराज आपसे मैंने इतना दान लिया कि दान लेते लेते हाथोकी हथेलीके रोम झड गये। और ये सभी जो सभामें बैठे है इनके हाथोकी हथेलीमे रोम क्यो नही है ? महाराज ! आपने दान दिया, मैंने लिया और बाकी लोग यो ही हाथ मलते रह गये, सो हाथ मलते मलते हथेलीके सारे रोम झड गये।

यथार्थ प्रकाशमे भलाई—भैया ! छूटना तो सबका है, बुद्धिमानी यह है कि विवेक पूर्वक इस जीवनमे ही परको छोड दिया जाय। यदि नही छोड सकते तो परको छूटा हुआ ही समझ ले, उससे विरक्त रहें। अन्यथा कोई होनहार अच्छा न रहेगा। यह तो एक निमित्तनैमित्तिक अथवा वैधानिक बात है कि उस धन वैभवके पीछे कुछ ऐसा वातावरण बन जायेगा कि उसके पीछे दुखी होना पडेगा। जैन शासनकी सच्ची उपासना यही है कि सम्यग्ज्ञान उत्पन्न कर ले। अन्तरङ्गमे समझ तो जावें कि यह मैं हू और ये सब परतत्त्व है। ऐसे प्रकट भिन्न आत्मस्वरूपको इस ग्रथमे दिखाया जायेगा।

ग्रन्थकर्ताका लघुता प्रदर्शन—इस ग्रन्थको बनाते हुए आचार्यदेव कह रहे है कि इसमें बडे-बडे बुद्धिमान् कही-कही चूक सकते हैं तो हम सरीखे छोटे लोग इस ग्रन्थको यथावत् न विदित कर सके यह तो हो ही सकता है। देखिये कोई काम परोपकारका करे और अपने मुखसे कह दें दूसरोपर अहसान लाद दें कि देखो मैंने ऐसा किया तो लोगोकी दृष्टि मे वह शोभा नही देता है। और कहनेमे कितना आनन्द आता कि भाई मैंने कुछ नही किया। आप लोगोका उत्साह था, आप लोगोकी भावना थी, आप सब लोगोका प्रताप था सो यह काम बन गया। ऐसा यदि वह कहता है तो इसमे उसकी इज्जत बढ जाती है। अगर कोई ग्रन्थ बनाने वाला भूमिकामे ही यह बात लिख दे कि यह ग्रन्थ मैं ऐसा लिखूंगा जैसा कि तुम्हारे बाप दादोने भी न लिखा होगा तो कौन उसकी इज्जत करेगा ? उसकी न कोई सुनेगा और न किसीका उस ग्रन्थके प्रति आकर्षण होगा। जब इसे ही ज्ञान नही है, ज्ञानरसमे खुद नही डूब सकता है तो यह कहेगा ही क्या ? आचार्यदेव भूमिकामे अपनी लघुता प्रदर्शित कर रहे हैं।

समन्तभद्रादिकवीन्द्रभास्वता स्फुरन्ति यत्रामलसूक्तरश्मयः ।
व्रजन्ति खद्योतवदेव हास्यतां न तत्र किं ज्ञानलवोद्धता जनाः ॥१४॥

अगाध ज्ञानमें अल्पज्ञोंकी दुर्गमता—जहां समतभद्र आदिक बड़े-बडे कवीन्द्र रूपी सूर्यकी निर्मल उत्तम वचन किरणे फैलती हैं वहा थोडा ज्ञान पाये हुये जन्तुवोके समान मनुष्य क्या अपनी हँसी न करायेगा ? भला जव समतभद्राचार्यके ज्ञानका कुछ अन्दाज बनता है तब यह बहुत जल्दी समझमें आता है कि जरूर केवलज्ञान अनन्त, असीम व अथाह है। जब इस ज्ञानकी भी बडी महिमा है तो केवलज्ञानकी महिमाका कौन वर्णन कर सकता है और देखो जो सातिशय महिमा वाला है केवलज्ञान, वह केवलज्ञान हम आप सबमे शक्ति और स्वभावमे बराबर पडा हुआ है। केवल एक परपदार्थोको पर समझकर तत्सम्बन्धी रागद्वेष मोहको दूर करने भरका काम है। यह केवलज्ञान तो प्रकट होनेके लिये अभी भी बैठा है, बडा प्रकाश होता है। सूर्यके नीचे बादलकी टुकड़ी आ जाय तो बादल चलने फिरने वाले है, सूर्य भी चलता है, तो वह प्रकाश करनेके लिये ही उद्यत है। ऐसे ही यह रागद्वेष मोहादिका आवरण इस ज्ञानपुञ्ज पर पड़ा हुआ है, इसके कारण केवलज्ञान प्रकट नही हो पाता है। एक ये आवरण ही हट जाये तो यह केवलज्ञान तो सदा प्रकट होनेके लिये उद्यत है। जो इस की महिमा है उसे समझें नही तो अपनी सासारिक पर्यायो पर दृष्टि देकर अपनेको तुच्छ मानते हुये हम बड़ी खोटी स्थितिमे पड़े हुए हैं, बधनमे बधे है।

समन्तभद्र स्वामीकी स्तवन कुशलता—समतभद्र स्वामीने एक स्तोत्र बनाया जिसका नाम है स्वयम्भूस्तोत्र, जबकि अपनी भस्मव्याधिको दूर करनेके लिये खूब अन्न खाकर भस्मव्याधि मेटी थी। बादमे राजाने कहा कि तुमको हमारी मूर्तिको नमस्कार करना होगा। कहा अच्छा कल नमस्कार करेंगे। रात्रिको स्वयभू स्तोत्रमें २४ भगवानकी स्तुति करने लगे। ८वे भगवानकी स्तुति करते समय चक्रेश्वरी देवी प्रकट हुई, बोली महाराज, आप चिन्ता न करे। यह मूर्ति तुम्हारे नमस्कारको झेल नही सकती। जब उस मूर्तिको नमस्कार करने लगे तो उसमे चद्रप्रभुकी मूर्ति प्रकट हो गई। आप कहेंगे कि ७ तीर्थंकरो की स्तुतिमे गुणानुवाद तो किया था, पर नमस्कार न किया था। ८वे तीर्थंकरकी स्तुति मे नमस्कार करता हूँ इतना शब्द कह दिया जिससे मूर्ति प्रकट हुई।

समन्तभद्र स्वामीकी परीक्षा प्रधानता—समन्तभद्राचार्यने आप्तमीमासा रची, पश्चात् उन्होने युक्त्यनुशासन ग्रथ बनाया, जिसमे प्रथम ही प्रथम कहा है कि हे भगवान अब मैं आपका स्तवन करता हूँ। आप्तमीमासामे भी किस तरह स्तवन किया है कि सारा लोक

दर्शन आ गया, स्याद्वादने उसका समर्थन किया नयचक्रके विभागसे कहकर व फिर स्याद्वाद सिद्धान्त रखा, इतनी बडी स्तुति करनेके बाद कहते है कि अब मैं स्तुति करता हूँ। ऐसा क्यो ? सुनो नाथ, अब तक तो मैने आप्तमीमासामे आपकी परीक्षा की, कि मेरे स्तवनके लायक है कौन ? अब मैने सिद्ध कर लिया, मेरे स्तवनके लायक ये वीतराग देव है, उनको मै अब नमस्कार करता हूँ। एक स्तवन तो परीक्षा-परीक्षामे ही बना डाला।

आप्तकी मीमांसा—आप्तमीमासाके स्तवनका थोडासा प्रारभका साराश सुनाये—हे नाथ ! आपके पास देव आते है इसलिये आप बडे नही, आप आकाशमे चलते हो इस लिये आप बडे नही, आप पर चमर ढुलते है इसलिये आप बडे नही। भगवानकी ओरसे कोई वकील कहने लगे कि ऐसा क्यो है ? तो कहते है कि ये बातें तो मायावी पुरुषोमे भी पायी जा सकती है। अच्छा तो भगवानका शरीर पवित्र है, परमौदारिक है तो भगवान बडे हैं कि नही ? ऐसा मानो भगवानकी ओरसे कोई कह रहा है। तो कहते हैं कि ऐसा दिव्य शरीर तो इन्द्रोके, देवोके भी पाया जा सकता है, इससे भी आप बडे नही हैं। तो फिर किस बातसे बडे है ? दोष, अज्ञान, आवरण हट जानेसे निर्दोषता प्रकट हुई है इसलिये आप बडे है। महाराज जो निर्दोष होता है उसके वचन भी अच्छे निकलते हैं, मैने आपके वचनोसे पहिचाना कि आप निर्दोष है। ऐसे निर्दोष वचनोका विश्लेषण समन्तभद्रने किया, उसका मर्म तो वे ही समझ सकते है जो ज्ञानीजन है।

महापुरुषोकी निरहङ्कारताका दर्शन—यहाँ शुभचन्द्र आचार्य कह रहे है कि समतभद्र आदिक सूर्यकी जहा वचनकिरणे फैल रही हो वहा कुछ अल्पज्ञ पटजुगनू क्या प्रकाश करेगें ? तो चुप होकर क्यो नही बैठ जाते ? उद्यम ही क्यों करते ? उद्यम यो किया है कि साधारणजन भी ज्ञान प्राप्त करे, लोगोको जतानेके लिये यह उद्यम आचार्यदेव ग्रन्थ बनानेसे पहले अपनी लघुता प्रकट कर रहे हैं। हम आपको भी यह शिक्षा लेना चाहिये कि किसी बातमे अहकार न आने पावे। क्या ज्ञान पाया है ? क्या वैभव पाया है ? बडे-बड़े ज्ञानी, बडे-बडे वैभववान् हुए है। अपना काम निकाल लें ज्ञान बढाकर इस भवको और जैन शासनके समागमको सफल करे।

अपाकुर्वन्ति यद्वाच कायवाक्चित्तसभवम्।
कलङ्कमङ्गिना सोऽय देवनन्दी नमस्यते ॥१५॥

आचार्य देवनन्दीको नमस्कार—मन, वचन, कायमे उत्पन्न होने वाले कलङ्कोको जिन्होने दूर कर दिया है ऐसे देवनन्दी आचार्यको यहाँ नमस्कार कर रहे है। प्रभु स्मरण के बाद आचार्य समतभद्र स्वामीको स्मरण किया था और अब देवनन्दी आचार्यका स्मरण

कर रहे है। देवनन्दी आचार्यका द्वितीय नाम पूज्यपाद स्वामी है। ऐसी प्रसिद्धि है कि जो १० भक्तिया बनी है उनमे जो प्राकृतकी भक्तियां है वे तो कुन्दकुन्दाचार्य देवकृत हैं और जो सस्कृतकी भक्तिया है वे पूज्यपाद स्वामी कृत है। पूज्यपाद स्वामीके बनाए हुये अन्य भी ग्रन्थ है, जिनमे सर्वथा सिद्धि समाधिशतक आदि सिद्धान्त ग्रन्थ व वैद्यक आदि विषयोके ग्रन्थ प्रसिद्ध है। उन देवनदी आचार्यको यहा शुभचन्द्रदेव नमस्कार कर रहे है।

जयन्ति जिनसेनस्य वाचस्त्रैविद्यवन्दिताः।
योगिभिर्यत्समासाद्य स्खलित नात्मनिश्चये ॥१६॥

भगवज्जिनसेनाचार्यको नमस्कार—जिनसेनाचार्यके वचन जयवंत रहे जो योगीश्वरों के द्वारा वदनीय हैं। जिनके वचनोका आश्रय करके योगीजन आत्माके निश्चयमे स्खलित नही होते है ये जिनसेनाचार्य भी अपने समयमे बहुत प्रसिद्ध हुये है। भगवान जिनसेनाचार्यके समयमे एक बार ऐसी घटना हुई कि उनके साहित्यिक अनेक रसोसे भरे हुये ग्रथोको देखकर विद्वानोने उनपर शका की। उस समय आचार्यदेवने बड़ी भरी राज सभामे शृङ्गार प्रमुख ढंगसे एक कथानक बोला—तो उसमे कामरसका भी बहुत वर्णन किया, जैसे कि साहित्यमे करना पडता है, जिस वर्णनको सुनकर बहुतसे लोग अपने भावोंमे विकृत हो गये, तो लोगोंकी उस समय जो ये शकाये थी कि इन्होने ऐसे ग्रन्थो मे जो बहुत-बहुत वर्णन किया है ऐसे कामरसका वर्णन जिनसेनाचार्य जैसे वैरागी पुरुष किस प्रकार कर सकते है? इसका समाधान उस सभामे हुआ था, जिस सभामे इतना वर्णन करने पर भी ये अविकृत और शान्तमुद्रामे रहे। जिनसेनाचार्यने उस समय जिनशासन की बडी रक्षा की जबकि लोग दूसरोके आतंकसे विचलित हो रहे थे। उन जिनसेनाचार्य को शुभचन्द्राचार्य नमस्कार कर रहे है।

श्रीमद्भट्टाकलङ्कस्य पातु पुण्या सरस्वती।
अनेकान्तमरुन्मार्गे चन्द्रलेखायित यया ॥१७॥

श्रीमद्भट्टाकलङ्कदेवका अभिवन्दन—श्रीमद्भट्ट अकलकदेवकी पवित्र सरस्वती हम सब की रक्षा करे जो सरस्वती अनेकात स्याद्वादरूप है, चद्रमाकी किरणकी तरह प्रकाश करती है। जैसे चद्रमा आकाशको प्रकाशित करता है ऐसे ही भट्ट अकलककी वाणी इस लोकके विद्वानोके जगतमे प्रकाशक है। अकलकदेव कितने स्याद्वाद प्रिय थे, इनकी ग्रन्थ रचनामे जगह-जगह इसका दिग्दर्शन होता है। एक इनका बनाया हुआ 'स्वरूप सम्बोधन' स्तोत्र है जिसमे मगलाचरणमे ही यह कह रहे है—ये भगवान, जिनको नमस्कार कर रहे हैं वे भगवान मुक्त भी है और अमुक्त भी है। सुननेमे तो कड़वासा लगता होगा। मुक्त

जोवोको अमुक्त बता दिया, पर स्याद्वादका इसमे दर्शन है। मुक्त मायने छूटा हुआ। तो सिद्ध भगवान कर्मोसे छूटे हुये हैं, पर ज्ञानादिक गुणोसे तो अमुक्त है, छूटे नही हैं। सो कथञ्चित् परमात्मा मुक्त है और कथञ्चित् अमुक्त है। ऐसे दो विशेषण देकर नमस्कार किया है।

अकलङ्कदेवकी स्याद्वादप्रियता—तत्त्वार्थ सूत्रकी व्याख्या करते हुए भट्ट अकलकदेवने स्याद्वादका भी दिग्दर्शन कराया है। स्याद्वादमे यह आता है ना कि स्याद अस्ति, स्यात् नास्ति। कथञ्चित् नही है। जैसे यह घडा है। यह है तो यह घड के रूपसे है और कपडा आदिक अन्यरूपोसे नही है। इसीको कहते है स्याद् अस्ति स्यात् नास्ति। यह घडा अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नही है। अब इसकी और व्याख्यामे बढें तो जब हम आखोसे देखकर चल रहे हैं कि यह घडा है तो रूपकी दृष्टिसे यह घडा है और उस ही मे रहने वाले रस आदिककी दृष्टिसे घडा नही है। ये चक्षुरिन्द्रिय रस आदिकको विषय नही ही करती, अथवा यह घडा जैसा इसका आकार है उस आकारसे यह घडा है और अन्य घड़ोके आकारसे जितने भी आकार हैं उन आकारोसे यह नही है, अथवा हमारे ज्ञानमें आया है यह घडा है तो हमारे ज्ञानमे जो घट बसा हुआ है, जो घट ज्ञेयाकार मेरे आत्मा मे परिणमन है उसकी अपेक्षासे घडा है और वही जो रखा हुआ सामने है उसकी अपेक्षासे घडा नही है। इसमे बहुत स्याद्वादकी छटा दिखायी है। तो जो स्याद्वाद विद्याके अधिकारी थे ऐसे अकलकदेवका इस लोकमे स्मरण किया जा रहा है।

भवप्रभवदुर्वारक्लेशसन्तापपीडितम्।
योजयाम्यहमात्मान पथि योगीन्द्रसेविते ॥१८॥

ग्रन्थरचनाका लक्ष्य—शुभचद्राचार्य इस छदमे कहते है कि इस ग्रन्थकी रचनासे ससार मे जन्म लेनेके दुर्निवार क्लेशके सतापसे पीडित मैं अपने आत्माको योगीश्वरोसे सेवित ज्ञानध्यानरूपी मार्गसे जोडता हू। यहा ग्रन्थ रचनाका प्रयोजन दिखाया है, यह ग्रन्थ-रचना क्यो की जा रही है? ग्रन्थरचनाका उद्देश्य यही है कि मैं अपने आत्माको ऐसे ज्ञानतत्त्वमे लगाऊं जिस ज्ञानतत्त्वमे जुडनेसे मेरे ससारके समस्त सकट कट जायेगे। जगतमे सब कुछ सुलभ है। जो भी वैभव मिला है, कल्पना करलो कि तीनो लोकोका भी जड पदार्थोंका समूह इकट्ठा आपके घरमे आ जाये तो भी उससे आपके क्लेश न मिटेंगे। क्लेश मिटानेका वह साधन ही नही है। क्लेश मिटेंगे तो एक सम्यग्ज्ञानसे। अपने आपके ज्ञानस्वरूपकी खबर होनेसे क्लेश दूर होगे।

ग्रन्थकर्ताकी भावना—मैं ऐसे ज्ञानतत्त्वका प्रतिपादन करूंगा जिस प्रसंगमे अपने

ज्ञानतत्त्वका स्पर्श कर सकूँ और अपने आपको ज्ञानमे जोड सकूँ। फिर दूसरेका उपयोग होता है तो वह हो, पर आचार्यदेव इतने मात्र भावसे कि मैं दूसरे लोगोका उपकार करूँ, ग्रन्थ रचे तो उसका उद्देश्य तो लोग झट कह देंगे, बडा अच्छा है, पर हितके अनुकूल नही है। जिसकी ग्रन्थरचनामे अथवा उपदेशमे भी अपने आपकी सुध लेनेका लक्ष्य भी नही है, केवल एक यही भाव बनाया है कि मैं लोगोको समझाऊँ, इनका उद्धार कर दूँ, तो परकर्तव्यका भाव हो सकता है और इससे मिथ्या आशय बन सकता है। मुख्य प्रयोजन यह था कि मेरा उपयोग ज्ञानके प्रसगमें जुडा रहे, नाना जगहोमे मेरा उपयोग न भ्रमे। शुभचद्राचार्य भी इस ग्रन्थ रचनाकी भूमिकामे यह बात बता रहे है कि मैं अपने आत्माको योगीन्द्रसेवित ज्ञानपथमे जोड़ूँ, इस आशयसे इस ग्रन्थको रच रहा हूँ।

न कवित्वाभिमानेन न कीर्तिप्रसरेच्छया।
कृतिः किन्तु मदीयेय स्वबोधायैव केवलम् ।।१६।।

अभिमानादिका अभाव—मैं इस कृतिको कही कर्तृत्वके अभिमानसे नही कर रहा हूँ और न मैं लोकेषणासे अर्थात् लोकमे मेरी कीर्ति फैले इस इच्छासे भी मैं नही कर रहा हूँ किन्तु अपने आपका मुझमे बोध बना रहे, इस प्रयोजनसे ही यह कृति हो रही है। जिन सतजनोके सस्थानविचय नामक धर्म ध्यान रहा करता है, जिस ध्यानमे तीन लोक की रचना स्पष्ट उपयोगमे बनी रहती है और तीन कालमे जो कुछ रचना है वह भी प्रयोजनात्मक उपयोगमे बनी रहती है, जिसके ज्ञानमे इस समस्त दुनियाका भी स्मरण है। कितना बडा लोक है और कालका भी स्मरण है, यो लोक और अलोकका जहा ध्यान रहता है, उनकी लोकमे मेरी कीर्ति फैले यह इच्छा कभी नही हो सकती।

लोकरचना विज्ञानका प्रभाव—जिनके ज्ञानमे यह बात पडी हुई है कि यह लोक ३४३ घनराजू प्रमाण है, और उस लोकमे यह जीव प्रत्येक प्रदेश पर जन्म लेता आया है। अनन्तान्त जीव इस लोकमे भरे पड़े है। उन अनन्तोमेसे ये १०-२० हजारका यह मनुष्यलोक किस गिनतीमे है? यह तो स्वयभूरमण समुद्र बराबर जलमे बिन्दुकी तरह भी गिनती नही रखता है। इसमे कुछ बात चल उठे, कीर्ति फैले, यह लोक मेरा नाम ले तो इससे क्या होता है? अभी अनन्तानन्त जीवोने तो नही जाना, अथवा ये लोग कुछ भी कहे उनसे भिन्न मेरा आत्मा है, इनसे मेरा क्या सुधार हो जायेगा? वे सब भी अपनी परिणतिके करने वाले है, यह मै भी अपनी परिणतिका करने वाला हूँ। जिसे कालकी खबर है अनन्तकाल व्यतीत हो गया और उससे भी अनन्तगुण अनन्तकाल व्यतीत होगा। ऐसे इस असीम कालकी जिसे स्मृति है उसके कीर्ति प्रसारकी इच्छा नही जग

सकती। क्या कीर्ति ? कुछ वर्णन स्वार्थीजनोने गा दिया, नाम ले लिया तो उससे इस आत्माकी कौनसी सिद्धि हो जाती है ?

ज्ञानीके कीर्तिप्रसारका अभाव—आचार्यदेव इस ग्रन्थरचनाको कर रहे है, उसमे उन के यह भाव नही है कि लोग मुझे समझे, लोग मेरा नाम लेते रहे, हा हुये है शुभचन्द्राचार्य। नामसे क्या है ? मान लो कोई दूसरा अपना नाम मुनि होकर शुभचन्द्राचार्य रख ले तो कोई अगर नाम भी लेगा तो इनका भी नाम आ गया, क्या इसकी भी कीर्ति बन गयी क्या ? और उन शुभचन्द्राचार्यकी कोई शकल सूरत भी जानने वाला नही है, वह तो अब कहीके कही होगे। तो कीर्तिमे और कीर्तिप्रसारमे कुछ दम नही है।

ग्रन्थरचनाका उद्देश्य—जिनकी इस पर्यायमे ममता है, जिनके वैभवमे मूर्छा है वे पुरुष शान्तिके कैसे पात्र हो सकते है ? मूर्छाको ढीला करना ही पड़ेगा यदि शान्ति चाहिये हो। मूर्छाको तो समझिये कि यह इस जीवकी कुबुद्धिका कारण है और विपत्ति का कारण है। किस बातपर अभिमान ? जैसे धन एक विनश्वर वस्तु है ऐसे ही दुनिया को दिखाये जा सकने वाले ये ज्ञान, ये कलायें भी विनश्वर चीजे है। न धनका अभिमान योग्य है और न ज्ञानका अभिमान योग्य है। मैं पडिताईके अभिमानसे इस ग्रन्थको नही रच रहा हूँ, केवल अपने बोधके लिये अपनेमे अपना प्रकाश बना रहे, इसके लिये ही यह मेरी कृति है।

धर्मोपदेश स्वाध्यायमे भी स्वका अध्ययन—धर्मोपदेश नामका एक भेद है स्वाध्याय का। स्वाध्यायके ५ भेदोमे अतिम भेद धर्मोपदेश है, धर्मका उपदेश देना और स्वाध्याय कहते उसे हैं जिसमे स्वका अध्ययन बन जाय। अपने आत्मस्वरूपका मनन बने तो धर्मोपदेशमे अपने आत्माका अध्ययन कैसे होता है ? फिर यह स्वाध्यायका भेद कहा रहा ? यह शका की जा सकती है तो उसमे यह समझना चाहिये कि उपदेश देना दूसरोका आधार बनाकर आश्रय बनाकर हुआ करता है। कोई पुरुष अकेले ही कही बैठकर ग्रन्थ खोलकर इसे बोलता हो, ऐसा कही देखा है क्या ? सुनने वाले हो, उनको उपदेशके माध्यमपर, आधार पर वह धर्मोपदेश चलता है। ठीक है फिर भी धर्मोपदेशमे ज्ञानी पुरुषो की नीति और झुकाव यह रहता है कि जो कुछ बोल रहा हूँ यह अपने आपको सुना रहा हूँ। जैसी भावना करनेके लिये मैं कह रहा हूँ। ज्ञानी वक्ता अपने आपमे घटित करनेके ध्येयसे कह रहा है, खुद खुदको उपदेश दे रहा है। धर्मोपदेशमे आन्तरिक दृष्टि ऐसी बनती है। बाह्यदृष्टिमे तो यह बात ठीक है कि दूसरोके उपयोगके लिये श्रोताजनोकी साधनाके लिये यह बोला जा रहा है, पर इस बातकी मुख्यता नही है, इसमे अपने बोधकी ही मुख्यता है।

स्वयंमें वक्तृत्व व श्रोतृत्व—भैया ! यह बात भी खूब सभव है कि धर्मोपदेशके निमित्त तो पर होते है, कर रहे हैं। धर्मोपदेश किस ही प्रकार हो रहा है, फिर भी उसमे यह झुकाव बनाया जा सकता है कि मै बोल रहा हूँ तो सुन भी तो मै रहा हूँ। जो कुछ बोलता हूँ वह सब मैं सुन लेता हूँ। यदि मैं बात खुद नही सुन सकता तो बोल भी नही सकता। क्या बोला, क्या बोल रहे है ये सब बातें हम अपने कानो से सुन लेते हैं। तो जैसे हम बोलते है आप लोग सुनते हैं ऐसे ही मैं भी तो सुन रहा हूँ। तो जैसे दूसरा बोले और मैं सुनूं तो उसका अर्थ मैं अपने पर घटा सकता हूँ ऐसे ही मै ही बोलूँ और मै ही सुनूं तो क्या वहां उस बतानेका मर्म, अर्थ अपने आपपर नही घटित कर सकूंगा ? घटित किया जा सकता है। इसी तरह कोई चीज लिखी तो लिखते हुये उसको साथ ही साथ मे अपने भीतर बोलता भी तो जाता हूँ, हर एक कोई समझ लेगा। कुछ लिखा जा रहा हो तो उतने शब्द मुखसे न बोले तो भी भीतरमे वे शब्द निकल जाते है। तो लिखते हुएमे भी जो मै लिख रहा हूँ। वे शब्द मेरे बोधके लिये है, उसको अपने आपपर घटित करते जाइये। तो आचार्यदेव यहा यह बतला रहे है कि मुझे इस कृतिके करनेमे अभिमान नही है, मेरी कीर्ति फैले ऐसी भी इच्छा नही है, किन्तु मै अपने आपको बोध करनेके लिये, यो सम्बोधनेके लिये ही यह ज्ञानार्णव नामकी कृति कर रहा हूँ।

ग्रन्थकर्ताके विचारका निर्देशन—इस प्रसगमे आचार्यदेवने अपनी लघुताको प्रदर्शित किया है और ग्रन्थरचनाका मेरा सही उद्देश्य क्या है ? उस पर प्रकाश डाला है। यो प्रयोजन दिखानेके बाद अब एक साधारणरूपसे यह बात बतावेगे कि सत्पुरुष जो शास्त्र रचना करते है तो उस प्रसगमे उनका विचार किस किस प्रकारसे होता है ? भूमिका वाली इतनी बाते सब ज्ञानमे आने पर एक स्पष्टता हो जाती है उपयोगमे और फिर प्रतिपाद्य विषयको उस ही रूपमें ढालनेकी इनकी प्रवृत्ति होती है, इस कारण एकदम सीधा उपदेश न देकर पहिले उस उपदेशको धारण करनेके लिये जिस-जिस विचार और वृत्तिकी आवश्यकता है, उन-उन विचारो और प्रवृत्तियोको बतानेके लिये अभी भूमिका चल रही है। अब इसके बाद ग्रन्थरचना किस-किस विचारसे साधु संत पुरुष किया करते हैं इस पर कुछ प्रकाश आयेगा।

ग्रन्थरचना प्रेरक विचारोंके प्रदर्शनका उद्यम—ग्रन्थकर्ता श्री शुभचन्द्राचार्य शास्त्र की भूमिकामे यह बतला रहे है कि सत्पुरुष शास्त्र रचना करते हैं तो उनके चित्तमे बात क्या रहती है, कौनसी प्रेरणा उनके चित्तमें उत्पन्न होती है जिससे प्रेरित होकर वे शास्त्र रचना किया करते है। इन ही विचारोको इन ५ श्लोकोमे आचार्यदेव रख रहे है।

अयं जागर्ति मोक्षाय वेत्ति विद्या भ्रमं त्यजेत् ।
आदत्ते समसाम्राज्यं स्वतत्त्वाभिमुखीकृत. ॥२०॥
न हि केनाप्युपायेन जन्मजातङ्कसम्भवा ।
विषयेषु महातृष्णा पश्य पुंसा प्रशाम्यति ॥२१॥
तस्या प्रशान्तये पूज्यै. प्रतीकार प्रदर्शित. ।
जगज्जन्तूपकाराय तस्मिन्नस्यावधीरणा ॥२२॥
अनुद्विग्नैस्तथाप्यस्य स्वरूप बन्धमोक्षयो. ।
कीर्त्यते येन निर्वेदपदवीमधिरोहति ॥२३॥
निरूप्य सच्च कोऽप्युच्चैरुपदेशोऽस्य दीयते ।
येनादत्ते परा शुद्धि तथा त्यजति दुर्मतिम् ॥२४॥

स्वतत्त्वकी अभिमुखतामे जागरण—जब यह आत्मा स्वतत्त्वके अभिमुख होता है तब यह समताके साम्राज्य पर अधिकार पा लेता है और उस समय यह जीव मोक्षके लिये जागृत होता है। जब तक मुक्त अवस्थामे होने वाले आनन्दका किसी भी अशमे अनुभव नही होता है, उसकी बानगी नही मालूम पडती तब तक उस मुक्तिके लिये कोई उद्यम कैसे कर सकता है? किसी व्यापारीको कोई सौदा खरीदना है तो उसकी बानगी देख कर यह निर्णय कर लेता है कि हाँ इस सौदेको ग्रहण करूँगा। इसी प्रकार मुक्त अवस्था मे क्या आनन्द होता है? उसका अनुभव उसकी जातिका पता पडे तो मुक्ति पानेका कुछ उद्यम करे। भले ही मुक्तिमे अनन्त आनन्द है, लेकिन उस जातिका आनन्द सम्यग्दृष्टिको हो जाता है तो वह मुक्तिके लिये अपनी एक धुन बनाया करता है।

ज्ञानीके प्रभुताके निर्णयकी अनुभूति—जैसे कोई गरीब आदमी किसी प्रसिद्ध मिठाई की दुकानसे आधो छटाक ही मिठाई लेकर खाये और कोई धनी सेठ उसी मिठाईको उसी दुकानसे आधा सेर लेकर खाये तो स्वाद तो यद्यपि दोनोको एकसा मिला, पर एकने छककर खाया और एक छककर न खा सका। यहा हम आप जो सम्यग्दृष्टि जीव है वे मुक्त जीवोंकी तरह छककर आनन्द नही पा सकते, कारण कि अभी रागद्वेष लगे हुए हैं, फिर भी मुक्त अवस्थामे जिस जातिका आनन्द होता है उस जातिके आनन्दका अनुभव लिया जा सकता है। जो पुरुष इस सारभूत पदार्थके अभिमुख होता है वह मोक्षके लिये जागृत रहता है और वह उस आनन्दको प्राप्त करता है, ज्ञानस्वरूपका अनुभव कर लेता है। सारे भ्रमोसे मुक्ति हो जाती है और समतारूपी वैभवको प्राप्त कर लेता है।

स्वभाव और वर्तमान परिस्थिति—यह विचार कर रहा है वह सत्पुरुष कि

आत्मस्वरूप तो आनन्दघन है, किन्तु हो क्या रहा है कि जन्मसे उत्पन्न होने वाले आतकोसे यह जीव विषयोमे महान तृष्णाको उत्पन्न कर लेता है। उस तृष्णाकी शान्ति यह किसी भी उपायसे नही कर पा रहा है। यहा दो बाते मुकाबलेकी सामने आयी। ग्रन्थ कर्ताके चित्तमे यह बात आयी कि इस आत्मतत्त्वके अभिमुख हो तो सारा मार्ग स्पष्ट हो जाता है, मुक्तिकी अभिलाषा जगती है, ज्ञानस्वरूपका अनुभव होता है, भ्रम का वहा नाम भी नही रहता है और समताके साम्राज्यको भी भोगने लगता है। बात तो सही होती है। करना तो जीवोको यह चाहिये किन्तु बात और कुछ चल रही है, जन्मससरणसे उत्पन्न यह तृष्णा होती है।

जीवोंका विपरीत उद्यम—भैया! जगत्के जीवोमे और किस बातका संकट है सिवाय एक तृष्णाके? दूसरी कोई बात सकटकी हो तो बतलावो। किसीके सकटकी कहानी सुन लो, यही नजर आयेगा कि इसके तृष्णा उत्पन्न हुई है। धनकी तृष्णा, ज्ञान की तृष्णा, इज्जतकी तृष्णा। अनेक प्रकारकी तृष्णायें है उनका ही एक मात्र दु.ख है। यह दुख जीवोका किसी उपायसे मिट नही पा रहा है। सभी जीव इसही दुखसे पीडित होकर उस दुखसे बचनेका यत्न कर रहे है, पर उसीमे और भी विकट फंसते जाते हैं। जैसे मक्खी कफपर बैठ जाय तो ज्यो ज्यो वह हाथ पैर फटफटा कर उससे निकलनेका यत्न करती है त्यो त्यो वह और भी उसमे फंसती जाती है अथवा किसी कीचड़ वाली जगहमे फसा हुआ हाथी अथवा भैंसा ज्यो ज्यो उससे निकलनेका उद्यम करता है त्यो त्यो वह उसमे विकट फसता जाता है। इसी प्रकार ये संसारके प्राणी तृष्णा कर करके उसमे दुखी होते जाते है और ज्यो ज्यो उस दु.खसे छूटनेका उद्यम करते है त्यो त्यो उसमे और फसते जाते है। दुखकी वेदना और भी बढती जाती है।

मोहका उत्तरोत्तर फसाव—खुद पर बीती हुई बातोके लिये अधिक उपदेशकी जरूरत नही रहती है ये सब बाते जानते है। सभी यह सोच सकेंगे कि अब से तो २० वर्ष पहिले २५ वर्ष पहिले मेरी जो स्थिति थी वह अच्छी थी। बुद्धि चलती थी, शरीरमे बल था, धर्ममे चित्त चलता था, विरक्ति भी थी। जितनी चिन्ताएं अब सता रही है उतनी चिन्ताए तब न थी। हमारी तो पहिलेकी स्थिति अच्छी थी। तो बात क्या हुई? अरे ज्यो-ज्यो उस दुखको मेटनेका उद्यम किया त्यो त्यो और भी उस दुखमे फंसते गये, दुख और भी बढता गया। यह जीव किसी भी उपायसे इस तृष्णाके दुखको शमन नही कर पा रहा है। तब उस महातृष्णाकी शान्तिके लिये जगतके प्राणियोके उपकारके लिये विवेकी पुरुषोने यह निर्णय किया है, सत्य बातका उपदेश दिया, चित्तमे बात समाई और इससे जीवोको शान्ति भी मिली।

ज्ञानपद्धतिका प्रभाव—जैसे लोग कहा करते है कि भैंस बडी कि अकल, ऐसे ही समझ लो कि यह परिश्रम बडा कि ज्ञान। अपने दु खकी शान्तिके लिये सासारिक बल का प्रयोग करके हम आप बहुत बडी मेहनत किया करते है, पर उस मेहनतसे शान्तिका कारण नही बन पाता और ज्ञान बना तो वह ज्ञान शान्तिका कारण बनता है। ज्ञान पद्धतिका ही तो महत्त्व है, किसी प्रकारकी वेदना हो, इष्टका वियोग हो। अब जो गुजर गया वह तो गुजर गया। कितना ही उद्यम करें वह लौटकर नही आता, लेकिन उससे मोह अब भी ऐसा रख रहे हैं तभी तो वेदना उत्पन्न हो रही है। यह बात पूर्ण निर्णयसे नही समा पाती कि जो गुजर गया वह लौटकर नही आता। जैसे खुली आखोसे ऐसा स्वप्न देखता है कि अमुक इस गलीसे रोज आया करता है। हमे ऐसा लगता है कि वह अब आने वाला है। चित्तमे कैसी वासना बसी है कि इतनी सी मोटी बातका भी पूरा दृढ निर्णय नही है। यही तो एक अधकार है।

मोहमे भवकी अनित्यताका अनिर्णय—ये मोही प्राणी जैसा दुनियाको मरते हुए देखते है वैसा अपने बारेमे पूरी तरहसे निर्णय नही कर पाते कि किसी दिन मुझे भी नियमसे मर जाना है। कह लिया मुहसे और अदाज कर लिया, मगर जिसे अनुभव कहते है, ऐसा होना निश्चित् ही है—इतनी दृढतापूर्वक अपने मरणकी बात यह जीव नहीं सोच पाता है। सोच ले तो उसकी चर्यामे अन्तर आ जायेगा। लेकिन अन्तर नही आ रहा है। वहीका वही मोह वही सब राग बना है। यही इसका सबूत है कि हमे अपने बारेमे अपने मरने तकका भी दृढ निश्चय नही है, जैसे जब एकदम मरणहार होता है वहा यह विदित हो जाता है कि बस एक दो घटमे ही खत्म होने वाले है उस समय जैसा इसका दिल बदल जाता है, भीतरकी चर्यायें बदल जाती है ऐसी झनक होती नही इस जीवको।

वेदनामे अन्तर करने वाला ज्ञान—यहा कहा जा रहा है कि जितने दु ख होते हैं उन दुःखोकी शान्ति ज्ञानसे होती है। जब इष्टवियोगका दु ख हो, तब ज्ञान जगे, प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र है, भिन्न है, जो जो हैं वे अपनेमे अपना-अपना परिणमन करते हैं, उनका परिणमन उनमें है, उनका परिणमन उनसे बाहर किसी अन्यमे नही है—ऐसा स्वतन्त्रता का ज्ञान जगे तो इसकी उस वेदनामे कमी हो जायेगी। कोई आफत आने लगी धन लुट गया अथवा कोई नुक्सान हो गया तो वह इस साधारण हानिमे भी दुखी होता है और जब इससे भी कई गुना जमीदारीका नुक्सान हुआ, कानून बना और जमीदारी सबकी गयी, उस समय कोई दुःखी नही हुआ क्योकि ज्ञानमें यह था कि मेरा ही तो नही जा

रहा है, यह तो सभीका जा रहा है। कुछ धैर्य था। तो अब उसका भी १०-२० गुना नष्ट हो रहा है फिर भी एक प्रकारका ऐसा ज्ञान बना है कि दुखी नही होने देता, और यहाँ थोडासा भी नष्ट हो जाता तो दुःखी होते हैं। तो मुख्य अन्तर ज्ञानका ही रहा। उन वेदनाओसे छूटनेका मुख्य उपाय ज्ञान है। इस जातिका ज्ञान बनाये कि यह दुःख दूर हो, इस ओर अधिक यत्न करना चाहिये। परपदार्थोसे सग्रह विग्रह करनेकी अपेक्षा इस ओर दृष्टि देनी चाहिये।

हितोद्यम—ये जगत प्राणीके इस तृष्णाकी वेदनाको किसी अन्य उपायसे शान्त नही कर पाते है। इन वेदनाओकी शान्तिका उपाय केवल एक ज्ञान है। इसका उपयोग सही बातोमें समा जाये तो सारे क्लेश दूर हो जायेगे। ऐसे ग्रन्थकर्ता अपनें चित्तमे विचार कर रहे है, देखिये यह भी एक धर्म ध्यान है, इसमें भी सोपकार साथ-साथ चल रहा है। इस रचयिताकी भावनामे इसका विरोध नही है कि मैं अपना कुछ न करूं। वह अपना कर रहा है, जगतके प्राणियोके हितकी भावना करनेमे यह अपना भी काम कर रहा है। विषयकषायोके आक्रमणसे बचा हुआ है और शुद्धतत्त्वकी दृष्टिकी पात्रता भी बन रही है। इन आचार्योंने यही एक प्रतिकार समझा तो पूज्य पुरुष तो प्रतिकार करते है और ये मोही प्राणी उस प्रतिकारकी भी अवज्ञा करते है।

ऋषि संतोंका उपकार व हमारा प्रमाद—देखिये ग्रन्थमे क्या-क्या रत्न भरे पड़े है। कोई एक मर्म विदित हो तो उसकी इतनी प्रसन्नता होती है कि मानो कुछ पा लिया। किसी भी तत्त्वके सम्बन्धमे गूढ मर्मकी सही बात विदित होने की प्रसन्नता हुआ करती है और उसमे बहुत-बहुत विस्तृत मर्म विदित हुआ करता है। कितनी तपस्याके बाद, कितने अनुभवके बाद आचार्यदेवने हम आप पर करुणा करके इस ग्रन्थकी रचना की और हम आप ऐसे प्रमादी बने है कि ग्रन्थके मर्मको जाननेके लिये इच्छा भी न करें, यत्न भी न करे। उस ज्ञानके लिये यत्न करना सो तो है अपने हितकी बात और इस ओर दृष्टि न देकर बाहरी कार्योमे चित्त लगाना यह तो कोई विवेकपूर्ण बात नही है। अब आप अपना हिसाब लगा ले कि आप अपने तन, मन, धन, वचन सभीका उपयोग कितना तो अपने हितके लिये करते है और कितना खाने, पीनेमे यश लूटने और परिजनोके खुश रखनेमे लगाते है इसका आप खुद अदाज कर लो। और ज्ञानकी बात सीखें समझें। इसके लिये कितना व्यय करते है ? आप खुद सोच लो। जबकि सभीका मुख्य काम यह है कि जो मोक्षका मार्ग है, जो शान्तिके लिये काम देगा, इसकी ओर आपके तन, मन, वचन, धन का पूर्ण सदुपयोग होना चाहिये।

ऋषि संतोंकी हितैषिता—ध्यान तो दीजिये, ये जगतके प्राणी आचार्यदेवकी इस कृपा का भी अनादर करते हैं। यह है जगतके जन्तुवोकी स्थिति। फिर भी उद्वेगरहित पूज्य पुरुषोने इन प्राणियोंके लिये मोक्षके सम्बन्धमे उपदेश किया है। जैसें मा रोगी बच्चेको दवा पिलाना चाहती है। वह बच्चा बार-बार हाथसे मुह दबा लेता अथवा माका हाथ पकडकर ढकेलता अथवा उलट-पुलट कर पेटकी जगह सिर कर लेता। अब वह मा कैसे उसे दवा पिलाये, कभी-कभी वह माँ उसके दो चार हाथ भी मार देती है, लेकिन माँ फिर भी उस बच्चेको दवा पिलाती ही है। ऐसे ही ये आचार्यदेव माकी तरह कितने कृपालु है? ये उपदेश देते हैं; लेकिन लोग इनका अनादर करते है और उनकी आस्था नही रखते हैं, फिर भी ये आचार्यजन अपने कर्तव्यसे नही चूकते है और बराबर अपना कर्तव्य निभाये जाते है।

भूलसे कुपथ पर दौड़—आचार्यदेवके इन सब श्रमोका प्रयोजन इतना ही है कि ये जगतके प्राणी विरक्ति और ज्ञानको बनावे। विरक्ति न बनाई रागीके रागी ही बने रहे तो उससे कुछ पूरा नही पडनेका है। अपनी अपनी बात विचारो। अच्छा करते जाइये खूब राग चित्त भर, अन्तमे रागके फलमे, आखिर मिलेगा क्या? शान्ति तो मिलती नही है। जिन पदार्थोंका राग किया जा रहा है वे पदार्थ भी रहेगे नही और सदा मेरे अनुकूल वे रहे, यह बात भी नही बन सकती। रागमे किस ओरसे लाभ लूट लिया जाएगा। कुछ बात तो मालूम पड़े, या यो ही जिसको जैसा देखा वह उसी तरफ को दौड़ने लगा।

भूलकी विह्वलता पर एक दृष्टान्त—किसी बच्चेको एक आदमीने कह दिया—आगे एक कौवा उड रहा था ऐसा उस बच्चेसे कह दिया, देख तेरा कान कौवा ले गया, लो वह रोता है और उस कौवेके पीछे भागता है, दौड लगाता है। भले आदमी कहते हैं अरे क्यो चिल्लाता है, क्यो भागा जा रहा है? अरे रे रे मत बोलो—मेरा कान कौवा ले गया। अरे कहा ले गया, लगे तो है कान। अरे मुझे तो ताऊने कहा था। अरे ठहर। अपने कान टटोलकर देख तो ले, न मिले अगर तेरे कान तो कहना। ज्यो ही रुककर उसने अपने कान टटोले तो कान कही गये ही न थे। उसे कान मिल गये तो निर्णय हो गया, ओह मेरे कान तो कौवा नही ले गया।

भूलकी विह्वलता—ऐसे ही ये जगतके जीव; यह विषयलम्पटी पुरुषोका समूह अज्ञानी पुरुषो द्वारा बहका दिया गया है, अरे तेरा सुख अमुक परपदार्थसे है। चेतन परिग्रहोमे अथवा अचेतन परिग्रहोमे तेरा सुख है, तो इन जीवोने सुखकी आशासे आरम्भ

परिग्रहकी ओर दौड लगाना शुरू कर दिया है। दौड लगा रहे है। ज्ञानी संत समझते है, अरे तुम कहाँ दौड़ रहे हो ? अरे मत बोलो, हमारा सुख घरमे है, धन वैभवमे है, मैं अपना सुख प्राप्त करने जा रहा हू। आचार्य समझते हैं अरे नही है वहाँ सुख। कैसे नही है सुख ? देखो हमारे फलाने रिश्तेदारोने और लोगोने इन पड़ौसियोने प्रेक्टिकल कर करके समझाया है कि सुख इनमे है। अरे ठहर भाई, क्षणिक विश्राम तो कर, अपने आप की ओर दृष्टि तो दे। पहिले अपने आपको टटोल तो सही सुख स्वरूप क्या है ? तू क्या है ? तू कितना है ? कितना आया था, कितना जायेगा ? उस निज सुख स्वरूपको तो देखो। तेरा स्वरूप किन चीजोसे बना हुआ है, तेरा लक्षण क्या है ? कुछ इस ओर दृष्टि तो दे, कुछ तेरा झुकाव अपने शांतस्वरूपकी ओर हो तो तुझे अपने इस शातस्वरूपका पता पड़ेगा—ओह ! मैं सारे जगतसे न्यारा केवल निजस्वरूप मात्र हूँ, मैं एक चैतन्यस्वरूप हूँ, मैं आनन्द और ज्ञानसे भरपूर हूँ। ध्यानमे आया अब। व्यर्थ ही जगतके प्राणी आचार्योंकी वाणीमे अवहेलना करते हैं। यदि वे श्रद्धा करेगे और यथाशक्ति गुणो अमल करेगे तो उन्हे सन्तोष और शान्ति मिलेगी।

भूलकी वेदनाकी दयनीयता—यह विचार ग्रन्थरचयिताके चित्तमे उठा था और इसी कारण अन्तमे कुछ सुगम उपदेश विचार कर हमे इन जगतके प्राणियोको देना चाहिये, ऐसा भाव किया। कोई अपनी ही भूलसे दुखी हो रहा हो तो उसके प्रति कितनी दया लोगोको आती है ? कुछ लगाना नही, कुछ पराधीनता नही। केवल एक दृष्टि विचार बनाने भर की जरूरत है कि सारे दुख दूर हो जायेगे। तो ये जगतके सब प्राणी भी भूलसे दु.खी हो हो रहे है। जैसे बन्दर किसी घडेमे रक्खे हुए लड्डू उठानेके लिये दोनो हाथ घडेमे डाल देता है। तृष्णावश दोनो मुठियोमे लड्डू भर लेता है तो अब दोनो हाथ तो निकलते नही, वह समझता है कि मेरे दोनो हाथोको घडेने पकड लिया है सो वह उस घड़ेको लिये हुए इधर उधर लुढकाता रहता है और दुखी होता रहता है। यो ही ये जगतके प्राणी इस दुखसे निकलना चाहते हैं पर तृष्णा साथ लगी है सो इस ओर ख्याल नही जाता कि इस दुखसे छूटनेका ढग यह है और हमे ऐसा ऐसा करना चाहिये।

सतोके उपदेशका लाभ उठानेका अनुरोध—अहो ! तृष्णाके कारण मोही प्राणी दु.ख भी बहुत-बहुत भोग रहे है पर यह ख्याल नही जाता कि मैं अपने आप ही अपने विचार परविषयक बनाकर, परोपयोगी बनाकर अपने आपको दुखी कर रहा हूँ, सत पुरुष ऐसे भूले भटके हुए प्राणियोको केवल एक सच्चा ज्ञान दिखानेके लिये उपदेशका उद्यम करते है। सत्पुरुष इस प्रकार विचारकर जीवोके ससार सम्बधी दुखको दूर करनेके लिये

ऐसा उपदेश देते हैं अर्थात् शास्त्रोकी रचना करते है। हमारा कर्तव्य है कि जो निधि बडी तपस्याके बाद, बडे अनुभवके बाद आचार्योंने ग्रन्थोमे दिया है, उसकी अधिकसे अधिक जानकारी करें और उस उपायसे हम अपनेको ससार सकटोसे सदा छूटानेके लिये पुरुषार्थ कर लें।

अहो सति जगत्पूज्ये लोकद्वयविशुद्धिदे।
ज्ञानशास्त्रे सुधीः कः स्वमसच्छास्त्रैर्विड बयेत् ॥२५॥

असत् शास्त्रोंसे विडम्बित न होनेका सदेश—एक तो जीवोके कल्याणकी बुद्धि नही जगती और कदाचित् कल्याणकी बुद्धि जग भी जाय तो यहाँ एक बडी विपदा यह है कि धर्मके नामपर अनेक मजहब, गुरु अनेक प्रकारके मिलते हैं और उनमे भी लोग अपने आपको सबसे उत्तम कहा करते हैं। ऐसी स्थितिमे ये कल्याणार्थी किस ओर झुके, एक यह समस्या सामने आती है, किन्तु जिसमे वास्तवमे हितकी भावना जगी है वह पुरुष इस जातिकी कितनी भी समस्याएं सामने हो, फिर भी अपने आपके पथका निश्चय कर लेता है, क्योकि यह ज्ञानस्वरूप तो है ही, इसी कारण जिसमे शान्ति मिले और जिसमे न मिले, ऐसी बातोका बोध करनेमे उसे विलम्ब नही लगता।

हितनिर्णयकी आत्मनिर्भरता—कोई पुरुष यदि ऐसा सदिग्ध होकर कि जब सभी अपनी-अपनी बात कहा करता है कि मुझे न किसीकी बातपर चलना है और जिस काल मे जिस जातिमे हम उत्पन्न हुए हैं न उनकी कही हुई बातपर चलना है। मैं सबकी बात भूलकर अपने आप सत्यका आग्रह करके निष्पक्ष भावसे लो यह बैठा हूँ विश्रामसे, जो सत्पथ होगा, जो प्रभुता होगी वह स्वय व्यक्त हो तो मुझे मान्य है यहाँ वहाँकी कहना, उस पर चलना हमे अभीष्ट नही है। ऐसा निर्णय करके सब ओरसे विकल्प त्याग कर, सब मान्यतावोको भूलकर विश्रामसे बैठ तो जायें। कल्याणार्थी पुरुषमे अपने आप ही सहज अपने आपमे से वे बातें उत्पन्न होने लगेंगी जिस अनुभवसे आत्माका उद्धार होता है, जो उपादेय बातें है वे अपने आपमे वह प्राप्त करता है।

वास्तविक ज्ञान और शास्त्र—भैया वास्तविक तो वही ज्ञान है, जिसमे मेरी शरण प्राप्त हो, वही ज्ञान शास्त्र है ऐसे इस लोकमे व परलोकमे विशुद्धि देने वाले ज्ञानशास्त्रके होते हुए भी ऐसा कौन सुधी है जो अपने आपको असत्से, खोटे शास्त्रोसे अपनी विडम्बना कराये। सभी लोग कहते हैं कि दोष बुरे होते हैं, गुण अच्छे होते हैं। अपने आपमे निरखो तब विदित हो जायगा कि रागद्वेष मोह अज्ञान ये सभी दोष कहलाते है। निष्पक्ष केवल ज्ञानप्रकाश रहना, यह गुण कहलाता है। जिस विधिसे दोष दूर हो और गुणोका

विकास हो, उसका उपाय जहा बताया गया हो वह सत् शास्त्र है। आचार्यदेव यहाँ यह खेद प्रकट कर रहे हैं कि सत् शास्त्रोके होते हुये भी असत् शास्त्रोसे अपनी विडम्बना बना रहे हैं, यह एक खेदकी बात है।

आवश्यक शिक्षा—हमे यह शिक्षा लेनी है कि हमे तो अपने आपमे शान्ति पानेके लिये ज्ञानदृष्टिकी आवश्यकता है और शरीरकी स्थितिके लिये कुछ भोजनकी आवश्यकता है, इन दो के अतिरिक्त तो सब उद्दण्डताएँ हैं। तो जैसे भोजन आवश्यक समझ रहे हैं उससे भी अधिक आवश्यक ज्ञानदृष्टिका बनाना है। जो पुरुष ज्ञानी है, ज्ञानदृष्टि करके सहज आनन्दका अनुभव किया करते हैं वे क्रमश निकट कालमे ही भूखके कारणभूत इस शरीरसे भी विमुक्त हो जायेंगे, तो यह दु.ख तो अपने आप दूर हो जायेगा। सदाके लिये सकटोंसे छूटना है तो यह भोजन दृष्टि काम न करेगी, किन्तु ज्ञानदृष्टि काम करेगी। इस व्यवहारसे इन शरीरादिकसे अधिक ज्ञानभावना है। ज्ञानदृष्टि है ऐसा अपने आपमे दृढ निर्णय बना लेना चाहिये, ये समागमोमे आये हुए कोई लोग, साथ न देंगे। अपने आपका जितना ज्ञानप्रकाश बना है बस वही साथी होगा ये १० दिन दसलाक्षणीके जैसे व्यवहारमे मानते चले आये ये प्रतिवर्ष आते हैं, इन दिनोमे हम अपना नवीन-नवीन उत्साह जगाये, कितनी शान्ति मिली, कितना ज्ञानप्रकाश हुआ, कितना हम परपदार्थोंसे विरक्त होकर निज तत्त्वमे लगे ये सब देखनेके ये दिन हैं। हमारा कर्तव्य है कि ज्ञानार्जनमे अधिकाधिक लगा करे और ऐसी भावना बनायें जिससे जगतकी सर्व वस्तुयें असार दिखे, सुहितकी भावना जगे, संसारसे उपेक्षा उत्पन्न हो, यही धर्म पालन है।

असच्छास्त्रप्रणेतार प्रज्ञालवमदोद्धता।
सन्ति केचिच्च भूपृष्ठे कवयः स्वान्यवञ्चका.॥२६॥

स्वपरवञ्चको द्वारा असत् शास्त्रका प्रणयन—जैसे लोकव्यवहारके कामोमे विषयोके अभिलाषी पुरुष दभी ठगिया बहुतसे जीवनमे मिला करते है ऐसे ही परमार्थपथ पर चलने वाले इस यात्रीको ऐसे ठगिया भी मिला करते है जो खोटे शास्त्रोकी रचना वाले है, जो थोडी बुद्धि पा लेनेके कारण मदसे उद्धत हो गये है ऐसे अपने आपको और दूसरों को ठगने वाले भी इस पृथ्वीकी पीठ पर अनेक है। निष्पक्ष हो तो कुछ निर्णय किया जा सकता कि यह बात हितकी है और यह बात अहितकी है, जैसे सभी लोग यह निर्णय करने लगते हैं कि यह अन्याय है और यह अन्याय नही है। यह पाप है अथवा यह पाप नही है। कुत्ते तक तो इस बातको समझते है। कोई कुत्ता किसीके चौकेसे चोरीसे दो

चार रोटी लेकर भगें तो वह दूसरोंकी आँख छुपाकर पूछ दबाकर कही एकान्तमे जाकर खाता है, दूसरे कुत्तोको देखकर वह कायरतापूर्वक भागता है और किसी कुत्तेको आप स्वय रोटी खिलायें तो वह प्रसन्न होकर, पूंछ हिलाकर खाता है। तो उन कुत्तोके भी यह बात बसी है कि यह चोरीका काम है, यह पापका काम है। कौन नही जानता कि यह हित की बात है और यह अहितकी बात है? हाँ अज्ञानका उदय है, मिथ्यात्वका रग चढा है तो नही समझ सकते। इस पृथ्वीतलमे थोडीसी बुद्धि पाकर मदोन्मत्त हुए खोटे शास्त्रोंसे रचने वाले अनेक कविजन हैं वे केवल अपने आत्माका और भले जीवोका ठगनेका ही काम करते है. खुद डूबते और दूसरोको भी डुबाते हैं।

देवशास्त्र गुरुके निर्णयकी आवश्यकता—सर्वप्रथम धर्मपालनके लिये यह निर्णय होना जरूरी है कि सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु कौन कहलाते हैं? क्योकि किसी भी कार्यमे देव, शास्त्र, गुरुका सहारा लिये बिना सफलता नही मिलती है। कुछ भी कार्य ले लो। मानो किसीको सगीत सीखना है तो उसकी दृष्टिमे यह बात बनी हुई है कि मुझे ऐसा बनना है, तो दुनियामे जिसका भी नाम सुन रक्खा हो, चाहे कभी देखा हो या न देखा हो, बुद्धिमे यह बात आती है कि मुझे ऐसा बनना है- तो यह तो हुआ उस सगीत शिक्षार्थीका देव और देवोसे तो व्यवहार निभता नही है, तब अपने ही ग्राममे मोहल्लेमे जो सिखाने वाले उस्ताद है उनसे यह सीखता है, वे हुये संगीतगुरु और जिन पुस्तकोमे सगीतकी विधि लिखी हुई है, मद तेज बोलनेके चिन्ह दिये हैं-वे है सगीतके शास्त्र। सगीत सीखने वाला उस पुस्तकको भी देखता है और उसमे जैसा लिखा है सा रे गा मा- इत्यादि उसमे अगुली धरता जाता है, फिर और कठिनसे कठिन चिन्होको क्रमश सीखता जाता है। उस सीखनेमे जिन-जिन पुस्तकोका सहारा लिया जा रहा है वे हैं सगीतके शास्त्र। कौनसा काम ऐसा है जिसमे इन तीनके बिना सफलता मिली हो? न कही पुस्तकें हो तो जो वचन बोले जायें वे ही शास्त्र हुये। यदि धर्मके मार्गमे हम आगे बढना चाहे तो धर्मके देव, धर्मके शास्त्र और धर्मके गुरु—इन तीनका शरण आवश्यक हो जाता है। तो यह निर्णय करना बहुत आवश्यक है कि सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु कैसे होगें?

देवत्वनिर्णय—यह आत्मा मलिन कर्मबद्ध देहमे फंसा हुआ, जन्म मरणके चक्रमे पडा हुआ हितार्थी बनकर यह चाहता है कि इन सब बन्धनोसे मैं कैसे छूटूं, मेरा यह काम करनेको पडा है कि मैं इन उपाधियोके बन्धनसे कैसे छूटूं, जब जो छूटा हुआ हो वह हमारा आदर्श बन जाता है, मुझे इस प्रकार छूटा हुआ बनना है, जो बधनोसे छूटा हुआ हो, निर्दोष-

हो और सर्वज्ञ, गुणसम्पन्न हो यही हुआ हमारा देव। हमें नामका पक्ष नही रखना है। २४ तीर्थंकरोके नाम अथवा अन्य मोक्षगामियोके नाम हम व्यवहारमे इस कारण लिया करते हैं कि जिस भवका नाम लोगोने यह रक्खा हो उस भवमे अवस्थित आत्माने अपना उद्धार किया, इतने मात्र सम्बन्धके कारण नाम लेकर स्तवन किया जाता है, पर जो नाम है वह भगवान नही, जो भगवान है उसका नाम नही। एक चित्स्वरूप अखण्ड शुद्ध निर्दोष रागरहित ज्ञानप्रकाश ऐसा ज्ञानपुज ही देव है उसपर दृष्टि देना है कि मुझे यो बनना है। जब तक हम यो नही बन सकेगे तब तक हमारा उद्धार नही है, फिर उस देवसे तो व्यवहार कभी चलता नही, जीवनकी चर्या उस देवसे हमारी निभती नही, तब हम क्या करे? जो आसपास निकट क्षेत्रमे कही इस कार्यके सफल कुशल गुरु मिले तो उनसे उनके सगमे रहकर हम इस पथके गमनकी शिक्षा ले और उस पथमे चलनेका यत्न करे।

गुरुत्वनिर्णय—जो निर्दोष होनेके यत्नमे लग रहे है वे गुरु है जो विषयोकी आशासे रहित है, निरारम्भ निर्ग्रन्थ है और ज्ञानध्यान तपस्यासे ही जिनका प्रयोजन है ऐसे तपस्वी दिगम्बर साधु हमारे गुरु है। कभी ऐसे गुरु न मिले तो ये जो निर्दोष प्रतिपादन करने वाले शास्त्र है इन शास्त्रोके पद-पदमे वाक्य-वाक्यमे गुरु बसे हुए है। दर्शक इन शास्त्रोके वचनोमे गुरुका भी दर्शन कर रहा है। जिन आचार्योंने शास्त्र बनाया उन गुरुवो का स्मरण रहता है और अपनी इच्छाके माफिक उनकी कुछ न कुछ शकल भी उपयोगमे रखता है। चाहे उन आचार्योंकी कभी फोटो भी न देखी हो। कुन्दकुन्दाचार्य आदिक देवो का जब नाम लेते हैं तो उनकी कुछ न कुछ मुद्रा भी हमारे सामने झलकती है, ऐसे ही समंतभद्र अकलक इत्यादि जिनके भी चारित्र सुनते है उनकी मुद्राका कुछ न कुछ स्मरण हो जाता है। तो इन शास्त्रोके अध्ययनकालमे हमे यो गुरुके भी दर्शन होते रहते हैं। और फिर जो भी मिले बड़े गुरु, छोटे गुरु, सधर्मीजन सम्यग्दृष्टिजन उनमे अपना सग बनाये।

सत् शास्त्र—शास्त्र वही है जिनमे वीतरागताकी विधि लिखी हो, निष्पक्ष हो। देखो सर्वज्ञदेवके शासनमे यह उपदेश आया है कि हे कल्याणार्थी जनो, यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो अपने स्वरूपमे मग्न होओ, उन्हे यह नही पड़ी थी कि भक्तोको उपदेश दे कि मेरी शरण आवो उनका तो उपदेश है कि तुम अपने स्वरूपको देखो और उसमे ही मग्न होओ ऐसी निरपेक्षता बतायी है। बस स्वरूपदृष्टिसे ही स्वय शुद्ध आनन्द पा लोगे।

तत्त्वभक्तिमें ही लाभ—मोहसे बढकर कुछ विपदा नही है। और अज्ञानीजनोको यह मोह ही सस्ता लग रहा है। ज्ञान और वैराग्यकी बात तो बडी ही कठिन लग रही है और मोह करनेकी बात सुगम लग रही है। निर्मोहताकी बात मनमे भी नही आती है।

कदाचित धर्म भी करें तो मोहप्राप्तिके लिये करेंगे, कल्याण तो निर्मोह होनेमे है। जब होनहार अच्छा हो तब करियेगा। सच्चेदेव, सच्चे शास्त्र सच्चे गुरुका निर्णय करके अपनी भावनामे अपने ज्ञानपथमे उनकी उपासना करिये, प्रभुभक्तिसे बहुत बडी सिद्धि होगी और कुटुम्ब भक्तिसे, वैभव भक्तिसे कुछ सिद्धि न होगी। यह वैभव भी प्रभुभक्तिसे पाये हुए पुण्यका फल है। यो ही जीवोको जैसे चाहे अटपट ढगसे मिल जाता हो ऐसी बात नही है, हमारी दृष्टि ज्ञानकी ओर जगे और उत्तम शास्त्रोंके बनाने वाले गुरुवोके प्रति भक्ति जगे यह एक अपनी सावधानीका कर्तव्य है।

स्वतत्त्वविमुखैर्मूढै कीर्तिमात्रानुरञ्जितैः।
कुशास्त्रछद्मना लोको वराको व्याकुलीकृतः ॥२७॥

कुशास्त्रके प्रणयनका हेतु मनोरञ्जन—जिन्होने खोटे शास्त्र बनाये हैं उनका आशय क्या हो सकता है? यह भी अधिक सम्भव है कि कुछ जानते भी हो कि यह बात धर्ममार्ग मे फबती नही है, सम्यक् नही है फिर भी उस बात पर डटे रहे, उसका पोषण करते रहे तो ऐसा करनेमे क्या-क्या कारण हो सकते हैं? तात्कालिक ऐसा वातावरण होगा जिससे इसके खिलाफ चलें तो कीर्ति नही मिल सकती। स्वतत्त्वविमुख मोही जनोने केवल कीर्ति की इच्छासे ऐसी जानकारीका असत् शास्त्र बनाया है और कुछ लोग ऐसे भी हो सकते हैं कि जिन्हे स्वतत्त्वका बोध नही है, मुग्ध हैं, ऐसे लोगोने खोटे शास्त्रोके छद्मसे इस लोकको व्याकुल बना दिया है। यह लोक तो स्वय दीन था, कायर था, विषयाभिलाषी था और फिर विषयोका ही भगवत् चारित्र बता बताकर उसमे फसानेका उपदेश दिया है तो उन ग्रन्थरचयिताओने हम लोगोको ठगा ही तो है।

धर्मकी पराधीनताका निषेध—खुद-खुदमे मग्न होकर सुखी हुआ करते हैं, यह बात बताने वाले बिरले ही हुआ करते हैं, यदि धर्म ऐसा है कि दूसरोकी दया पर होता है, दूसरोकी शरणमे बने रहनेसे मिलता है तो ऐसे धर्मकी यो आवश्यकता नही है कि कदाचित दूसरोको दयासे थोड़ी देरकी सुख मिल जाय, किन्तु वह दूसरा फिर विमुख हो जाय तो हमे तो वहीका वही दुःख रहेगा, ऐसी धर्मकी जरूरत नही है, जो धर्म दूसरोकी दया पर आधारित हो, जो दूसरा हमे सुखी करे शान्त करे तो हम सुखी शान्त हो सकें ऐसा नही होता है। खुदका उपयोग स्वच्छ चाहिये। खुद खुदके उपयोगमे मग्न होकर अपने आपको निर्विकल्प बना लेगा, ऐसी विधिसे ही सन्तोष और शान्ति बन सकती है, सिर्फ हिम्मत करनेकी जरूरत है। अरे किसी दिन तो यह सारा समागम छूट ही जायेगा। श्रद्धामें ऐसी हिम्मत क्यो नही लाते?

सम्यक् विश्वास ज्ञान आचरणसे सन्मार्गकी प्राप्ति—सर्वविषयोसे न्यारा चैतन्यस्वरूप-मात्र मैं आत्मतत्त्व हूँ। इस विशुद्ध आत्मतत्त्वका श्रद्धान ज्ञान और इसका आचरण यह सकटोसे छुटानेका एकमात्र मार्ग है। विश्वास ज्ञान और आचरणके बिना किसी कार्यमे सफलता मिली है क्या किसीको? जो कोई व्यापार करता है उसका व्यापारमे विश्वास है, व्यापारकी विधियोका ज्ञान है और उन विधियोको करने लगता है तब तो व्यापारमे सफलता मिलती है, कोई भी कार्य हो उसमे विश्वास होना, उसका ज्ञान होना और उसका यत्न करना—इन तीन बातोसे उस कार्यमे सफलता मिलती है। हमे चाहिये शान्ति, तो शान्ति मुझमे आ सकती है, शान्ति मेरा स्वभाव है, ऐसा इस अतस्तत्त्वका विश्वास होना चाहिये, और इसही तत्त्वका स्वरूपका विधिसे स्पष्ट बोध भी होना चाहिये। फिर ऐसा ही उपयोग बनाकर रहे, ऐसी ही ज्ञानवृत्ति बनाये तो शान्ति क्यो न मिलेगी? मिथ्याविश्वास, मिथ्याज्ञान और मिथ्या आचरणमे जब यह विडम्बना बना ली है तो सम्यक्विश्वास, ज्ञान और आचरणसे मुक्ति क्यो न हो सकेगी?

आत्महितमें प्रमादका अकर्तव्य—इस जीवने व्यामोहवश एक अज्ञानभाव बना लिया है, इस देहादिकको दृष्टिमे रखकर ऐसी कल्पना करली है कि यह मै हूँ, इस कल्पनाके फलमें कितना विवाद खडा हो गया? शरीरमे फसा, रागद्वेषोका चक्र लगा, अपने आपमे यह शान्ति न पा सका तो मिथ्या विश्वास, मिथ्याज्ञान और मिथ्या भावनारूप आचरण इसने यह ससारकी विडम्बनाकी स्थिति बना दी है। अब जिस उपायसे खोटी बाते बन गई है उसके विरुद्ध उपाय करने लगे तो खोटी बातोसे मुक्त हो सकेंगे। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रकी एकता, यही है मुक्तिका उपाय और इस मार्गमे सच्चे-देव, सच्चेशास्त्र और सच्चे गुरुकी उपासना रखना यह प्रथम कर्तव्य हो जाता है। हमे अपनी शक्ति माफिक जो करने योग्य बात है उसके करनेमे प्रमाद न करना चाहिये तब हम उसमें सिद्धि पा सकते हैं।

अधीतैर्वा श्रुतैर्ज्ञातै कुशास्त्रैः कि प्रयोजनम्।
यैर्मन. क्षिप्यते क्षिप्रं दुरन्ते मोहसागर॥२८॥

कुशास्त्रोंसे प्रयोजनकी असिद्धि—उन शास्त्रोके पढ़ने सुनने जाननेसे क्या प्रयोजन है जिनसे जीवोका मन इस दुरत मोहसमुद्रमें शीघ्र ही पड जाता है। राग भरी बातोको सुननेमें यह मन बहुत लग जाता है। जब कभी गप्प सभा लग जाय तो चाहे रातके १२ बज जायें पर उस गप्पगोष्ठीको छोड़नेको मन नही करता। जो उपदेश इन रागद्वेष वासना वाले जीवोको रागकी ओर प्रेरित करे वह उपदेश इस मोहीको प्रिय लगता है,

किन्तु फल क्या निकलता है कि उस दुरत ससारसागरमे उसे पड़ा रहना पडता है।

अपूर्व अवसरके दुरुपयोग पर खेद—देखिये इतना सुन्दर सुयोग है हम आप सबका कि छोटेसे लेकर बड़े ग्रन्थ तक देख लो सभी ग्रन्थ कल्याणकारी अन्तरङ्ग मार्गको बताने वाले है और साथ ही हम आपका ऐसा शुद्ध वातावरण भी है कि परम्परासे इस धर्मकी बात सभाले हुए हैं, अब ऐसा सुयोगका अवसर पाकर दिल बहलावेमे ही समय गुजार दे तो यह तो हम आपकी अयोग्यताकी बात है। बारह भावनाके दोहे ६-६ वर्षके बालक भी बडे चावसे पढते हैं उनमे भी वीतरागताकी बात है और ऊचे अध्यात्मशास्त्र, सिद्धान्त, शास्त्र, दर्शनशास्त्र उनमे भी वीतरागताकी ओर ले जाने वाले सारे उपदेश हैं। ऐसे सुन्दर पवित्र वातावरणमे पलकर भी हम आप इस अमूल्य समयका दुरुपयोग करे तो यह खेदकी बात है।

मनोरजनसे असिद्धि—जो ससारसागरसे तिरा दे उस उपदेशके सुननेसे ही लाभ है। बाकी तो राग भरे उपदेश बड़े सुहावने लगते है। प्रभुको कुछ पकवान चढाना और उसे फिर बडी विधिसे खाना यह एक रागकी विधि है। कोई गृहस्थ प्रभुका चारित्र गा-गाकर अपने मनको खुश करे तो ऐसे भजनोमे कितना मन लगाता है लेकिन ये सब रागकी विधि है। धर्मके नाम पर, व्रत, सयमके नाम पर यह न खाया, चलो फलाहार किया, अच्छा मन रहा आयेगा। लो धर्मात्मा भी बन गये और शारीरिक श्रम कष्ट भी न करना पडा। तो रागकी विधियोका जहाँ उपदेश हो वह उपदेश सुहावना तो लगता है किन्तु उसका परिणाम उत्तम नही है। ऐसे तो इस पाये हुए नर-जीवनको खो दिया समझिये।

नरजीवनका योग—सबको नर-जीवन दुर्लभतासे मिलता है। चाहे किसी भी देशका हो, किसी भी मजहबका हो नर-जीवन तो उसी ढगका मिला है वैसे ही कर्मोंके उपशम क्षयोपशम सबको मिले है। यह अपने-अपने उपयोगकी बात है कि कौन किस दृष्टिमें रहकर अपना जीवन व्यतीत करता है? जिस वृत्तिमे यह आत्मप्रभु प्रसन्न रह सकता है उस वृत्तिको न करके इससे मुह चुराकर, उपयोग हटाकर नाना वृत्तियोको करना, यह सब इस प्रभुके साथ धोखेका काम हो रहा है। उन उपदेशोका, उन वचनोका, उन शास्त्रोका अध्ययन अहितकारी है जो इस जीवको इस ससारसागरमे डुबो दे।

भूमिकामे प्रकाश—इस ग्रन्थकी भूमिकामे वे सब बातें बतायी जा रही हैं जिनकी तैयारीसे इस ग्रन्थमे बडे सकल्प और भावना सहित इसमे प्रवेश करें। जैसे पूजा करते समय पूजाकी भूमिकामे, प्रस्तावनामे कितनी बडी तैयारी भरी हुई है? कोई उस पर

दृष्टि दें तो विदित हो जायेगा कि कितनी निर्मलता और कितना विकास, कितनी भाव-भासना पूजा करनेसे पहले पूजक कर सकता है ? जो स्वस्तिवाचन पढते है और उसमे भी जितनी तैयारी दिखाई जाती है उस पर दृष्टि दे। जब आप प्रभु ध्यानकी महिमा पढते है, चाहे पवित्र हो, चाहे अपवित्र हो, कैसे ही बैठे हो, कैसी ही अवस्था हो, जो पुरुष इस परमेष्ठी स्वरूपका ध्यान करता है, परमात्माका स्मरण करता है वह पवित्र है, वह सर्वपापोसे छूट जाता है। इस भावमे यह पूजक अपने आपमे कितनी प्रसन्नता व निर्मलता प्राप्त कर लेता है।

स्वस्तिवाचनमे विशुद्ध संकल्पका उदाहरण—अब जरा स्वस्तिवाचनमे चलिये। जब पूजक यह कहता है कि मैं तो शक्तिके अनुसार समस्त शुद्ध द्रव्योको प्राप्त करके अपने भावो को शुद्ध करनेके लिये दृढ सकल्प वाला होता हूँ, और भी उसके अत. प्रवेश करते हैं तो ऐसा लगता है कि पहिले तो नटखट बहुत किया, थाली सजाया, खडा हुआ, अब इस ही बीच मुझे ऐसा लगने लगा कि ये नाना बाते तो की है मगर यह तो सब कुछ एक ही बात है और वह क्या ? वह ज्ञानपुञ्ज वह प्रभुस्वरूप। लो ये मुझे कुछ नटखटसे जंचने लगे, पर प्रभुस्वरूपमे यह टिक नही सकता, सो फिर यह सकल्प बनाता है कि मैं सर्व प्रयत्न करके इस प्रज्वलित केवलज्ञान भावनामे केवलज्ञानी होकर केवल शुद्ध निर्दोष उस परम अतस्तत्त्वका मैं अनुभव करूंगा, उसके लिए यह पूजक पूजामे खडा हुआ है।

ग्रन्थनिर्वाहकी सुगमता—जैसे सभाओमे प्रस्ताव रखने योग्य प्रस्ताव पेश करनेसे पहिले भूमिकामे जितना अधिक कहना पडता है उतना प्रस्तावमे कहनेको नही रहता। यद्यपि यहाँ कुछ अति नही है, फिर भी भूमिकामे वह सब तैयारी बतायी गई है कि जिससे इस ग्रन्थका निर्वाह रुचिपूर्वक पारित कर सके।

क्षण कर्णामृत सूते कार्यशून्य सतामपि।
कुशास्त्र तनुते पश्चादविद्यागरविक्रियाम् ॥२९॥

कुशास्त्रकी बाह्यरम्यता—ये खोटे शास्त्र सुननेमे तो क्षणभरको कर्णमे अमृत जैसे वर्षा कर देते है क्योकि वे पहिले तो अच्छे लगेगे। जैसे कोई अहितकर वस्तु खाये तो पहिले तो वह अच्छी लगेगी किन्तु बादमे वह अहितकर प्रतीत होगी। यो ही ये कुशास्त्र सुननेमे भले लगते है किन्तु इन कुवचनोका फल बडा भयकर है। एक सिद्धान्त है चारवाक्। उसमे सारी बातें सुननेमे तो बडी भली लगती है पर उन बातोका परिणाम बडा भयकर निकलता है। ये कुवचन कानोसे सुननेमे तो बड़े प्रिय लगते है, कर्णमे अमृत जैसी वर्षा कर देते है पर सज्जन पुरुषोके लिये वे वचन कार्यशून्य है। बहुतसे लोग क्या

मेरे चित्तमे बसो, ऐसी पूजककी भावना है। अरे अपनी जिम्मेदारी अपने आप पर है। अपनी जिम्मेदारीको निभाये। अपना जो अकिंचनस्वरूप है उसकी ही भावनामे रत रहा करे, अन्य समस्त बातोका परित्याग कर दे। इससे ही अपना हित है। एक वस्तुस्वरूप का यथार्थज्ञान भर करना है। इसके लिये ऐसे सच्चे शास्त्रोका अध्ययन करो जिससे अपने हितकी प्रेरणा मिले।

सम्यग् निरूप्य सद्वृत्तैर्विद्वद्भिर्वीतमत्सरैः।
अत्र मृग्या गुणा दोषा समाधाय मन. क्षणम् ॥३१॥

निष्पक्ष गुण दोषोका विचार—जो सज्जन पुरुष होते है, जिन्हे किसीसे मात्सर्य नही है वे अनुवीचि सम्यक् निरूपण, समाधान करके गुण और दोषोका विचार किया करते हैं। आज भी आप यह परिच्छेदन कर सकते है कि जो लोग रूढिके वशीभूत है, गुण दोषोके विचारमे जिनकी बुद्धि नही चलती है वे आज भी धर्मके नाम पर सत्य धर्म क्या है, क्या नही है ? इसकी प्रधानता न देकर जो कल्पनामे बात समाई है उसकी ही प्राप्ति किया करते है, जबकि आज के पढे लिखे वैज्ञानिक, डाक्टर्स और ऊंचे प्रिन्सिपल वगैरह की दृष्टिमे धर्मके नाम पर दर्शनके प्रसगमे उनके चित्तमे उदारता बनी रहती है। वे किसी प्रकरणकी आलोचना करते हुए इतना भी ख्याल नही रखते हैं कि यह बात कही मेरे मजहबमे प्रतिकूल न हो जाय। जो उन्हे सच्चाईमे बात आती है उसे कह डालते है। आजके जमानेमे जो विद्वत्जन हैं, पढी लिखी समाज है वे इतने उदार हैं धर्म और ज्ञान प्रसगमे कि जो सत्यके वे जिज्ञासु है और प्रसारण करनेके इच्छुक है। सत्पुरुष, जिनको किसीसे मात्सर्य नही है वे शास्त्रमे और प्रवृत्तिमे गुण और दोषोका भरपूर विचार करते हैं। ग्रन्थ की भूमिकामे वह सब वर्णन किया जा रहा है जो एक आवश्यक है आगेके वक्तव्यको सही समझानेके लिये।

स्वसिद्धयर्थं प्रवृत्ताना सतामपि च दुर्धियः।
द्वेषबुद्धया प्रवर्तन्ते केचिज्जगति जन्तव ॥३२॥

दुर्बुद्धियोके द्वेषबुद्धिका प्रवर्तन—इस लोकमे अनेक दुर्बुद्धिजन ऐसे भी है जो अपने मतलबकी सिद्धिके लिये सत्पुरुषोसे भी द्वेष बुद्धिका व्यवहार करते हैं। अर्थात दुष्ट जीव सत्पुरुषोसे द्वेष रखते है। इस कथनसे हम यह शिक्षा ले, किसीके बहकायेसे हम कही दोषोको ग्रहण न करें किन्तु विवेक करें। द्वेषकी बात मिलती हो उपदेशमे शास्त्रोमे तो वहाँ हम उसका विरोध करे। प्राय आज यही तो हो रहा है समाजमे। जो किसी दूसरे से वात्सल्य रखता है तो यहा भी वह सही ज्ञान रख रहा है इस नातेसे वात्सल्य नही

करता, किन्तु वे जिस मतव्यकी प्राप्ति करना चाहते हो उस मतव्यके ध्येयके ये सहायक हैं, उनमे हमारे विकल्पके माफिक भी प्रतीति है, इस नातेसे आज वात्सल्य चल रहा है, और इसी कारण आज इस सम्प्रदायमे अत कितना विरोध है, कितनी खाइयां है ? यह सब कुछ थोडा बहुत ज्ञान रखने वाले और अखबारोसे समाचार जानने वाले समझते हैं, वही धर्मके प्रसगमे रीति रिवाज चल गया है जो रिवाजमे अथवा पार्टियोमे चला करता है। तो है क्या ? यह एक समयका दोष है या किसका दोष कहे ?

स्वहित भावनाके अभावमे धर्मके नाम पर पक्ष—जब तक चित्तमे ईमानदारीसे आत्म हितकी प्रेरणा नही होती है तब तक सारी विडम्बनाएं होती है। इस अशरण संसारमे हमे क्या गाड जाना है ? कौनसा कीर्ति स्तम्भ गाड जाना है। किसके लिये इतना धर्म के नाम पर पार्टियाँ करके इस धर्मको जडको खोखला करनेका प्रयत्न किया जा रहा है ? बात तो असलमे यह है कि स्वहितकी जब तक तीव्र भावना नही जगती है तब तक अनेक विडम्बनायें चलती है। यह एक जैन भारत पर व्यापक दृष्टि देकर कहा जा रहा है, इसी कारण यह अशक्त समाज बनना चला जा रहा है।

शुद्ध पथके आलम्बनका सकल्प—इस श्लोकमें शुभचन्द्राचार्य कहते है कि दुष्ट पुरुष सत्पुरुषोसे द्वेष रखा करते है। पर कुछ हो, इस ज्ञान और धर्मके प्रसगमें भी ईमानदारी न त्यागनी चाहिये। यद्यपि आज यह कठिन अवस्था हो गयी है कि कोई पढ़ा लिखा पुरुष यदि किसी पार्टीमे शामिल नही होता है तो उसकी सभी पार्टी वाले उपेक्षा अथवा दुर्दशा करनेका यत्न करते है। लेकिन यह भी एक शुद्ध पथका आलम्बन है कि जो स्याद्वादसे अनेकान्तको समझा है उस पर दृढ रहना और परवाह न करना, वहाँ काहे की पार्टी है ? यह तो एक धर्मका पथ है, ज्ञानपथ है, मोक्षपथ है, उस पर हमे चलना है, कर्मोंके बन्धनसे अनेक प्रकारके बातोसे त्रस्त हुए हम यहां कुछ सजाकर विषय सुखोकी बात बतायें तो वह ज्ञानियोको अवाञ्छनीय है।

साक्षाद्वस्तुविचारेवु निकषग्रावसन्निभाः।
विभजन्ति गुणान् दोषान् धन्या. स्वच्छेन चेतसा ॥३३॥

यथार्थज्ञोंका धन्यघोष—वे पुरुष धन्य हैं जो अपने निष्पक्ष चित्तसे वस्तुके विचारमे कसौटीके समान हैं और गुण दोषोको भिन्न-भिन्न जान लेते है। देखिये जैन शास्त्रोके निष्पक्ष प्रेमी ज्ञानी पुरुषोके ज्ञानमे इतनी उदारता रहती है कि वे निश्चय पक्षके सिद्धात और व्यवहार पक्षके सिद्धान्त दोनोकी यथार्थताका अपने ज्ञानमे स्थान निरखते है। क्या यह बात सही नही है कि प्रत्येक पदार्थ अपने आपमे पूरा है और अपने आपके

करते हैं कि कोई उपन्यास उठा लिया और उसे आदिसे अन्त तक बडे चावसे पढते हैं। अरे उन बातोके पढ लेनेसे कौनसा लाभ लूट लिया जाता है ? ये सब कुशास्त्र ही तो हैं। जिससे न आजीविकाका प्रयोजन सधे, न आत्मशान्तिकी कोई बात मिले, ऐसे कुवचनोके कुशास्त्रोके सुनने पढनेसे आत्माका कुछ भी लाभ न होगा। ये शब्द पहिले तो अमृत जैसी वृष्टि करेंगे पर बादमे विष जैसा फल देते है। यहाँ यह बात बतायी जा रही है कि इस जीवको कैसी वासना बनी हुई है कि इसे खोटी बाते तो चित्तमे घर कर जाती हैं पर हितकी बातें चित्तमें घर नही कर पाती।

अज्ञानजनितश्चित्र न विद्म' कोप्यय ग्रह ।
उपदेशशतेनापि य पुसामपसर्पति ॥३०॥

अज्ञानजनित ग्रह—अज्ञानसे उत्पन्न हुआ यह मोह पिशाच कितना भयकर है ? जिस जीवके अज्ञान उत्पन्न हुआ है उसे कोई सैकडो उपदेश भी दे, पर वह उससे दूर नही होता है। हम नही जानते है कि इसमे क्या भेद है, क्या राज है ? खोटी युक्तिया तो चित्तमे प्रवेश कर जाती है पर उत्तम युक्तियाँ चितमे प्रवेश नही कर पाती। इसका प्रयोग करके देख लो। कोई मांसभक्षण करता हो और उसके सामने धर्म करनेकी बाते रक्खो तो वे बाते उसके चित्तमे घर नही कर सकती है। कितनी ही कहावतें तो प्रसिद्ध हो गयी हैं। कोई-कोई लोग तो कहते है कि 'जिन आलू भटा न खाया, वह काहेको जग मे आया।' तो कुछ ऐसी कुयुक्तियाँ हैं जिन का प्रवेश चित्तमे हो जाता है पर कोई उत्तम युक्तियाँ सुनावो तो उन युक्तियोका प्रवेश चित्तमे नही हो पाता है। चूंकि मिथ्या आशय है इस कारण ऐसी बात उनमे पायी जाती हैं।

अज्ञानहठ—बालहठ बडी प्रसिद्ध हठ है। यह बालहठ अज्ञानके कारण होती है। जैसे कोई बालक हठ कर जाय कि मुझे तो हाथी चाहिये, किसी तरहसे उसके पिताने हाथी वालेसे कहकर अपने द्वारमे हाथी खडा करवा दिया और पिताने कहा लो बेटा तुम्हे हाथी ले दिया, बालक कहता है कि इसे तो खरीद दो। लो उस हाथीको अपने घर के बाड़ेमे खडा करवा दिया और कहा कि लो इसे खरीद दिया। फिर वह बालक कहता है कि इसे तो हमारी जेबमे धर दो। अब भला बतावो इस बातको कौन कर सकता है ? ऐसे ही हठ इन अज्ञानी मोही जीवोमे लगी हुई है। जरा-जरासी बातोमे ये मोही अज्ञानी जीव हठ कर जाते हैं। विषय कषाय, मोह, रागद्वेष ये सारीकी सारी बातें इस अज्ञानी हठीसे छोडी नही जा सकती। कुछ पढते बांचते भी हैं और धर्मके लिये अपने भाव भी बनाते हैं पर इसकी कुटेव नही छूटती तो यह हठ नही है तो और क्या है ?

भ्रमका मूल—इस अज्ञान अवस्थामे रहते हुए जिस किसी पुरुष को किसीके प्रति शक हो जाये, भ्रम हो जाय किसी भी प्रकारका तो वह कितनी ही सफाई की बातें पेश करे किन्तु उसका भ्रम दूर हो जाना कठिन हो जाता है। जो बात एक बार चित्तमे समा गई वह बात चित्तसे निकलनी बडी कठिन पड जाती है। एक तो विरुद्ध आचरण हो, रागद्वेष का आचरण हो और फिर उसमे भ्रम लग जाय कि यह ही हमारे हित की चीज है तब रागद्वेष छूटना कितना कठिन है? किसीको उल्टी बात सुना दो और यह भी कह दो कि देखो बहुत से लोग तुमसे उल्टी बात कहेगे उनकी बात तुम न मानना तो उस भ्रममे पड जानेके कारण उसे बहुत-बहुत दु खी होना पड़ता है। ये दर्शन मोहनीय, चारित्र मोहनीय कर्म नाव खेने वाले की तरह है। चारित्र पालने वाला नाव खेता जा रहा है पर दर्शन मोहनीयकी अवस्था कर्णधारकी तरह है जो अपनी दृष्टि बदल दे तो नाव उल्टी दिशामे हो जाय। जैसे किसी को दिखता तो खूब हो पर सारा पीला ही पीला दीखता हो ऐसी ही बात यहा हो जाती है। दर्शनमोहनीय कर्णधार अपनी दिशा बदल दे अपनी दृष्टि बदल दे तो सारीकी सारी बाते उल्टी नजर आने लगती है। ये मोही अज्ञानी जीव सारीकी सारी अपनी उल्टी वृत्तिया बनाये हुए हैं। इन उल्टी वृत्तियोसे इन्हे कुछ भी लाभ नही है, बल्कि सारीकी सारी हानिया है।

कषायोमे बरबादी—जरा-जरासी बातोमे ये अज्ञानी जीव क्रोध करने लगते हैं। अरे इस क्रोधसे कुछ भी तो सिद्धि नही होती है। शान्ति का दर्शन इस क्रोधभावके कारण नही हो पाता है। इस क्रोधभावको तो दूर करना ही पडेगा। बहुतसे लोग अपनी मान कषायको पुष्ट करनेके लिये अहकार किया करते है, चाहे किसीका हित हो अथवा अहित इस पर दृष्टि उस अहंकारी जीवकी नही जाती, किन्तु किसी तरहसे मेरा मान होना चाहिये, ऐसी भावना उसकी रहा करती है। कपटी पुरुषका सग तो बडे धोखेसे भरा हुआ है। मायाचारी पुरुषकी सगतिसे तो सदा धोखा ही रहा करता है, न जाने कब मायाचार करके अहित कर दे। इस बातका तो अनुभव करके भी अपने जीवनमे देख लो। ऐसी ही बात लोभी पुरुषकी है, उसकी इस संगतिसे अपना अहित ही है।

अपना उत्तरदायित्व—भैया! अपने इस अकिञ्चन् स्वरूपको देखो मेरा यहा कुछ नही है। यह देह तक भी मेरा नही है तो अन्य कुछ भी मेरा होगा ही क्या? केवल निज चैतन्यस्वरूपमात्र अपने आपका अनुभव करके देख लो। इस अनुभवमें कितनी शान्ति है? जिन प्रभुकी हम आप पूजा करते है उन्होने भी यही काम किया था और समस्त कर्मोका विनाश करके उन्होने ऐसी उत्कृष्ट स्थिति पाई है। हे प्रभु! ऐसे भगवान

मेरे चित्तमे बसो, ऐसी पूजककी भावना है। अरे अपनी जिम्मेदारी अपने आप पर है। अपनी जिम्मेदारीको निभाये। अपना जो अकिंचनस्वरूप है उसकी ही भावनामे रत रहा करे, अन्य समस्त बातोका परित्याग कर दें। इससे ही अपना हित है। एक वस्तुस्वरूप का यथार्थज्ञान भर करना है। इसके लिये ऐसे सच्चे शास्त्रोका अध्ययन करो जिससे अपने हितकी प्रेरणा मिले।

सम्यग् निरूप्य सद्वृत्तैर्विद्वद्भिर्वीतमत्सरै।
अत्र मृग्या गुणा दोषा समाधाय मन क्षणम् ॥३१॥

निष्पक्ष गुण दोषोंका विचार—जो सज्जन पुरुष होते है, जिन्हे किसीसे मात्सर्य नही है वे अनुवोचि सम्यक् निरूपण, समाधान करके गुण और दोषोका विचार किया करते हैं। आज भी आप यह परिच्छेदन कर सकते है कि जो लोग रूढिके वशीभूत हैं, गुण दोषोके विचारमे जिनकी बुद्धि नही चलती है वे आज भी धर्मके नाम पर सत्य धर्म क्या है, क्या नही है ? इसकी प्रधानता न देकर जो कल्पनामे बात समाई है उसकी ही प्राप्ति किया करते हैं, जबकि आज के पढे लिखे वैज्ञानिक, डाक्टर्स और ऊंचे प्रिन्सिपल वगैरह की दृष्टिमे धर्मके नाम पर दर्शनके प्रसगमे उनके चित्तमे उदारता बनी रहती है। वे किसी प्रकरणकी आलोचना करते हुए इतना भी ख्याल नही रखते हैं कि यह बात कही मेरे मजहबमे प्रतिकूल न हो जाय। जो उन्हे सच्चाईमे बात आती है उसे कह डालते है। आजके जमानेमे जो विद्वत्जन हैं, पढी लिखी समाज है वे इतने उदार है धर्म और ज्ञान प्रसगमे कि जो सत्यके वे जिज्ञासु है और प्रसारण करनेके इच्छुक है। सत्पुरुष, जिनको किसीसे मात्सर्य नही है वे शास्त्रमे और प्रवृत्तिमे गुण और दोषोका भरपूर विचार करते है। ग्रन्थ की भूमिकामे वह सब वर्णन किया जा रहा है जो एक आवश्यक है आगेके वक्तव्यको सही समझानेके लिये।

स्वसिद्ध्यर्थं प्रवृत्ताना सतामपि च दुर्धियः।
द्वेषबुद्ध्या प्रवर्तन्ते केचिज्जगति जन्तव ॥३२॥

दुर्बुद्धियोके द्वेषबुद्धिका प्रवर्तन—इस लोकमे अनेक दुर्बुद्धिजन ऐसे भी है जो अपने मतलबकी सिद्धिके लिये सत्पुरुषोसे भी द्वेष बुद्धिका व्यवहार करते हैं। अर्थात दुष्ट जीव सत्पुरुषोसे द्वेष रखते है। इस कथनसे हम यह शिक्षा ले, किसीके बहकायेसे हम कही दोषोको ग्रहण न करे किन्तु विवेक करे। द्वेषकी बात मिलती हो उपदेशमे शास्त्रोमे तो वहाँ हम उसका विरोध करें। प्राय आज यही तो हो रहा है समाजमे। जो किसी दूसरे से वात्सल्य रखता है तो यहा भी वह सही ज्ञान रख रहा है इस नातेसे वात्सल्य नही

करता, किन्तु वे जिस मतव्यकी प्राप्ति करना चाहते हो उस मतव्यके ध्येयके ये सहायक है, उनमे हमारे विकल्पके माफिक भी प्रतीति है, इस नातेसे आज वात्सल्य चल रहा है, और इसी कारण आज इस सम्प्रदायमे अत: कितना विरोध है, कितनी खाइयाँ है ? यह सब कुछ थोडा बहुत ज्ञान रखने वाले और अखबारोसे समाचार जानने वाले समझते है, वही धर्मके प्रसगमे रीति रिवाज चल गया है जो रिवाजमे अथवा पार्टियोमे चला करता है। तो है क्या ? यह एक समयका दोष है या किसका दोष कहे ?

स्वहित भावनाके अभावमे धर्मके नाम पर पक्ष—जब तक चित्तमे ईमानदारीसे आत्म हितकी प्रेरणा नही होती है तब तक सारी विडम्बनाएं होती हैं। इस अशरण संसारमे हमे क्या गाड जाना है ? कौनसा कीर्ति स्तम्भ गाड जाना है। किसके लिये इतना धर्म के नाम पर पार्टियाँ करके इस धर्मको जडको खोखला करनेका प्रयत्न किया जा रहा है ? बात तो असलमे यह है कि स्वहितकी जब तक तीव्र भावना नही जगती है तब तक अनेक विडम्बनायें चलती हैं। यह एक जैन भारत पर व्यापक दृष्टि देकर कहा जा रहा है, इसी कारण यह अशक्त समाज बनता चला जा रहा है।

शुद्ध पथके आलम्बनका सकल्प—इस श्लोकमें शुभचन्द्राचार्य कहते है कि दुष्ट पुरुष सत्पुरुषोसे द्वेष रखा करते है। पर कुछ हो, इस ज्ञान और धर्मके प्रसगमे भी ईमान-दारी न त्यागनी चाहिये। यद्यपि आज यह कठिन अवस्था हो गयी है कि कोई पढा लिखा पुरुष यदि किसी पार्टीमे शामिल नही होता है तो उसकी सभी पार्टी वाले उपेक्षा अथवा दुर्दशा करनेका यत्न करते है। लेकिन यह भी एक शुद्ध पथका आलम्बन है कि जो स्याद्वादसे अनेकान्तको समझा है उस पर दृढ रहना और परवाह न करना, वहाँ काहे की पार्टी है ? यह तो एक धर्मका पथ है, ज्ञानपथ है, मोक्षपथ है, उस पर हमे चलना है, कर्मोंके बन्धनसे अनेक प्रकारके बातोसे त्रस्त हुए हम यहा कुछ सजाकर विषय सुखोकी बात बतायें तो वह ज्ञानियोको अवाञ्छनीय है।

साक्षाद्वस्तुविचारेषु निकषग्रावसन्निभाः।
विभजन्ति गुणान् दोषान् धन्या. स्वच्छेन चेतसा ॥३३॥

यथार्थज्ञोंका धन्यघोष—वे पुरुष धन्य हैं जो अपने निष्पक्ष चित्तसे वस्तुके विचारमे कसौटीके समान है और गुण दोषोको भिन्न-भिन्न जान लेते हैं। देखिये जैन शास्त्रोके निष्पक्ष प्रेमी ज्ञानी पुरुषोके ज्ञानमे इतनी उदारता रहती है कि वे निश्चय पक्षके सिद्धात और व्यवहार पक्षके सिद्धान्त दोनोकी यथार्थताका अपने ज्ञानमे स्थान निरखते है। क्या यह बात सही नही है कि प्रत्येक पदार्थ अपने आपमे पूरा है और अपने आपके

सिवाय अन्य समस्त पदार्थोंसे अत्यन्त जुदा है। प्रत्येक पदार्थ अपने आपके परिणमनसे अपना परिणमन करता है; यह बात सही है ना ? सही है। तब क्या बात सही नही है कि कोई पदार्थ अपने स्वभाव के विरुद्ध कुछ परिणमन करे तो वह किसी पर-उपाधिका निमित्त पाकर ही अपना विभाव परिणमन कर पाता, यह भी तो सही है। इस जगतकी दृष्टिमे निमित्तनैमित्तिक सम्बध होनें पर भी प्रत्येक पदार्थ अपने आपमे स्वतन्त्र होकर परिणमता है। इसी तरह कहा कि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपका ही स्वामी होनेसे अपने आपमे अकेला परिणमन करता है; तो भी निमित्तनैमित्तिक सम्बंधीकी बात भी यथार्थ है और वे परपदार्थ पर-उपाधिका निमित्त पाकर उस प्रकारका विभाव परिणमन करते हैं। दोनो बातें यथार्थ है, और दोनो यथार्थ होकर भी किसी वस्तुको किसी परवस्तुकी आधीनता न समझना, स्वतन्त्रता समझना यह एक ज्ञानशूरताका काम है।

समक्ष घटनाओंमे भी तत्त्वदर्शन—भैया ! हजारो घटनाये सामने तो आती हैं। महिलायें रसोई बनाती हैं, आटा सानकर बेलकर तवे पर डाल दिया, सिक गई, रोटी बन गई। क्या यह बात सही नही है कि यह रोटी, यह आटा अपने आपमे ही सिकी और रोटी बनी ? क्या किसी महिलाके हाथ ने रोटी रूप परिणमन कर इस रोटीको सेका या अपनी परिणति उस रोटीको दी ? वह महिला भिन्न है, सिकी हुई वह रोटी भिन्न है। हाथ अपने आपमे है, रोटी अपने आपमे है। महिलाने उस रोटीको नही सेका, वह रोटी तो अपने आपमे ही सिकी। यह बात ठीक है ना ? तो क्या यह ठीक नही है कि उस महिलाका प्रयत्न और निमित्त पाये बिना उस रोटीमे यह बात नही बन सकती थी। निमित्त पाकर ऐसी स्थिति बनी, यह भी तो सही है, और दोनो बाते यथार्थ होकर उसमे भी यह निरखते रहे कि हाथका परिणमन हाथमे है, रोटीका परिणमन रोटीमे है, दोनो स्वतन्त्र पदार्थ अपने आपमे अपने आपके अधिकारी है, यह बात दीख रही है ना, यही है ज्ञान शूरताका काम। एक नही पचासो घटनाये ले लो, व्यामोहका कहाँ स्थान है ?

विवेक कसौटी—वे पुरुष धन्य है जो अपने निष्पक्ष चित्तसे वस्तुके विचारमे कसौटी के समान है। जैसे स्वर्ण कसनेकी कसौटी होती है वह कसौटी मालिकके पास है। मालिक उसे बडे अच्छे ढगसे रखता है लेकिन वह कसौटी दगा नही देती। वह कसौटी मालिक का पक्ष नही करती कि सोना ग्राहकको देते समय सोनेको कसौटीसे कसा जाये तो अपनी यथार्थतासे अधिक अपना गुण बता दे, अथवा किसी ग्राहकका सोना ले और कसौटीसे कसे तो यथार्थसे हीन गुणकी बात वह कसौटी दिखा दे। कसौटीका, न मालिकका पक्ष है, न ग्राहकका पक्ष है, वह तो यथार्थ अपना वर्ण दिखा देगा। ऐसे

ही जो सत्पुरुष है, ज्ञानी है, विरक्त है, निष्पक्ष हैं वे तो कसौटीके समान हैं। वे गुण और दोषोका बराबर यथार्थ विचार कर लेते हैं। भिन्न-भिन्न जान लेते है कि यह गुण है और यह दोष है।

प्रसादयति शीतांशुः पीडयत्यशुमान् जगत्।
निसर्गजनिता मन्ये गुणदोषाः शरीरिणाम् ॥३४॥

गुणग्राहिता व दोषग्राहिता—आचार्य महाराज उत्प्रेक्षा अलकारमे कहते है कि देखो चद्रमा जगतको प्रसन्न करता है और सतापको नष्ट करता है और सूर्य पीड़ित करता है अर्थात तापको उत्पन्न करता है। जैसे यह दोनो बाते इन दोनोमें स्वभावसे हैं इसी प्रकार जीवोके गुण दोष स्वभावसे हुआ करते है ऐसा मै मानता हूँ। जिसकी जैसी योग्यता है वह अपनी ही योग्यताके अनुसार वही बाहरमे निरखेगा। जिसे दूसरोके गुण ग्रहण करने की प्रकृति पडी हुई है वह अपनी उस योग्यताके अनुसार सर्वत्र गुणोको देखेगा और जिस के दूसरेके दोषोको देखनेकी प्रकृति आ गई है वह सर्वत्र दोषो को देखेगा, इसमे दोष क्या है, यह एक स्वभावकी बात है। पढे लिखोमे भी दोनो प्रकारके स्वभाव वाले लोग पाये जाते है।

दोषग्रहणमे अलाभ—यहाँ शिक्षा लीजिये कि इसमे महत्वकी बात, गुणोकी बात, अनोखी बात, हितकारी बात क्या निकलती है उसे परखनेके लिये अपने आपको तैयार बनाये रहना है। पढे लिखे लोग कुछ ऐसे भी होते हैं और सामर्थ्य भी उनमे ही हो सकती है ऐसी कि किसी उपदेशमे दोष ढूढ निकाले कि आखिर इसमे दोष क्या है, इसमे खोटी बात क्या है, कहाँ चूक हुई है ? उसके ही निरखनेमे बुद्धि सदा तैयार बनी रहती है, ऐसे ही बिना पढे लिखे भी दोनो प्रकारकी प्रकृति वाले जीव पाये जाते है। कोई गुण देखनेका भाव रखते हैं और कोई दूसरेके दोष देखनेका भाव रखते हैं, किन्तु यह तो विचारो कि अपनेको अपना हित करना है ना ? तो गुणी पुरुषोके गुण विचारना अच्छा है न कि दोष विचारना अच्छा है।

प्रकृतिका उद्घाटन—जिसमे जैसी प्रकृति है, बहुत उपाय कर लेनेके बावजूद भी वह अपनी प्रकृतिसे हो प्रभाव पैदा करता है। एक सेठके तीन लडके थे, पर वे तीनो लड़के तोतले थे। पहिले समयमे खवास वर ढूंढने जाया करता था। सो सेठके तीनो लडकोके देखनेके लिये खवास गया। सेठने तीनो लडकोको खूब सजा दिया था और समझा दिया था कि देखो जब खवास देखने आये तो तुम लोग चुप रहना। खवास जब उन लड़कोको देखने पहुँचा तो उसे वे लडके बडे सुन्दर जंचे। उसने उनकी थोडी प्रशसा कर दी। प्रशसा सुनकर एक लडके

से न रहा गया, बोल ही दिया—अले अभी टढन मडन तो लडा ही नही है, नही तो बडे टुडर लडते। याने अभी चदन वगैरह नही लगा है नही तो हम और भी सुन्दर लगते। तो दूसरा लडका बोला—हड्डाने कहा था, टुप रहना, याने चुप रहो दद्दाने कहा था कि बोलना नही, तीसरेने भी बोल दिया टुप टुप। लो उनकी तो सारी पोल खुल गई। तो जिसमे जैसी योग्यता है उसके अनुसार ही उसमे परिणमन होगा।

गुण दोषका विवेक—मूल से अभ्यास करनेका अर्थ यह है कि अपने आपकी आत्म भूमिको स्पष्ट यथार्थ बना लो। गुणग्राहिताकी बात मनमे आना चाहिये। दोषग्राहितासे अत्यन्त दूर रहो। हा हमे यदि दूसरोके सगमे रहना है तो विचार यह करना पडेगा कि यह गुणी है अथवा दोषी है? वह इसलिये विचारना है कि कही धोखा न खा जाये, क्योकि बिना ही प्रयोजन, कुछ वास्ता नही और दोष ग्रहण करनेकी एक आदतसो बनाये रहे तो वह निरन्तर अशान्त रहना पडेगा और स्वयका उपयोग दोषमय बनाये बिना कोई दोषोका ग्रहण भी नही कर सकता। उपयोगमे तो दोष आ गया।

दूषयन्ति दुराचारा निर्दोषामपि भारतीम्।
विधुविम्बश्रिय कोका सुधारसमयीमिव ॥३५॥

दुराचारियों द्वारा अवर्णवाद—दुराचारी पुरुष दुष्टजन निर्दोषजनोमे भी दोष लगाया करते है। जैसे यद्यपि चन्द्रमा सुधारसका स्थान है, उस चन्द्रबिम्बकी शोभा लोग बडे चावसे निरखते है, वह संताप शान्त करने वाला है लेकिन उस चन्द्रबिम्बको चकवा दूषण दिया करता है कि इस चन्द्रमाने हमारी चकवीका बिछोह कर दिया। देखिये कुछ ऐसा प्रसग है निमित्तनैमित्तिक कि चकवा चकवी दिनमे तो साथ रहते है पर रात्रि होने पर उनका वियोग हो जाता है। न जाने क्या बुद्धि उनकी बन गई हो, हमने तो चकवा चकवी देखा ही नही है। पर यह बात बडी प्रसिद्ध है, शास्त्रोमे भी दृष्टात रूपमे दी गई है। न जाने क्या बात हो जाती है कि रात्रिको जलमे रहने वाले चकवा चकवी दोनो का गमन विरुद्ध-विरुद्ध दिशाको हो जाता है। तो देखो चन्द्रमाकी सभी लोग बडी प्रशसा करते हैं लेकिन चकवा-चकवी मन ही मन उस चन्द्रमाको दूषण दे रहे हैं।

दुष्टोके शिष्टोके प्रति अनिष्टबुद्धि—अच्छा और भी देखिये, कोई साधु जा रहा हो, सामनेसे कोई शिकारी आ रहा हो तो शिकारी साधु को देखकर घृणा करता है, आज तो बडा असुगन हुआ, मुझे आज शिकार न मिलेगा। तो दुष्टजन निर्दोष पुरुषोको भी दूषण देते है, निर्दोष वाणीको भी दूषण दिया करते हैं। किसीमे कोई दोष लगाना हो पचासो बहाने है। कोई कम बोलता हो, ज्यादा बोलना पसद करता हो तो उसे यह

कहा जा सकता है कि यह बडा घमडी है, यह बोलता चालता ही नही है, किसीसे मिलता जुलता हो नही है, और यदि बहुत ज्यादा बोलता हो तो यह दोष लगाया जा सकता है कि यह बडा बकवादी पुरुष है, बोलता ही रहता है, कुछ धीरता नही, गम्भीरता नही। कम बोले तो लोग दोष लगाते, ज्यादा बोले तो लोग दोष लगाते, और मौन रहे तो लोग दोष लगाते। अब और क्या करे बतावो।

न्यायपथ पर चलन—देखिये, करना क्या चाहिये, सो सुनो। कोई कुछ कहे, दोष लगाये, बातको तो करने दो, तुमने क्या निर्णय किया है, शान्तिका पथ क्या है, तुम्हारा हित किसमे है ? इसका निर्णय रहे और उसपर ही चलते रहो। सारा जहान कुछ भी कहे तो उससे क्या होगा ? खुद ही जो जैसी करनी करेगा वैसा ही फल पावेगा। खुद ही अगर भले हैं तो भला फल मिलेगा, खुद ही अगर बुरे है तो बुरा ही फल मिलेगा। इसलिये आवश्यक कार्य यह करनेका है कि जो यथार्थ न्यायपथ है उस पथ पर चलें। ये सारे समागम मायाजाल है, विनश्वर है। विकल्पजालोमे बढनेसे तो अपने आपको सक्लेशमय ही बनाया। विकल्प बनाना युक्त नही है। आचार्यदेव इस ग्रन्थकी भूमिकामे श्रोताजनोकी ऐसी स्थित्ति बता रहे हैं, उन्हे उदार और विवेकशील बना रहे है ताकि वे आगेके वक्तव्यको निष्पक्षतासे है और अपने आत्महितकी दृष्टिसे सुने और अपना कल्याण करे।

अयमात्मा महामोहकलङ्की येन शुद्धयति।
तदेव स्वहित धाम तच्च ज्योतिः पर मतम् ॥३६॥

मोहकी बेहोशी—आत्मा एक शुद्ध स्वच्छ ज्ञानस्वरूप है। उसमे उपाधिवश रागद्वेष विकार विषयोको मलिनता आई है। यह मलिनता नष्ट हो तो आत्मा वही उज्ज्वलका उज्ज्वल है। इस मोहका कितना दुष्प्रभाव है कि अपनी ही बात है, अपना ही निधान ज्ञानानन्द अनन्त और वह अपने ही उपयोगमे उपभोगमे नही आता है, कितनी कठिन व्यवस्था है और जिस पर भी यह जीव उस थोडेसे वैभवको पाकर अज्ञानतासे ग्रस्त रहा करता है। उसे अपनी सुध नही होती है। स्वरूप तो प्रभुकी तरह निर्विकार और उज्ज्वल है पर दशा इसकी आज क्या हो रही है ? इसका सही परिचय ज्ञानी पुरुष किया करते है। अज्ञानीजन तो जैसी स्थितिमें हैं उसी स्थितिमे राजी रहा करते हैं।

निर्मोहताका कर्तव्य—सबसे महान् पाप महती मलिनता एक मिथ्यात्वकी है। मिथ्यात्वका अर्थ है जो बात जैसी नही है उसे उस रूप माना जाये। किसी भी पदार्थका किसी भी अन्य पदार्थसे कुछ नाता नही है। फिर भी किसीका किसीने मान लिया,

यही है मिथ्याभाव। ऐसी श्रद्धा हो तो उसे मोह कहते है। श्रद्धा गृहस्थोकी भी उतनी ही उज्ज्वल रहनी चाहिये जितनी कि साधु सतोके हुआ करती है। श्रद्धामे अन्तर न होना चाहिये। हा कुछ परिस्थितिवश आचरणमे अन्तर आया करता है पर श्रद्धामे अन्तर न आना चाहिये। साधु सत आत्माको सबसे न्यारा ज्ञानानन्दस्वरूप माने और गृहस्थजन कुछ और स्वरूप मानें, ऐसा अन्तर श्रद्धामे नही हुआ करता है। मिथ्यात्व कषायका मूल नष्ट हो तो स्वरूपका प्रकाश होता है।

मिथ्यात्वके प्रकार—मिथ्यात्व दो प्रकारके हैं, अगृहीत मिथ्यात्व और गृहीत मिथ्यात्व। अगृहीत मिथ्यात्व तो जीवको बिना सिखाये प्रकृत्या हुआ करता है, जैसे शरीरको माना कि यह मैं हूँ, यह अगृहीत मिथ्यात्व है। अपना नाम, यश हो जानेसे अपना हित मानना यह अगृहीत मिथ्यात्व है, और जो सिखायेसे देखादेखी मिथ्यात्व लगे वह गृहीत मिथ्यात्व है। जैसे कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरुकी पूजा करना, यह गृहीत मिथ्यात्व है। जैसे कोई घरमे सकट आ गया; या कोई बीमार हो गया तो लोग सिखाते कि अमुक देवी देवताओ पर इस प्रकारकी भेट चढावो अमुकका ताबीज वगैरह बाधो, यो दर-दर भटक कर रागद्वेषी देवी देवताओकी पूजा मान्यता करना यह गृहीत मिथ्यात्व है। कुछ लोग कल्पना बनाते हैं कि किस-किस प्रकारकी भेट देवी देवताओके नाम पर लोग किया करते हैं? उन्हे यह श्रद्धा नही है कि ये जीव हैं, सभी अपने अपने कर्मोंसे उपजे है, उन कर्मोंके अनुसार सभी जीवोको फल मिलेगा।

मौलिक कर्तव्य—ये परिजन घरमे आये हैं, ठीक है जो हमारा कर्तव्य है, वह कर्तव्य अपना करना ही चाहिये। नीतिपूर्वक व्यवस्था बनाकर अपना गुजारा करें, पर यह रहता है तो ठीक है, जाता है तो ठीक है, प्रत्येक पदार्थमे जो परिणतिया हो उनके ज्ञातादृष्टा रह सकें, इतनी धीरता गम्भीरता अपने आपमे आनी चाहिये। मोह मिथ्यात्व का प्रभाव है इस कारण यह पवित्र आत्मा इस मोह कलकसे दूषित है। इस कलकको नष्ट करनेका कोई उपाय अवश्य करना चाहिये। वह उपाय क्या है इसका ही वर्णन इस ज्ञानार्णव ग्रन्थमे बहुत-बहुत प्रकारसे आयेगा। करीब २००० श्लोकोमे ज्ञानकी ही शिक्षा दी गई है।

विलोक्य भुवनं भीमयमभोगीन्द्रशकितम्।
अविद्याव्रजमुत्सृज्य धन्या ध्याने लय गतः ॥३७॥

स्वरूपविवेक—इस भयानक कालरूपी सर्पोसे भरे हुए ससारमे जो मिथ्याज्ञान और मिथ्या आचरणके स्वरूपको छोडकर निज स्वरूपके ध्यानमे लवलीन हो जाता है वह महा

भाग पुरुष धन्य है। चीज वही एक है पर जिसका जैसा उपादान है रागी रहनेका, विरागी होनेका वह उससे वैसी शिक्षा लेता है। एक कहावत बडी प्रसिद्ध है। कोई एक वेश्या गुजर गई। उसको जलानेके लिये लोग मरघट लिये जा रहे थे। तो एक कामी पुरुष उस मरी वेश्याके मृतक शरीरको देखकर सोचता है कि यदि यह कुछ और जीवित रहती तो मैं इससे और मिलता, और एक साधु पुरुष उस वेश्याके मृतक शरीरको देखकर चिन्तवन करता है कि ८४ लाख योनियोमे भ्रमते-भ्रमते इसने दुर्लभ मनुष्यभव धारण किया था, किन्तु यो ही व्यर्थ खो दिया। वह मनमे खेद प्रकट करता है। मरघटमे स्याल वगैरह सोचते है कि ये मूर्ख लोग इसे बेकारमे जलाये दे रहे है। यदि इसे यो ही छोड देते तो महीने दो महीनेका हमारा भोजन होता।

बुद्ध्यनुसारिणी वृत्ति—भैया! और तो क्या, अपने-अपने जीवनकी बात निरख लो। आप लोग मदिर आते हो तो मदिरमे चीजे तो वही है, आने वाले लोग वही है, कोई किसी प्रसगको निरखकर कुछ परिणाम करता है कोई कुछ परिणाम करता है, चीज वही है पर जैसा उपादान है वह अपनी योग्यताके माफिक अपना विचार बनाया करता है। तब जो ज्ञानी संत जो पुरुष है वे इस जगतको भयानक कालरूपी सर्पसे अकित देखा करते है, क्या यह है जगत्? ये सब परिणमन सदा रहनेके नही है, शीघ्र ही विघट जायेंगे।

ज्ञानजागृतिमें संकटविनाश—एक बुढिया थी, उसके एक इकलौता लडका था और वह गुजर गया, तो आप समझो कि बुढ़ापेमें मात्र एक सहारा और वह भी गुजर गया तो कितना कष्ट होता है? वह बुढिया बहुत दुःखी हुई, वह रोती फिरे। एक साधु महाराज मिले, बुढियाने कहा—महाराज मेरा लड़का जीवित कर दीजिए। मैं बडी दु खी हू। मेरा यह इकलौता लडका है, कैसे मेरा जीवन कटेगा? तब साधुने कहा—अच्छा तेरा लडका जीवित हो सकता है किन्तु तुम्हें एक काम करना होगा। हा-हा महाराज! जो कहोगे सो करूगी। देख तू ऐसे १० घरोसे सरसोके दाने मागकर ले आ, जो घर ऐसा हो जिस घरमे कभी कोई मरा न हो। वह बुढ़िया बडी खुश होकर सरसो मागने गई। एक घरमे कहा—मुझे एक पाव सरसोंके दाने दे दो, मेरा लडका मर गया है वह जीवित हो जायेगा। तो देने वाला कहता है कि अगर इससे लडका जीवित होता है तो एक पाव क्या ५ सेर ले जावो। तो बुढियाने फिर पूछा कि अच्छा यह बतावो कि तुम्हारे घरमे कभी कोई मरा तो नही है? तो उसने गिना दिये सभी घरके मरे हुए लोगोको जिनकी उसे सुध थी। तो बुढिया बोली कि हमे ऐसे दाने नही चाहिये। इसी प्रकार दसो

घरोमे देख डाला पर कोई ऐसा घर न मिला जिसमे कोई कभी मरा न हो। यह हालत देखकर उसके ज्ञान जग गया, सोचा कि जो जन्मा है वह तो मरेगा ही नियमसे। लो उसका सारा दुःख मिट गया। साधुके पास प्रसन्न चित्त होकर पहुँची बुढिया। साधुने देखकर पूछा—कहो बुढिया तेरा लडका जीवित हो गया क्या? तो वह बुढिया बोली—हा महाराज जीवित हो गया। वह मेरा लडका है मेरा ज्ञान। मेरा ज्ञान प्रकट हो गया तो मैंने सब कुछ पा लिया।

आनन्दका विवेकानुगम—देखिये लोग नाहक दुःखी होते है। दुःख है कहां, और सुख है कहां? कुछ बाहरी भोग समागम मिल गये तो कहीं उनसे सुख और कही उनसे दुःख है। यह सुख दुःख तो अपने ज्ञान अज्ञान पर निर्भर है। सही ज्ञान हो, विवेक जागृत हो तो उसे आनन्द ही आनन्द है और जिसके विरुद्ध ज्ञान है उसको अपने कुज्ञानके कारण दुःखी ही होना पडेगा। भेदविज्ञान करना बहुत जरूरी है, अपनेको ऐसा अनुभव करना है कि समस्त परवस्तुवोसे निराला केवल ज्ञानमात्र यह मैं हूँ। कहाँ सुख है, कहाँ दुःख है? कल्पनामे सुख है और कल्पनामे दुःख है।

कल्पनासे अन्यत्र कुटुम्ब कहाँ—एक पुरुष एक वर्षके लडकेको घरमे छोड़कर करीब हजार मील दूर व्यापार करने चला गया, व्यापार वहाँ अच्छा चल गया। तो अब यो समझिये कि १४ वर्ष गुजर गये, उसे घर आनेका मौका न मिला। अब मा कहती है अपने बेटसे, बेटा चले जावो, तुम्हारे पिता अमुक स्थान पर रहते है, अमुक पता है, उन्हे जाकर लिवा लावो। वह लडका चला अपने पिताजीको लिवाने और उधरसे वह पिता चला अपने घरके लिये। रास्तेमे किसी गावमे एक धर्मशाला पडती थी। दोनो ही एक धर्मशालामे पास-पासके कमरेमे ठहर गये। रात्रिको उस लड़केके पेटमे बड़े जोरका दर्द हुआ, रोने लगा, चिल्लाने लगा। वह पुरुष मैनेजरसे कहता है कि इस लड़केको कही दूर कर दो, रात्रिके हम जगे हुए हैं, इसके रोनेसे हमे नीद नही आ रही है। मैनेजरने कहा कि रात्रिके १२ बज गये हैं, इसे कहाँ दूर कर दे? पर वह पुरुष बोला कि हमने तुम्हे १०) इसीलिये दिये हैं कि रात्रिभर आरामसे हम रहे। यदि तुम इसे दूर नही करते तो हम तुम्हारी शिकायत कर देगे। दर्द बढ जानेके कारण उस लडकेका हार्ट फेल हो गया, मर गया। यद्यपि उस पुरुषके पास पेट दर्दकी दवा थी पर उस लड़के पर दया न आई। उसके सामने ही मर गया।

कल्पनाका प्रभाव—वह व्यापारी दूसरे दिन अपने घर पहुँचा, स्त्रीसे पूछा—बच्चा कहा है? स्त्रीने बताया कि बच्चेको तो आपके लिवानेके लिये भेजा है। लौट पड़ा वह

बच्चेकी तलाशमे। कई जगह धर्मशालावोमे पता लगाया। पता लगाते लगाते वहाँ पर भी पहुँचा जिस धर्मशालामे वह ठहरा था। पता लगाया तो रजिस्टरमे साफ ब्यौरा लिखा हुआ था कि अमुक नामका लडका यहाँ ठहरा था। मैनेजरने उस पुरुषसे बताया कि वह लड़का यहाँ ठहरा था, अपने पिताजीको अमुक स्थान पर लिवाने जा रहा था, उसके पेटमे दर्द यही पर उत्पन्न हुआ। लो कुछ-कुछ उसे सुध हुई। पूछा फिर क्या हुआ ? मैनेजरने बताया कि उस लडकेका यही पर हार्टफेल हो गया। इतनी बात सुनकर वह पुरुष बेहोश होकर गिर पड़ा। भला बतलावो तो सही कि जब लडका सामने था तब तो एक आसूं न गिरा और जब लड़का सामने नही है तो बेहोश होकर गिर पडा, इसका क्या कारण है ? अरे उसने यह ध्यान बनाया कि वह मेरा ही लडका था, इस कारण उसे बेहोश होकर गिरना पड़ा। तो दु.ख तो इस कुबुद्धिके कारण मिलता है। ज्ञानी संत-पुरुष इस मायामय ससारको असार समझकर अपने आत्मतत्त्वके ध्यानमे लीन हो जाते है। वे महाभाग पुरुष धन्य हैं।

हृषीकराक्षसाक्रान्तस्मरशार्दूलचर्वितम् ।
दु खार्णवगत विश्व विवेच्य विरत बुधै. ॥३८॥

जीवपर इन्द्रिय राक्षसोका आक्रमण—जो बुद्धिमान है वे इस जगतको इन्द्रिय राक्षसोसे भरा हुआ, कामरूपी सिहसे चबाया हुआ और दु.खरूपी समुद्रमे डूबा हुआ समझकर इस जगतको त्याग देते हैं। भला विचारो तो सही, जिस स्थानमे राक्षस रहते हो, सिह आदिक क्रूर जानवर रहते हो उस स्थान पर विवेकी पुरुष रहना पसद करेगे क्या ? किन राक्षसोसे भरा हुआ यह जगत है ? यह इन्द्रियज्ञान, इन्द्रियज वासना। ये सारी इन्द्रिया इस जीवको परेशान कर रही है, खुदका जो पवित्र स्वरूप है उसका स्मरण ही नही हो पाता है, लेकिन इन इन्द्रियविकारोने, इन्द्रिय इच्छावोने, इन्द्रिय राक्षसोने इस जीवको सता डाला है और कामरूपी सिहसे यह जगत चबाया जा रहा है। जैसे सिह किसीको खा ले, ऐसे ही यह काम इस जगतको चबा डालता है।

कामकी घातकता—एक भजनमे लिखा है। "है काम नाममे देव लगाया किसने, यह तो प्रधान उनमे हिंसक है जितने।" लोग कहते है ना कामदेव। काम नाम है विषय-वासनाका, उसमे लगा दिया है देव। तो इस काममे देव नाम किसने लगाया है ? यह काम तो जितने भी दुनियामे हिंसक है उन सबमे प्रधान है। हिंसकोमे प्रधान लोग ढीमर को या मछली पकड़ने वालोको बताते है। जो जाल डालकर या अन्य तरहसे मछली पकड़ते है। मछली पकडने वाले लोग बहुतसे ऐसी हिसक प्रकृतिके होते है कि जिन्दा

मछलियोंको आगमे डालकर भून डालते हैं तो क्या यह कम हिंसा है ? तो यह कामदेव भी, यह कामविकार भी इस जीव पर कितना अन्याय किये हुए हैं, सोचिये तो सही। यह कामविकार जिनशासनरूपी शान्त सुखद समुद्रसे इस जीवको निकालकर नाना प्रकारके विकल्पोमे फसाकर यह दुःख संतापरूपी अग्निमे झोंक देता है, यह तो प्रधान हिंसक है, किन्तु यह जग कामरूपी सिंहसे चबाया गया है और दुःखरूपी समुद्रमे डूबा हुआ है, ऐसे इस जगतको असार समझकर बुद्धिमान पुरुष त्याग देते है।

पुराण पुरुषोकी चर्या—देखो भैया ! अपने पुराण पुरुषोके इतिहास, महापुरुषोने बहुत-बहुत राज्य किया, अन्तमे ज्ञान जगा, वैराग्य हुआ, बच्चोको राजतिलक करके अथवा यो ही बिना किसीके सभलवाये इस जगतका त्याग किया और अपने इस सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मब्रह्ममे उन्होने उपयोग लगाया। सब दृष्टिकी बात है। अच्छा यह तो बतावो कि सबसे मीठी चीज क्या लगती है ? सभी अपने-अपने मनकी बात बतावो। तो कोई कुछ बतायेगा कोई कुछ, पर योगीन्द्रोको एक आत्मस्वरूपका प्रकाश पा लेनेमें आनन्द मिलता है। उसीको पाकर वे प्रसन्न रहा करते हैं। तो उन योगीश्वरोको आत्मस्वरूपका ध्यान मीठा लगता है। इससे बढकर मधुर चीज इस जगतमे नही है। बहुतसे पुराणपुरुष ऐसे हुए जिन्होने इस मधुर चीजको पाकर अजर अमर पद पाया और जिन्होने भोगमे रहकर मरण किया उन्होने निम्नपद पाया।

ग्रहणविवेक—अब सोच लीजिये किसी पुरुषके आगे एक तरफ तो खलके टुकडे रख दे और एक तरफ हीरा रत्न जवाहिरात रखदे और कहा जाय कि भाई इन दो मे तुम जो चाहे सो उठा लो और वह उठा ले खलका टुकडा तो उसे कौन बुद्धिमान कहेगा ? ऐसे ही आपके सामने २ चीजे पडी हुई हैं, एक ओर तो सारा संताप विषयवासनावोका विकार और एक ओर रखा है आनन्दधाम, प्रसन्नताका शुद्ध स्वच्छ स्वरूप। अब इन दोनो मे से जिसकी भी यह जीव भावना करे, जिसको प्राप्त करनेकी दृष्टि करे उसको वह चीज प्राप्त हो सकती है। यह बात यथार्थ ध्रुव है। इतने पर भी यह जगतका प्राणी माग बैठे विकार, विपदा, विषयकषाय तो उसे कोई विवेकी कहेगा क्या ? केवल ध्यानसे, केवल भावनासे यह संसारका क्लेश भी मिल सकता है और मोक्षका आनन्द भी मिल सकता है। कुछ निर्णय कर लो, क्या चाहिये ? जो प्राप्त हो सकता है व भावसाध्य है। आत्मा तो और करता ही क्या है ? सिवाय एक भावनाके मतलब यह है कि अपनी भावना विशुद्ध बनायें तो इस भावनाकी विशुद्धिसे सर्व कल्याण होगा। एक यही करनेका काम पडा हुआ है। दृष्टि सही बनायें, ज्ञान सही बनाये और इस सहजस्वरूपके रमणका

ही यत्न करे, बस इस सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयके प्रतापसे समस्त दुःख आपके दूर हो सकते है।

जन्मजातङ्कदुर्वारमहाव्यसनपीडितम् ।
जन्तुजातमिद वीक्ष्य योगिन प्रशम गताः ॥३६॥

पीड़ित जगत् व आत्मसन्तोष—ससारसे उत्पन्न होने वाले दुर्निवार आतकरूपी महाकष्टसे पीडित इस जीव समूहको देखकर योगीपुरुष प्रशमको प्राप्त हो गये। अर्थात जिन योगी ज्ञानी संतोने अपने शरणभूत आत्मतत्त्वको पाया है उन्होने जब इस जगतको दुःखो से व्याप्त देखा तो और अत्यन्त विरक्ति हुई, अपने आपके स्वरूपमे रुचि हुई कि वह अपने आपमें प्रशमभावको प्राप्त कर चुके। दूसरोको देख-देखकर ससारी प्राणियोमे भी ऐसी आदत है कि कुछ अपने आपके बारेमे हम सुखी है इस प्रकारकी पद्धतिसे कुछ साता प्राप्त करते हैं, अपनेसे विशेष दुःखी देखनेमे आजाय तो अपनी परिस्थितिमे उसे असन्तोष नही होता। जब यह विचार होता है कि यह तो और ज्यादा दुःखी है तब अपनेसे कम धनीको देखकर चित्तमे उसके तृष्णा नही उत्पन्न होती। अपनेसे अधिक धनीको देखकर तृष्णा उत्पन्न होती है।

सद्बोधका उपकार—भैया! सम्यग्ज्ञानका बडा उपकार है, समस्त सकटोको दूर करनेमे सम्यग्ज्ञान ही समर्थ है। तीन लोकका भी वैभव इस जगतको शान्ति देनेमे समर्थ नही है। वैभव होकर भी जो पुरुष सुखी रहता है वह ज्ञानके माहात्म्यसे सुखी रहता है, वैभवके प्रतापसे सुखी नही होता। सुखी होनेका मार्ग तो सद्ग्रन्थोमे बताया है, जो उस मार्ग पर चलता है वह उसका आनन्द लूट पाता है। कितनी सीधी व्यवस्था है। पच अणुव्रतोका धारण करना, प्रतिमारूप न सही, पर पच अणुव्रतोमे जो किया जाता है उसे करनेकी एक अपनी प्रकृति बना लें। श्रावकके ८ मूल गुणोमे ५ अणुव्रत और ३ मकार का त्याग—इस प्रकार ८ मूल गुण बताये हुये है। अणुव्रतोके पालनमे अनेक संकट दूर हो जाते है।

श्रावकके त्रिविध मूल गुण—श्रावकके मूलगुण ३ ढगके है, पहिला ढग तो यह है कि पाच तो पंच अणुव्रत और छठवा सातवा आठवा है मद्य, मांस, मधु इन तीनका त्याग करना-अब दूसरे ढगका मूलगुण सुनिये पच उदम्बर फलोका त्याग, एकमे ले लीजिये मद्य, मास और मधुका त्याग तीन ये हुये, रात्रि भोजन त्याग, जल छानकर पीना, जीवदया करना और नित्य देवदर्शन करना—इस प्रकार ४ ये हुए। यो ८ मूलगुण हुए। फिर तीसरे दर्जेमे ५ उदम्बरका त्याग, इन्हे ५ मान लो और मद्य, मास, मधुका त्याग यो ८ हो गए।

तीन तरह के मूल गुण हुए। जब कहा जाय कि ८ मूलगुणोको धारण करो तो जो हित को तीव्र अभिलाषा रखने वाले नही है वे इन तीन प्रकारके मूलगुणोमेसे जो सबसे सस्ता है उसे ढूढेंगे और वह सस्ता मूल गुण कौन है ? ५ उदम्बर फलोका त्याग और मद्य, मास, मधुका त्याग। लेकिन यह समझनेकी बात है—ये सस्ते मूलगुण उनके लिये बनाये गये हैं जिन बिरादरियोमे नीचकर्म होते है। शिकार खेला जाता है, मास भक्षणका रिवाज है उनके लिये यह तीसरे दर्जेका मूलगुण है कि तुम इतना ही पालन करो, अभो तुम इतना ही उठो। जो जन्मसे श्रावककुलमे आये हैं, जिनकी प्रवृत्ति और पद्धति प्रकृत्या बहुत कुछ भली है वे मूलगुणोका पालन करें, नियम सयम करें तो प्राथमिक दोनो प्रकारो मे से किसी प्रकारका शुरु करें।

पतनमे वृत्ति—यहाँ एक बात और समझनेकी है कि ऊँचे पुरुष जिन बिरादरियोमे यह पद्धति है कि वे नीच कर्म न करे, उनमे यदि कोई नीचकर्म करता है, उसका यदि आचरण खोटा है तो वह तो उन लोगोसे भी अधिक पतित हो जाता है जो नीच बिरादरीके लोग होते हैं। और यदि नीच बिरादरीका कोई अच्छे आचरणसे रहता है तो उसको पवित्रतामे वृद्धि है। जैसे जिन बिरादरियोमे मांस मदिरा वगैरहका पूर्ण त्याग है उनमे यदि कोई मदिराका ही प्रयोग करने लगे तो वह कितना बुरा माना जाता है ? यह तो है लोकव्यवहारकी बात। अब व्यक्तिगत आत्माकी दृष्टिसे देखो तो अच्छे कुलका पैदा होने वाला पुरुष मदिराकी भी ओर प्रवृत्ति करे तो उसके परिणामोमे अधिक गिरावट आती है और नीच कुलका कोई पुरुष मास मदिरा वगैरहका भक्षी एक मदिराका भी त्याग करदे तो इसमे उसकी कितनी पवित्रता बढी हुई है ? यह निकटकालमे मासभक्षणका भी त्याग कर देगा।

उत्थान व पतनका एक सिंहावलोकन—करणानुयोगकी दृष्टिसे आपको एक उदाहरण बताये। सयमासयममे असख्यात स्थान हैं। किसीका सयमासयम घटिया दर्जेका, किसीका उनसे बढिया, किसीका उससे बढिया, इस तरह उसके सयमनमे, आचरणमे इतनी डिग्रिया हैं, इतने स्थान है, जिनके असख्यात भेद है। सयमासयम पशुपक्षियो और सज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोमे और मनुष्योमें होता है। अब उन सयमासयम स्थानोमे जो जघन्य स्थान है, कुछ दूर तक वे जघन्य सयमासयम मनुष्योके तो हो जायेंगे, पर तिर्यञ्चोके नही। तिर्यञ्चोके इससे बहुत ऊंचे दर्जेका जघन्य सयमासयम होगा।

मान लो सयमासयमके स्थान ११ डिग्रीसे लेकर एक लाख डिग्री तकके हैं, इनमे से ११ डिग्र.से लेकर ७५ डिग्री तकके सयमासयम स्थान मनुष्योके तो हो जायेंगे, पर

तिर्यञ्चोके मान लो ७५से ऊपरके होगे। अर्थात तिर्यञ्चोका जघन्य सयमासयम मनुष्यो के जघन्य सयमासंयमसे वहुत ऊँचा है। यद्यपि उत्तम सयमासयम मनुष्योके ही होगा और जैसा उत्कृष्ट सयमासयम मान लो कि ९० हजारसे ऊपर एक लाख तकके है तो तिर्यञ्चोके नही होगा। मनुष्योके ही उत्कृष्ट सयमासयम होगा। यह बात विशेष है, पर जघन्यकी वात सोच लीजिये। तिर्यंचका जघन्य व्रत मनुष्योके जघन्य व्रतसे अधिक पवित्र है। यह भी उस वातका समर्थन करता है कि वड़े पुरुष गिरे तो ज्यादा गिरे हुए हो जाते है, छोटे पुरुष उठे तो वे अच्छे उठे हुए कहलाते हैं।

अहिंसाणुव्रत मूल गुण—८ मूलगुणोके बिना तो श्रावक नही वताया है असली मायने मे। यो तो नामका श्रावक भी अच्छा है तो अब सोच लेना चाहिये कि हमारी प्रवृत्ति किस प्रकारकी है जिससे हम योग्य श्रावक कहला सके? जैनशासनकी पद्धति देखो। गृहस्थोको पच अणुव्रतका पालन वताया है और वह शान्तिमे कितना अधिक सहायक होता है इसे भी विचारना। अहिंसाणुव्रत आरम्भ न करना, खोटा व्यापार न करना, सात्त्विक रूपसे रहना, हिंसात्मक कार्य न करना, सो अहिंसाणुव्रत है। जहाँ खोटा वातावरण है, जहाँ खोटा व्यापार है वहाँ उन व्यापारोके करनेके लिये सक्लेश करना पडता है। विकल्प अधिक करना पडता है। अहिंसाणुव्रतका लक्षण है "त्रस हिंसाको त्यागि वृथा थावर न सहारे।" उस अणुव्रतमे इस गृहस्थको जीवके स्वभावपर दृष्टि रहनेका कितना अवसर है?

हिंसामें अध्यात्मघातका आपादन—कोई यह प्रश्न करे क्यो जी कीड़ा मकौडा अगर मर गया, वूढे शरीरको वदलकर उसने नया जन्म, नया शरीर पा लिया तो इसमे मारने का पाप क्यो लगा? मार डाला तो क्या हुआ? वह तो अन्य शरीर पा लेगा? तो इस के समाधानमे प्रश्नकर्ताकी पद्धतिमे उत्तर यो समझे कि भाई हिंसाका नाम है आध्यात्मिक दृष्टिमे मोक्षमार्गमे वाधा आ जाना, फिसल जाना ससारमे रुलते रहनेकी नौबत आना, यह है वास्तवमे हिंसा। जन्ममरणकी ही वात न देखो। उसमे तो कह देंगे कि हो गया मरण तो क्या हुआ? नया जन्म तो मिल जायेगा। उसका मोक्षमार्गसे पतित होनेका पाप गिनकर समाधान करिये। कोई कीडामकोडा निगोदसे निकलकर अन्य स्थावरोसे निकलकर किसी प्रकारसे तीन इन्द्रिय, चारइन्द्रियके भवमे आया था, उस जीवने उन्नति की थी, अब उसका घात किया गया तो घातके समय उसका सक्लेश परिणाम होगा और सक्लेश परिणाम होनेसे जिस स्थानमे वह आज है उससे गिरी हुई स्थितिमे उसका जन्म होगा। मान लो वह एकेन्द्रिय बन जायेगा तो एक जीवको जो कि इतनी उन्नति कर

चुका था, वह बहुत अधिक गिर जाय और एकेन्द्रिय वगैरह बन जाय, जिसका फिर कुछ ठिकाना नही, तो यह उसका कितना घात हुआ ? तो हुआ न पाप। अहिंसा अणुव्रत पालने वालेकी दृष्टिमे यह पापका भय बना रहता है कि किसी जीवकी अवनति न हो जाय। वह मोक्षमार्गसे और दूर न हो जाय, दूर तो है ही, और दूर न हो जाय, ऐसा सम्यग्दृष्टि गृहस्थके मनमें अन्त बात रहती है और इसी बुनियाद पर उसका यह अहिंसा पालन यथार्थ बना करता है।

मूलगुणोंमे सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य अणुव्रत—गृहस्थोका कर्तव्य है कि वे सत्याणुव्रत ग्रहण करे, सत्यव्यवहारमे, सत्य बोलनेमे कितना आपत्तियोसे बचा जाया करता है, जिसका झूठा ही जीवन है, जिसने झूठे लोगोमे एक विकट जाल फैला रक्खा है उसको आत्म-शान्ति नही रह सकती। सत्य जीवन, सत्यव्यवहार, सत्य वचनके प्रयोगमे संकट दूर होते है। अचौर्याणुव्रतमे भी नि.सकट जीवन रहता है। जिसके पराई वस्तुको चोरी या लूटका भाव रहता है वह सतत बेचैन रहता है। चोरी करके लूट करके भी वह सशल्य और व्यग्र रहता है। चोरीका भाव न हो, ऐसे स्वच्छ जीवनमे न शल्य होती न व्यग्रता रहती है। ब्रह्मचर्याणुव्रतमे भी यही बात है। स्वदारसन्तोष व्रत लेना, अपनी स्त्रीके अति-रिक्त समस्त बहू बटियोको अपनी मा बहिनके समान समझना और स्वस्त्रीमे भी सन्तोष वृत्ति रखना, आसक्ति न रखना, यही है ब्रह्मचर्याणुव्रत। इससे भी शान्तिका अवसर मिलता है।

मूलगुणोंमे परिग्रहपरिमाण अणुव्रत—एक अवशिष्ट मुख्य बात है परिग्रह परिमाण की। गृहस्थ परिग्रहका परिमाण करे तो कितनी ही आपत्तियोसे बच जाता है। जिस मनुष्यके परिग्रहका परिमाण नही है उसको सदा तृष्णा बनी रहती है। जितना जो कुछ हो जाय सन्तोष नही कर पाता। अपनेसे अधिक धनिकोको देखकर वे आश्चर्य भी करते है और यह आश्चर्यका भाव मिथ्यात्वका पोषण करता है और परिग्रहपरिमाण अणुव्रत ग्रहण करने वाले गृहस्थके चित्तमे तृष्णा नही जगती। यद्यपि परिग्रहका परिमाण अपनी इच्छासे कोई कितना ही रखले, लेकिन अनापसनाप जितना चाहे बढाकर रखले तो वह तो निर्मलताका कारण नही होता। जैसे एक थोड़े पढे लिखे पडित जी थे, उन्होने क्या परिमाण रखा कि हम ५ हाथी, १० ऊंट, यो सब बडी-बडी चीजे गिना दी और कहा कि इससे अधिक हम नही रक्खेगे। स्थिति तो है उनकी अत्यन्त साधारण, गरीबीमे दिन काट रहे हैं पर परिमाण इतना बढा लिया तो इससे मुफ्तका सन्तोष लूटनेकी मनकी बात समझिये।

गृहस्थका सुगम मार्ग—परिग्रह परिमाणसे तृष्णा नही होती। अधिक कमानेकी चिन्ता नही होती और बड़े धनिक पुरुषोको देखकर इसके चित्तमे आश्चर्य नही होता क्योकि यह परिग्रहको धूलवत् असार समझ रहा था, केवल गृहस्थीमे आवश्यकताके कारण कुछ जरूरत थी जिसका इसने परिमाण किया है। यो कितना सीधा मार्ग है पर चलनेकी बात है और जो इस पर चल सकता है वही इसका आनन्द लेता है। योगोजन संसारके प्राणियोको निरखकर अपने आपमे ऐसा उद्यम करते है वैराग्य बढ जानेके कारण कि वे शान्तिको प्राप्त कर लेते हैं।

भवभ्रमण विभ्रान्ते मोहनिद्रास्तचेतने।
एक एव जगत्यस्मिन् योगी जागर्त्यहर्निशम् ॥४०॥

योगीका जागरण—ये ससारी प्राणी बडी तेजीसे बडी कठिन-कठिन कुयोनियोमें, सकटोमे भ्रमण करनेसे विभ्रान्त हुए है और इस विभ्रान्ति व इस थकानके कारण मोहरूपी निद्रा उनके तीव्र आ गई है जिससे उनकी चेतना नष्ट हुई है, ऐसे इस जगत्मे इन योगिराजोके, जगत्के समस्त वैभवोसे अतिविरक्तोके केवल एक अपने ज्ञातृत्व स्वरूपके ही अनुभवमे निरन्तर उत्सुकता जागृत रहती है। जैसे जब लोग निरन्तर भ्रमण करनेसे खेदखिन्न हो जाते हैं तथा शरीर खेद खिन्न हो गया तो उससे बडी तेज निद्रा आती है। उस तेज निद्रामे यह जीव अपने आपको भूल जाता है, ऐसे ही ये जगतके प्राणी बहुत परिभ्रमण करनेसे खेद खिन्न हो गये है और इसी खिन्नतामे मोहकी तेज नीद बराबर चली आ रही है, इनकी चेतना नष्ट हो गई है, ऐसा तो यह जगत् है, किन्तु इस जगत् मे अभी भी ऐसे मुनिराज विराजमान है कि जो इस जगत्मे रहकर बराबर जागरूक है, सावधान हैं।

रजस्तमोभिरुद्भूत कषायविषमूर्च्छितम्।
विलोक्य सत्त्वसन्तान सन्तः शान्तिमुपाश्रिताः ॥४१॥

विषम ससार व विश्रान्ति—ससार, शरीर, भोगोसे उदास, विरक्त पुरुष ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्मरूप रजसे और मिथ्याज्ञानरूप तमसे अथवा रजोगुण, तमोगुणसे उद्भूत कषायविषसे मूछित जगत्के प्राणियोको देखकर सज्जन पुरुष शान्तभावको प्राप्त होते है। जैसे स्कूलमें ऊधमी लड़केको पिटता हुआ देखकर अन्य बच्चे भी शान्त हो जाते है, इसी तरह इस जगत्के दुखी जीवोको निरखकर ये योगिराज स्वय शान्त हो गये है। कहां जाये, क्या करें, कौनसी चीजसे यहा सुख मिल जायेगा? यो उनका विचार रहता है। उनकी चित्तवृत्तिमे यह भाव रहता है कि परोपकार करो।

परोपकारका लाभ—परोपकारका अर्थ क्या है ? जो दीन दु खी जीव हैं उनकी सेवा करो। दीन दु खी जीवोकी सेवा करनेसे क्या मिल जायेगा ? कोई कहेगा कि इससे यश और नेतागिरी मिल जायेगी। अरे ये तो लौकिक लाभ है। परोपकारीको आत्मा का भी लाभ है। वह किस तरह ? यो कि जब दीन दुखियोका उपकार किया जा रहा है, उनकी सेवा की जा रही है तो प्रथम प्रभाव उसका यह होगा कि विषयकषायोकी बाते उस समय न आने पावेंगी, क्योकि चित्त एक विलक्षण प्रकारका उस समय हो रहा है। तो पहिला लाभ तो यह मिला कि विषयकषायोसे बचे। दूसरा लाभ यह है कि इस स्थितिमे जहाँ कि विषयकषायोको अवसर नही मिल रहा और अपनेसे अधिक दीन दुखियोको निरखकर अपना स्थितिमे उसे सन्तोष हो रहा है। हम बहुत कुछ अपना कल्याण कर सकनेके योग्य है। जहाँ यह निर्णय रहता है कि ये तो विशेष दीन दुःखी है, वहाँ तृष्णाका उदय नही होता है, तबकी स्थितिमे हम अपने आपके अतस्तत्त्वका विशेष-विशेष स्पर्श कर सकते हैं। यह है परोपकारमे लाभ।

विशुद्ध सेवा—जितना अपना जीवन दीन दु खियोके उपकारमे बीते और उनके उपकारमे अपना कुछ समय लगे तो उसमे आत्माका विशुद्ध परिणाम उत्पन्न होता है, आत्मतत्त्वका स्पर्श होता है। जबकि सुखी पुरुषोकी सेवा करनेसे चित्तमे कायरता जगती है, दीनता आती है, आत्मलाभ कुछ नही मिल पाता है। हा जो वास्तविक सुखी है, अध्यात्म दर्शनके पतापसे जिसने परम आनन्द पाया है। उनकी सेवामे तो लाभ है, मगर जगत्के लौकिक सुखी जीवोकी सेवासे चित्तमे कायरता जगेगी और दु खी जीवोकी सेवासे चित्तमे वैराग्य और ज्ञानप्रकाश जगेगा। ये योगीजन इस प्राणिसमूहको कषायविषसे मूर्छित निरख कर शान्तिभावको प्राप्त हो जाते है।

मुक्तिस्त्रीवक्त्रशीताशु दृष्टुमुत्कण्ठिताशयैः।
मुनिभिर्मथ्यते साक्षाद्विज्ञानमकरालय ॥४२॥

ज्ञानसागरका मन्थन—मुक्तिरमणीके मुखचन्द्रको देखनेके उत्सुक हुए मुनिजन साक्षात् विज्ञानरूपी समुद्रका मथन करते है। लोक रूढ़िमे कुछ ऐसी किंवदन्ती चली आई है। कि प्रभुने समुद्रको मथा, उससे चन्द्रमा निकला है। यह एक किंवदन्ती चली आई है। सो यहाँ अलकारिक रीतिसे कहा है कि मुनिजन मुक्तिरमणी चन्द्रमाको देखना चाहते है। इस कारण वे ज्ञानरूपी समुद्रका मथन करते है अर्थात ज्ञानके ध्यानसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। आत्मा सबसे न्यारा अपने स्वरूपमात्र तो है ही। ऐसा ही रह जानेका नाम मुक्ति है, और ऐसे ही निजस्वरूपका ध्यान करनेसे व्यक्त रूपमे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। मुक्ति के अर्थ मुनिजन इस निज सहज अन्तस्तत्त्वकी उपासना करते हैं।

उपर्युपरिसभूतदु खवह्निक्षत जगत् ।
वीक्ष्य सन्त. परिप्राप्ता ज्ञानवारिनिधेस्तटम् ॥४३॥

सुखद ज्ञानतट—बार-बार उत्पन्न हुई दु खरूपी अग्निसे नष्ट हुए जीवलोकको देख कर सतपुरुष ज्ञानसमुद्रके तटको प्राप्त हुए है। जैसे कही अगल-बगल बनके छोर पर अग्नि तीव्र जल रही हो और वहाँ बहुतसे लोग खाक हो रहे हो तो वुद्धिमान लोग शीघ्र ही समुद्रके तट पर पहुँचनेकी कोशिश करते हैं, यहाँ हम आगसे वच जायेंगे, ऐसे ही इन विषयकषायोके दु.खकी अग्निसे जल रहे लोगोको देखकर ज्ञानी सत्पुरुष ज्ञानरूपी समुद्रके किनारे बैठ गए है। यहा आग आ न सकेगी और कदाचित् दु ख आयेगा, अग्नि यहा आयेगी तो थोडा समुद्रकी तरगोसे बुझा लेगे। कही पानीमे आग तो न आ सकेगी, ऐसे ही इन ज्ञानी पुरुषोने सोचा कि यह ससार दु खोका घर है। यहाँ दुःखरूपी अग्निसे यह जीवलोक जल रहा है। अपन सावधान हो जाये, इस तरह जलनेमे कुशलता नही है। जरा ज्ञानसमुद्रके किनारे बैठ जायें तो वहा इस दुःख विपदासे मुक्त हो जायेंगे। ऐसा सोचकर उन्होंने एक ही निर्णय किया है—ज्ञानके निकट अपना उपयोग बनाये रहना।

शान्तिके उपायमे—इस जगत्मे और सारभूत वात ही क्या है ? एक अपने ज्ञान-स्वरूपका उपयोग बनाये बिना कुछ भी अन्य उपयोग बना लो पर वहाँ चैन नही हैं। बाहरमे कुछसे कुछ सचय कर लो, वहाँ भी चैन नही है। शान्ति मिलेगी तो सबसे निराले ज्ञान-मात्र निजस्वरूपकी प्रतीतिमे मिलेगी। यह उपाय बनावटी नही है। यह उपाय कही जोडतोड करके कुछ कृत्रिम किया गया हो सो नही है। यह उपाय अयथार्थ नही है। किसी सकटके समय और कुछ न सही तो इसीको ही कर लें, ऐसा कोई आपत्कालीनको ढूँढी हुई चिकित्सा नही है, किन्तु यह बात ध्रुव यथार्थ है—एक ज्ञानभावके स्पर्शके बिना हम आपको कभी शान्ति मिल नही सकती। एक बार तो सर्वविकल्पोको त्यागकर अपने आपको सबसे सूना केवल निज प्रकाशमात्र निरख लो और निरखकर अन्तर्जल्पमे इसका जयवाद बोल तो लो—इस निजकी जय हो, यह विकसित हो। यही एक उत्कृष्ट विजय है, बाहरी बातोंमे कुछसे कुछ स्थिति बनाकर और अपनेको विजयी समझकर भ्रममे बना रहना यह तो एक धोखे वाली बात है।

स्वहितके निश्चयका अनुरोध—भैया ! खूब ध्यानसे विचार लो और अपने मनमे स्वहितका निश्चय बना डालो। जो बात सच है उसको यथार्थ मान लेनेमे ही अनुपम लाभ है और यह उपाय है केवल भीतर एक ज्ञान जगानेका, जिसमे न द्रव्यका खर्च है, न किसीके हाथ जोडने पडते है, न कोई आधीनता है। यों ही बैठे बैठे यहाँ भीतर ही

भीतर जैसे कोई विश्राममे बैठा हो तो अपने ही गलेमे से घूंट गटक लेता है बिना ही पानी पिये, मुह भी बन्द है फिर भी गलेसे कुछ घूंट उतर आता है जब मन चगा और विश्राम मे होता है, ऐसे ही यथार्थ निर्णय करके इस वैभवको असार अहित जड भिन्न मान कर जैसे धूल पाषाण जुदे हैं ठीक इसी प्रकार ये वैभव, धन, दौलत भी जुदे है। जैसे कि धूल और पत्थरसे मेरे आत्मामे कोई वृद्धि नही होती ऐसे ही चिकने चापडे स्वर्ण वैभव इनसे भी आत्मामे रच सिद्धि नही होती।

भावविशुद्धिका अनुरोध—जब सब यहां कल्पनाकी ही बात है तो ऐसी कल्पना करो जिसमें पूर्ण शान्ति भरी पडी हो। धन वैभव परिजनकी ममताकी कल्पाएं बनाकर कुछ छुटपुट मौज लूटी है तो वह कल्पनावोकी मौज है। अब भाव ऐसा बनावो ना जिस भावमे आत्माको परमशान्ति प्राप्त हो। बच्चे लोग जीवनवारका खेल खेलते है। बैठा लिया १०-५ बच्चे और बडे-बडे ककड बीन लाये, उनको मान लिया गुडकी डली, लो खावो गुडकी डली, छोटे ककड बीन लिये और कह दिया लो खावो चने, पत्ते तोड लिये, उनको देकर कहा—लो खावो रोटी। अरे बच्चो जब कल्पना ही करना है तो गुडकी डली न कहकर अच्छा बडा रसगुल्ला क्यो न कह लो, अथवा छोटे ककडोको चने न कह कर बूंदी कह लो अथवा पत्तोको रोटी क्यो कहकर परोसते हो, उन्हे अच्छी पूडी कचौडी कह लो, जब कल्पना ही करना है तो अच्छी कल्पना करो, तुच्छ भावना क्यो करते हो? जब यह जगतमे केवल भावोका ही सुख है, चीजका सुख नही है, किसी परवस्तुसे सुख निकल ही नही सकता। जब केवल भावोका ही सुख है, तब अपनी हिम्मत बनाकर जरा ऐसा भाव बना लो जिस भावके बाद फिर और जघन्य भाव लौटकर आये ही नही और परम आनन्दका अनुभव किया जा सके।

आत्मरक्षाके यत्नमे—अपनी परिणति अपनी भीतरकी गाडी है, अभी बिगडी पडी है, इसे जरा सुधार लो तो फिर चल जायेगी। जहां कायर चित्त है वहा सब बिगाड ही है। देखो ज्ञानी पुरुष इस जीवलोकको दु खकी अग्निमे जलता हुआ निरखकर शीघ्र ही विवेक करके ज्ञानसमुद्रके तट पर पहुँच जाते हैं। इस कथनमे यह शिक्षा दी है कि ज्ञान का शरण लेनेसे ही दु ख मिटेगे। दूसरा और कोई उपाय नही है। यहांके लोगोने न अच्छा कहा तो न कहने दो। अगर हम कीडा, मकौडाके भवमे होते तो इस मनुष्यके समूहमे हम कुछ आशाकी कल्पना ही न करते। हम न जाने कहांके कहां थे? एक भव ऐसा ही सोच लो। अपने आपका मार्ग प्रशस्त हो, ज्ञानप्रकाश मिले ऐसा उद्यम करिये। यह क्या है यहांकी विभूति? अरे! मरकर इससे हजारगुनी विभूति तुरन्त मिल सकती

है, धीरे-धीरेकी कमाईसे क्या फायदा है। कमाई ऐसी करो कि चाहे इस भवमे कुछ भी न मिले, पर मरकर एकदम इससे लाखो गुना मिल जाए, और मिलनेको यह वैभव चाहे जितने गुना मिल जाए, पर अन्तमे सबका सब छोड़ कर जाना पड़ता है। अरे ! अपने जीवनको सभालो, अपनी महत्ताका सच्चा आंकडा लगावो। इस मायाजालमे उपयोगको फंसानेमे ममतामे फसे रहनेसे कुछ शान्ति नही मिलेगी।

अनादिकालसलग्ना दुस्त्यजा कर्मकालिका।
सद्य प्रक्षीयते येन विधेयं तद्धि धीमताम् ॥४४॥

कर्मकालिमाके प्रक्षयके उपायका अनुरोध—अनादिकालसे लगी हुई कर्मरूपी कालिमा यह बड़ी कठिनतासे छुटाने योग्य है। तब भले ही रहो दुश्त्याज्य लेकिन इस कालिमाको शीघ्र नष्ट करनेका उपाय करना ही अपना कर्तव्य है। अन्य उपाय करना वृथा है। बाहरमे किन्ही पदार्थोका निग्रह विग्रह करके अपने क्लेश मिटानेके उपायमें ऐसी अनिष्ट पद्धति उत्पन्न हो जाती है कि एक दुखको दूर करनेका यत्न कर रहे थे कि इतनेमे दूसरा दुख और आ पडा। देखो वर्तमानमे जो कुछ भी दुख है, वह तो सहा नही जाता और भविष्यकालमे अनगिनते दुख और आ जाये तब क्या करोगे? अरे, उन अनिष्ट परिस्थितियोकी ओर दृष्टि देकर इस छोटेसे ही दुखको समतासे सहन कर जाइये, तब यह भी सम्भव है कि भविष्यके आने वाले दुख भी इस उपायसे टाले जा सकते है।

उदारताका परिणाम—ऐसी एक किंवदन्ती है कि एक मनुष्यको जीवनमे एक वर्ष तो दिया सुखका और बाकी साल दिये दुःखके, और पूछा गया कि भाई यह बतावो कि पहिले सुखके दिन चाहते हो या दुखके ? तो उसने कहा कि सुखका वर्ष मुझे पहिले दीजिये। वह बुद्धिमान था, तो सुखके वर्षमे मिले हुए सारे समागम धन, वैभव उसने परोपकारमें लगा दिये। जो होना होगा सो होगा, आखिर दुःख तो आना ही है, जितना दुख आना हो आवे। जो दुख आगे आयेगे उनको अभीसे अपने आपमे बनाकर देख ले, यह भी तो एक खेल है। कर्मोंके अनुसार आये हुए दुख भोगना है। जो भी दुख आते हैं उनको भोगते हुएमे ज्ञानदृष्टि बनाये रहनेका अभ्यास तो कर लो। तो उस पुरुषने एक वर्षमे दान, त्याग, परोपकार, उदारता सब कुछ कर लिया, फल यह हुआ कि वे अगले समयके भी दुख शान्त हो गए। यह कर्मकालिमा अनादिकालसे लगी हुई है यह जिस उपायसे शीघ्र नष्ट हो वैसा उपाय करना चाहिये।

निष्कलङ्क निराबाध सानन्दं स्वस्वभावजम्।
वदन्ति योगिनो मोक्षं जन्मसन्तते ॥४५॥

मोक्षमे निष्कलङ्कता व सहज विकास—इस जीवका हित मोक्षमे है अर्थात कर्मोंसे

विकारोसे छूट जानेमे हित है। यह मोक्ष सर्वप्रकारकी कालिमासे रहित निष्कलक है। चीज तो जो है सो है ही। बाहरी गदगी लग गई है उसे धोकर दूर कर दो। जो है सा वही निकल आयेगा। सो यह आत्मा अपने सत्त्वसे जो स्वरूप रख रहा है वह तो अपने कारणसे है ही, इस पर जो व्यर्थकी कालिमा चढ गई है, विकाराश आ गया है, उपाधिया लग गई है, एक अज्ञानरूपी जलसे, उन्हे धो धाकर साफ कर दो। तुम जो हो सो ही रह गये, यही मोक्ष है।

सुभग पुरुष—वे पुरुष कितने भाग्यशाली है, कितने भाग्यशाली थे जिनका आत्म-गृह सर्वसकटोसे दूर करने वाले जिनवचनोसे, जिनशास्त्रोकी शरणसे, सतोके सत्सगसे, जिन तत्त्व मर्मकी चर्चासे भरपूर और स्वच्छ सत्य शृगारसे सजा हुआ रहता था। उनके सौभाग्यकी तुलना किस विभूतिसे की जा सकती है? करोडपति, अरबपति भी कोई हो, आप सब लोग समझते भी है, कौनसी वहाँ वृद्धि है, शान्ति है, गुण है? जो लोग उन्हे बडा मानकर उनकी ओर झुकते है तो क्या उनके गुणोसे आकर्षित होकर उनकी ओर झुकते हैं? क्या सौभाग्य है, कौनसी उत्कृष्टता है? अरे वे स्वय अपने आप कितनी मलिनतामे है, कितने मायाचार और लोभसे ग्रस्त है? इस जगतमे बाहर कहाँ शरण ढूँढते हो? एक ज्ञानसलिल ही ऐसा समर्थ उपाय है जिसके द्वारा यह समस्त मल कलक, दोष धोया जा सकता है।

मोक्षकी निराबाधता—यह मोक्ष निष्कलक है, निराबाध है। बाधाये आती हैं परसग से। मोहमे मोही जीव अपनेको निर्बाध समझते है परसगसे—यही तो एक क्लेश है। जितनी परसगसे विमुक्ति होती जायेगी यह जीव जितना परसे निवृत्त होकर निजमे मग्न होता जायेगा उतना ही इसका चमत्कार बढता जायेगा। वह मोक्ष निराबाध है और सानन्द है। जहाँ किसी भी प्रकारका दुःख नही है, परम निराकुल दशा है। ये सासारिक सुख, सुखके हेतु नही है, विनश्वर है, तृष्णा उत्पन्न करने वाले है, आन्तरिक शान्ति करनेमे समर्थ नही हैं। शान्ति उत्पन्न करना तो दूर रहा ये तृष्णाकी आग सुलगाते हैं। कितनी बडी हैरानीकी बात है जहाँ सार नही, आधार नही, हित नही, शरण नही और क्या कहे? इस परके आलम्बनको निरखकर ज्ञानी जीव तो उपहास करते हैं। क्या किया जा रहा है यह?

परमात्मतत्त्वकी शुद्धि व सानन्दता—इस आत्मामे रचमात्र भी कुछ परपदार्थ ठहरने नही आता, यह सबसे न्याराका न्यारा ही बना रहता है। लेकिन यह मोही जीव इन दुःखी जीवोमे अपना नाम चाहनेके लिये, इन मलिन प्राणियोमे अपने आपको मुखिया

बना देनेके लिये, इस जन्म मरणके दु:खसे पीडित जनसमूहमे अपने आपमें उनका बाद-शाह जता देनेके लिये अपने आपमे क्षोभ उत्पन्न करके बेचैनीका अनुभव कर रहा है। यह मोक्ष अवस्था ही आनन्द सहित है। अन्यत्र कही आनन्द नही है सारा ठाठ व्यर्थ है, लगे रहो और मरते समय भी इस ठाठको चिपकाये रहो तो भी होगा क्या ? इसमे शिर मारनेसे, विभूतिमे उपयोग आसक्ति रखनेसे कुछ पूरा न पड़ेगा। इस मूढ़तासे तो इस ससारके दु खोकी अग्निसे सतप्त होता ही रहना होगा। भैया! अपने आपको ऐसा अकिञ्चन् निजस्वरूपमात्र अनुभव कर लो जहाँ तुम्हें देहका भी ख्याल न रहे। कहाँ है यह देह? कौनसी सारभूत चीज है यह देह? अपने आपका शरीर अपने आपको कितन दुर्गन्धित लग रहा होगा? यही तो सर्वत्र है। कौनसा पदार्थ इस जगतमे रम्य है?

अज्ञानियोंका व्यामोह—अहो! ये अज्ञानी सुभट भगवानसे भी आगे बढनेकी होड़ मचा रहे है। ये अज्ञानी सुभट भगवानके दर्शन भी करते होगे कि देखो मैं कितना चतुर निकला कि भगवानके दर्शन करके भी अपना काम निकाल लेनेमे मैं कुशल रहा। भग-वान तो जो जैसा है उसे वैसा ही जान पाते है, उनमे इतनी शूरता अब नही रही कि किसी भी पदार्थके बारेमे वे दसो और भी कल्पनाएँ कर ले। जैसा है तैसा ही झलकमे आता है, किन्तु यह अज्ञानी सुभट उस पदार्थके बारेमे ऐसी पचासो कल्पनाएं कर बैठेगा जिनका वहाँ कुछ लगाव भी नही है। यह काम भगवान भी नही कर पाते। पर इस उल्टी लीलाको कर लो, समर्थ तो हो ना, लेकिन इसमे कुछ सार नही है। इस अज्ञान और मोहकी विडम्बनामे कुछ शरण न मिलेगा। यह व्यर्थकी ममता अहकार कषाय केवल आपको बरबाद करनेके लिए ही उत्पन्न हुए हैं।

मोक्षकी स्वभावजता—सुख तो मोक्षमे है। यह सुख अपने स्वभावसे उत्पन्न है, अतएव अविनाशी है। जो दूसरेका उपजाया हुआ सुख हो वह तो नष्ट भी हो सकता है, किन्तु जो स्वभावसे उत्पन्न हो उसका विनाश नही है। यह मोक्ष जन्म सततिका उल्टा है, विपक्षी है, योगी पुरुष ज्ञानी सत पुरुष ऐसा मोक्षका स्वरूप जानते हैं और उसका ही यत्न करते है।

जीवितव्ये सुनि सारे नृजन्मन्यतिदुर्लभे।
प्रमादपरिहारेण विज्ञेय स्वहित नृणाम् ॥४६॥

प्रमादपरिहारका कर्तव्य—यह मनुष्यजन्म अत्यन्त दुर्लभ है और यह जीवन नि सार है। ऐसी अवस्थामें प्रमादका परित्याग करके मनुष्योको अपना हित करना चाहिए।

एक तो यह मनुष्यजन्म दुर्लभ है तो कोई यो सोचे कि मनुष्यजन दुर्लभ है, वहुत दिनोमे मिल पाया है तव यहा खूब सुख लूटना चाहिये तो साथ ही यह भी वताया है कि यह जीवन नि·सार है। यदि इस समागमसे उपेक्षा करके स्वहितमे लगा जाय तो ऐसी बात सुगमतासे वन सकना मनुष्यजन्ममे होती है। अत इस मनुष्य जीवनमे आत्महितका उपाय करना यह एक बुद्धिमानीका काम है।

विचारचतुरैर्धीरैत्यक्षसुखलालसैः ।
अत्र प्रमादमुत्सृज्य विधेय परमादरः ॥४७॥

अन्तस्तत्त्वमे आदरका अनुरोध—जो धीर और विचारशील पुरुष हैं तथा अतीन्द्रिय सुखकी लालसा रखते हैं उन्हे प्रमाद छोडकर इस मोक्षका ही आदर करना चाहिये। सुख दो प्रकारके कहे गये है, एक इन्द्रियजन्य सुख और एक अतीन्द्रियजन्य सुख। अतीन्द्रिय विशेषणके साथ सुख न कहकर आनन्द कहना चाहिये। इन्द्रियसुखमे क्या दम है, केवल एक भूलभुलैया है। कुछ समयको काल्पनिक कोई सुख पा लिया उस सुखमे क्या स्थिरता है, उस सुखके साधन पर क्या अधिकार है? इन्द्रियजन्य सुखमे आत्माका कौनसा लाभ है? उस सुखमे आसक्त होकर जो कर्मबन्धन हो जाता है वह सब कही भाग तो न जायेगा, उसका फल ससारमे जन्म मरण करते रहना है, रुलते रहना है। विवेकी पुरुष मोक्षसुखकी ही अभिलाषा रखते हैं, इन इन्द्रियज सुखोकी वे अभिलाषा नही करते। ज्ञानार्णव ग्रन्थकी भूमिकामे ऐसी शिक्षा दी है कि जिससे इस ग्रन्थके वक्तव्यमे श्रोतावोकी रुचि जगे और उस प्रतिपादनसे अपना लाभ ले लेवें।

न हि कालकलैकापि विवेकविकलाशयैः ।
अहो प्रज्ञाधनैर्नेया नृजन्मन्यतिदुर्लभे ॥४८॥

समयके सदुपयोगका सन्देश—हे भव्य जीव, इस दुर्लभ मनुष्यजन्ममे विवेकसे शून्य रहकर अपने जीवनको व्यर्थ न गमावो, आत्माका विकास होना दुर्लभ चीज है। मनुष्य जन्मकी कोई खास बात नही है। मनुष्यजन्मकी दुर्लभता इस कारण दुर्लभता कही जाती है कि इस भवमे आत्मविकासका अवसर मिलता है। एक आत्मविकासका लक्ष्य त्याग दिया जाय तो फिर और बात क्या रही, तव आत्मविकास ही एक दुर्लभ बात हुई। वर्तमानमे भी अन्य जीवोको देखकर नाप तौल भी कर लो। अन्य जीवोकी अपेक्षा मनुष्य की बुद्धिका कितना अतिशय है, मनुष्य कितनी बाते सोच लेता है, कितनी ही बातें हम ज्ञानसे, कुछ नये नये मर्मोसे जान लेते है, इन पशु पक्षियोमे तो यह बात नही देखी जाती। आत्मविकासका अधिकाधिक अवसर है तो इस मनुष्य भवमे है। ज्ञान बढ़ने लगे,

अनेक ऋद्धियाँ उत्पन्न हो जाये, समस्त कर्मकलकोको विनष्ट करके एक इस आनन्दको प्राप्त करले तो यह सारभूत कर्तव्य है।

दुःखजाल—जब तक ये जन्म-मरण लग रहे हैं तब तक इस जीवको चैन नही है, एक दु.ख मिट नही पाया कि दूसरा दुःख आ जाता है। तब यहाँ के समागमोंमे कुछ सुधार निग्रह-विग्रह विचारना, यह तो बन्द करना चाहिये और अपने आपमे सम्यग्ज्ञानके निवास करानेकी बात सोचना चाहिये। कोई भी स्थिति हो सर्वस्थितियोमे सुख मिलता है ज्ञानसे। जब कभी कोई पुरुष भोग भी भोगता हो, इन्द्रियके विषयोको भोगता हो, वहाँ पर भी जो सुख मिलता है वह एक कल्पनाका सुख है। बाह्य पदार्थोंका क्या सुख है? हम ज्ञानको ही करते है ज्ञानको ही भोगते है, ज्ञानका ही आनन्द लेते है। यह बात सब स्थानोमे सही है, किन्तु इसपर श्रद्धा नही है, सो ऐसा करनेकी श्रद्धा न होने के कारण सब बातें उल्टी उल्टी पडती जाती है। इसी बात पर हम कुछ डटे तो सही। एक यही बात अपने जीवनमे मान ले कि मैं अपने ज्ञानको करता हूँ, अपने ज्ञानको ही भोगता हूँ, चाहे किस ही रूप भोगूँ? किसी बाह्यपदार्थका न मैं कर्ता हूँ और न भोक्ता हूँ, किसी बाह्यपदार्थसे कुछ भी मेरा सम्बन्ध नही है ऐसी दृढतासे रह जाय तो शान्तिका मार्ग स्पष्ट बन गया।

अन्तर्ज्ञानका उपयोग—श्रद्धामे कायरता करना, यह तो अति अयोग्य बात है। जो जैसा है वैसा ज्ञानमे आ जाय, इसमे कोई कष्ट नही है बल्कि यह तो आत्माकी प्रगति होना है। जो जैसा है तैसा ही ज्ञानमे आये, और ऐसा होना स्वाभाविक बात है लेकिन एक मोह पिशाच ऐसा अन्तर्निविष्ट कुभाव है जिसके कारण अपने ही घरमे बडा अधेरा छाया है, माना कि कर्मोंका आक्रमण है, बडा क्लेश है, सब कुछ है, पर सब कुछ होते हुए भी हम अपने भीतर ही भीतर अपने आप मे अपने आपको ढूढ ले, उसका यथार्थ ज्ञान कर ले तो कुछ आपत्ति है क्या ऐसा काम करनेमे? अरे एक निजका काम कर लेनेमे क्या कष्ट है? कौनसी आधीनता है? सारा क्लेश मोह रागद्वेषकाहै। सब घटनाएं कह डालो, सुन लो, सर्वत्र यही बात है। केवल क्लेश है तो मोह राग और द्वेषका है। जिस विधिसे ये विभाव मिटे उस विधिमे ही अपनी भलाई है।

गृहस्थीकी सफलता—गृहस्थी मिली है तो इसलिये कि मिलजुलकर खुद धर्ममे आगे बढे और परिवारके लोग भी धर्ममे आगे बढें। ससारके सुख, साधन ये तो सब होते ही है, उदयानुकूल आते ही हैं। प्रधान दृष्टि, प्रधान कर्तव्य तो इतना होना योग्य है परिवार मे कि चलो हम भी धर्ममे बढ़े और ये स्त्री पुत्रादिक ये भी धर्मका विकास पाये, ऐसा

यदि कार्य होता है घरमे तो आपका वह परिवार आदर्श है, आप घरमे भी रहें किन्तु ज्ञानमे लगें, शुद्ध ज्ञानप्रकाश जगे, इससे बढकर और गृहस्थ सीमा मे वास्तविक सुख कुछ नही कहा जा सकता। बाकी बातें तो होती ही हैं। धर्ममे न लगे तो भी हो रही हैं, बल्कि धर्ममे लगने वालेके ये सुख और विशेषतासे, अतिशयसे हुआ करते हैं। धर्म हमेशा आनन्द ही देता है। धर्म तो कष्ट देता ही नही है। पर कदाचित् धर्मके बजाय कोई पाप कार्य करें और उसमे ही धर्मको मुद्रा बनायें तो उसमे कष्ट है और इस ही नीतिसे धर्मका अपवाद है। यह पाप इतना चालाक है कि करता यह तो सब कुछ अनर्थ है किन्तु धर्मका नाम लपेट देता है और धर्मको अपमानित कर देता है। लोगोकी श्रद्धा धर्मसे हटती है। अरे धर्म करने वाले तो ऐसा ऐसा किया करते हैं।

पापकी चालाकी—एक किसानके तीन बैल थे। एक बैलको रोज वह अपने घरके आगनमें बाध जाया करता था और दो बैल खेती करनेके लिये ले जाया करता था। आगनके पास एक दीवालमे एक अल्मारी थी, उसमे वह अपना खाना रखा करता था। रोज एक बन्दर आये अल्मारी खोलकर दाल रोटी खाये और जो दाल वगैरह बच जाय उसे बैलके मुखपर पोत दें। बैलके मुखपर रोज दाल पुती हुई किसान देखे तो समझ जाय कि हमारा खाना इस बैलने खा डाला है। यो रोज-रोज उस बैलको वह पीटता था। पडौसियोने समझाया कि इस बैलको तुम क्यो पीटते हो? अरे यह कैसे अल्मारी खोल कर तुम्हारा खाना खा डालेगा और फिर अल्मारी बद कर देगा। तुम तो छुपकर देखो कि ऐसा कौन करता है? उसने छुपकर देखा कि एक बन्दर आया और उसने ये सारी क्रियाये की। उसने उस बन्दरको पकडकर पीटा, या कुछ भी किया समझलो, पर प्रयोजन यह है कि जैसे क्रियायें तो सारी वह चालाक बन्दर करता था और नाम लगता था बैलका, ऐसे ही सारे उपद्रव तो पाप किया करता है पर यह पाप धर्मकी ओटमे धर्मका नाम लगाकर अपवाद किया करता है। तो इससे कही धर्म अधर्म तो न बन जायेगा? जितने अपवाद हैं, जितने क्लेश हैं वे सब पापके हैं, धर्मके नही हैं। धर्म तो सदा सुख शान्तिका ही बरषाने वाला है।

धर्मका स्वरूप—धर्मका लक्षण समतभद्र स्वामीने कहा है कि जो ससारके दु खोसे छुटाकर जीवोको सुखमे पहुँचा देता है उसे धर्म कहते हैं। यह फलित अर्थ हुआ। जो धर्म करेगा वह दु खोसे छूटकर सुखमे पहुँच जायेगा। शब्दार्थ क्या है? "पदार्थः आत्मनि य स्वभाव धत्ते स धर्म।" पदार्थ अपने आपमे जो स्वभावको धारण करता है उस स्वभावका नाम है धर्म। अपने आपमे धर्मकी खोज तो कीजिये, अर्थात अपने स्वभावकी

खोज कीजिये। पदार्थका स्वभाव क्या है ? पदार्थका स्वभाव पदार्थमे निरन्तर रहता है। उसका स्वभाव क्या क्रोध है ? क्या मान, माया, लोभ इत्यादि है ? ये कषायें बदल बदलकर चलती है, इनमे कोई भी क्रिया निरन्तर नही रह पाती। तब जानो कि कषाय करना पदार्थका स्वभाव नही है किन्तु ज्ञान सदैव होता रहता है। क्रोध कर रहा हो वहाँ भी ज्ञान है, मान, कपट अथवा लोभ वगैरह कर रहा हो वहा भी ज्ञान है। ज्ञान कभी साथ नही छोडता। ज्ञान स्वभाव है, ज्ञान धर्म है।

क्रोधके अनर्थ व आत्मधर्म—कषाये धर्म नही है, प्रत्युत कषायें आकुलताको ही उत्पन्न करती हैं। क्रोध होने पर कोई मनुष्य चैनमे नही रहता है क्या ? क्रोधी तो अति दुर्बल होता है, क्रोधमे आकर यदि यह कुछ किसीको आज्ञा देता है डाट डपट दिखाता है तो उसकी आवाज साफ नही निकलती। घरमे ही देख लो जब किसी बच्चेसे आप बड़े जोरसे बोलेंगे, डाटेंगे तो जो भी आप बोलेंगे वह बोल फसफस निकलेगा। तो क्रोध अन्तरङ्गमे जिसका उमडा उसकी सारी मशीन खराब हो गई। अब बोलेगा भी तो साफ आवाज न आयेगी। वह बच्चा समझ ही न पायेगा कि मुझे क्या कह रहे है ? बच्चा आज्ञा मानेगा नही, तो यह और भी क्रोध करेगा। क्रोधमे किसने चैन पाया है ? क्रोधका ही तो परिणाम है कि द्वीपायन मुनिने अपना भी विनाश किया और नगरीका भी विनाश किया। आप घी का डबला हाथमे लिये हो और आ जाय क्रोध तो आपको नुक्सानकी बात चित्तमे न आयेगी। आप उस डबलेको पटक देंगे। अरे नुक्सान किसका हुआ ? खुदका ही तो हुआ ? क्रोधी आदमी अपना नुक्सान भी नही सोचता। क्रोधसे चैन कहाँ है ? चैन मिलेगी धर्ममे, ज्ञानदृष्टिमे।

मानका अनर्थ—अब मानकी बात देखो। घमंडमे आकर कितने अनर्थ हो जाते है, घमड करने वाला अपने आपको स्वाहा कर डालता है और दूसरोको भी हानि पहुँचानेमे कारण बनता है। उस मानीको कोई जवरदस्त मानी मिल जाय तो फिर वह सारी कसर निकाल देता है। आपको एक हठी स्त्रीकी कथा सुनायी थी। अब चलो उसकी दूसरी भी बात सुनो। उसके मनमे आया कि पतिके मूँछ मुडाये सो पेट दर्दका बहाना किया और अपने पतिसे कह दिया कि जो हमसे प्रेम करता है वह यदि अपनी मूँछ मुडाये तो हम ठीक होगी नही तो मर जायेगी। पहिले जमानेमे मूछ मुडाना बुरा समझा जाता था। पतिने मूँछ मुडा ली। अब यह स्त्री प्रात. चक्की पीसते समय यह गाना गाय "अपनी टेक रखाई, पतिकी मूँछ मुडाई।" पति यह सुनकर बड़ा पछताया। अब उसको छकानेके लिये स्वसुरालको खबर कर दी कि तुम्हारी लडकी बहुत बीमार है जो भी

इससे प्यार करते हों वे सभी अपने मूंछ तथा शिर घुटाकर सवेरा होते ही होते दर्शन दे तो बचेगी, नही मर जायेगी, ऐसा एक देवने स्वप्नमे बताया है। स्वसुरालके कुटुम्बने ऐसा ही किया। जिस समय चकिया पीसते हुए वह यह गा रही थी कि 'अपनी टेक रखाई। पतिकी मूंछ मुडाई।' उसी समय स्वसुरालके सभी लोग मा, बाप, भाई, बहिन, बुवा सभी अपने-अपने मूछ तथा शिर वगैरह मुड़ाकर पहुँच गये। स्त्री गाती है 'अपनी टेक रखाई, पतिकी मूंछ मुडाई।' पति कहता है—"पीछे देख लुगाई। मुडनकी पल्टन आई॥" तो मानीका जब किसी जबरदस्तसे मुकाबला पड़ता है तब उसका होश ठिकाने आता है।

लोभका दाह—लोभ तो महान दाह उत्पन्न करता है, लोभी पुरुष लोभके कारण भीतर ही भीतर छल कपटकी बात सोच-सोचकर दुःखी होता जाता है। लोभमे जल जल कर अपनेको माह सक्लिष्ट बना देना यह भली बात नही है। यदि कषायें होती हैं तो समझो कि ये आफत है, किसी तरह इनसे निपट जायें और अपने आनन्दका स्रोतभूत जो निज आत्मतत्त्व है उसकी दृष्टि बने, ऐसा भाव और ऐसा यत्न अपना बनाये रहना चाहिये। यहाँ धर्मधारण करनेके लिये प्रेरणा की है। बुद्धिमान जनोको इन विषय-कषायोकी अभिलाषाको त्यागकर एक धर्ममय ही अपना उपयोग बनाये रहनेका यत्न करना चाहिये।

धर्मपालक विचार—देखो धर्मपालन मूलसे इन विचारोसे हुआ करता है—यह मैं आत्मा सर्वविभाव देह रागद्वेषादिक भाव इन सबसे जुदा केवल ज्ञानप्रकाशमात्र हूँ। मेरे ही सत्त्वके कारण मेरा जो स्वरूप रह सकता है उस स्वरूपमात्र मैं हूँ, ऐसी अपने स्वरूप की भावना बने तो वहाँ धर्मपालन होता है। बाहरी जितनी भी व्यवहार धर्मकी क्रियायें की जाती है उन सबका मूलमे एक यही उद्देश्य रहता है। ज्ञानी सतपुरुषोकी सब झुकाव की कलाकी बात है। स्वयकी ओर मुझे वहाँ आनन्द बरसता है, परकी ओर उपयोग जायेगा तो उससे दाह ही उत्पन्न हुआ करती है। जरासी दृष्टिके फेरमे कितना अन्तर हो जाता है ? हम सत्सग करके, ज्ञानार्जन करके गुरुसेवा, प्रभु भक्ति अनेकानेक उपायोसे हम अपनेको ऐसा बनाये कि भीतर हम अपने एकत्वकी ओर झुके रहें, बाह्यपदार्थों मे हमारी तृष्णा न जगे, इस भावमय यत्नमे धर्मका पालन है और इस धर्मपालनका नियम से फल मिलता है।

भृश दुःखज्वालानिचयनिचित जन्म गहनम्।
यदक्षाधीन स्यात्सुखमिह तदन्तेतिविरसम्।

अनित्या कामार्थाः क्षणरुचिचल जीवितमिदम्।
विमृश्योच्चै स्वार्थे क इह सुकृति मुह्यति जनः ॥४६॥

जन्मवन—यह संसार अर्थात यह जन्म परम्परा दु खकी ज्वालाके समूहसे व्याप्त गहनबनकी तरह है। जैसे भयंकर वन हो और उसमें लगी हो चारो तरफसे आग, तो उसमे फसे हुए मनुष्योका क्या हाल होगा? इसी तरह यह जन्म परम्पराका जगल यह ससार वन जिसमे सर्व ओर दु खोकी ज्वालायें भरी हुई है ऐसा यह संसार वन कितना गहन वन है, भयंकर वन है? किस ओर आप जायें कि जहाँ विश्राम मिल सके। ससार है कोई क्या ऐसा स्थान, कौनसा समागम यहाँ ऐसा है जिस समागमको पाकर हम सुखी और सतुष्ट रह सकें। सुखके साधन रहते हैं तो यह चित्त और उद्दण्ड होता है और किस-किसका विकल्प सोचते है, कैसी-कैसी आपत्तियोको शिर मोल लेते है। भयकर स्थिति है।

ससारमें विश्रामधामका अभाव—ससारमे कोई भी परिस्थिति ऐसी नही है जहाँ कि इस जीवको विश्राम मिल सके। यही एक मनुष्य जीवनका उदाहरण ले लो। जब बहुत छोटे थे तो और तरहकी तृष्णा थी, खेल खेलनेको न मिले तो रोने लगे, मन चाहा कुछ न मिले तो रोने लगे। प्रयोजन कुछ नही है, पर चवन्नी दुवन्नी न मिले तो रोने लगे, लावो पैसा। अच्छा तो तुम पैसा ही ले लो, खावो मत, करो अपनी दुकान। छोटे-छोटे बच्चोके भी पैसोकी तृष्णा होती है। छोटे बच्चे जिन्हे बोलना भी नही आता वे पहिचानते हैं कि यह अठन्नी है और यह चवन्नी है और यह दुवन्नी है। उन बच्चोको छोटे पैसे दिखावो तो वे फेंक देते है। लो इस तरहकी तृष्णा हुई, जरा और बड़े हुए तो और तरहके विकल्प, पैसा कमानेका दु ख। फिर विवाह चाहा तो विवाह भी हो गया। विवाह होनेके कुछ ही महीने बाद बड़े आपसी झगड़े खडे हो जाते है और वे झगड़े भी बडे विचित्र, वे झगड़े छोड़े भी नही जाते, प्रेमसे रहा भी नही जाता। बच्चे हो गये तो और प्रकारके दु ख। कोई बडा ही समझदार है, ज्ञानी है तो समूहमे बैठकर और प्रकार के विकल्प करता है। इन विकल्प ज्वालावोकी कहाँ तक कहानी कही जाय। साधु भी हो जाये और वहाँ भी ये विकल्प सम्भव रह जाते है, मैं साधु हूँ, मुझे यो रहना चाहिये, लोगोसे मुझे यो व्यवहार करना चाहिये, इस तरहके विकल्पोने साधुवोका अत क्षेत्र भी मलिन कर दिया। कहाँ तक विकल्पोकी कहानी कही जाय? कौनसी परिस्थिति ऐसी है जहाँ यह ससारी जीव सुखी रह सके? तो यह जन्मवन बड़ा गहन है, दु.खकी ज्वालावो से भरा हुआ है।

इन्द्रिय सुखकी नीरसता—यह इन्द्रियज सुख एक तो अत्यन्त विरस है, दूसरे दु ख का ही कारण है। खूब चाट चटपटी मिठाई खा लेवे तो २–३ घटे बाद बुरी डकारे आये उसका दु ख भोगे। कोईसा भी भोग हो प्रत्येक अन्तमे नीरस हो ही जाता है, कोई सा भी भोग ले लो। कर्णेन्द्रियका भोग ले लो, सगीत सुन रहे हैं, खूब गायन हुआ, दो तीन बज गये, अन्तमे वह विरस लगने लगता है। बहुत बढिया भी सगीत हो, खूब सुने मन भर, लेकिन अन्तमे जब विरस लगने लगता तो फिर उठना पडता है। यह तो बहाने की बात है कि बहुत देर हो गई इसलिये अब बद करे। अरे देर तो कितनी ही हो जाये, यदि आनन्द आता है तो वह बैठा रहेगा, वह भी विरस है। कोई रमणीक वस्तु हो उसे खूब देखते रहो टकटकी लगाये तो अन्तमे वहाँ भी थकान हो जायेगी। वह भी विरस लगने लगेगी। इत्र सूघनेसे सुख मिलता है तो रुईको खूब गीली भिगोकर नाकमै ठूसे रहो, पर वहाँ भी मन ऊब जायेगा। भोजनमे भी यही हालत है, स्पर्शमे भी यही हाल है। तो यह इन्द्रियसुख अन्तमे नीरस हो जाता है।

इन्द्रिय सुखमे क्षोभव्याप्तता—खैर कल्पनासे जितने समय तक तुम उसमे रस मानते हो उतने समय भी तो बिना क्षोभके शान्तिसे भोगा तो नही जाता। एक पक्का नियम है—इन्द्रिय द्वारा जो भी भोगा जायेगा वह शान्तिसे भोगा ही नही जाता। क्षोभ होगा, धैर्यसे न भोगेगा धैर्यका भग करके ही तो भोग भोगना होता है तो ये इन्द्रियसुख दु खके कारण है, और जब तक भी इन्हे भोग रहे है तब तक दु खसे मिले हुये है। जहाँ बच्चो का सुख माना जा रहा है वहाँ उससे अधिक कई प्रकारके दु ख भी भोगे जा रहे है उन बच्चोके प्रसगमे। जहाँ वैभवसे सुख माना जा रहा है वहाँ उससे कई गुणा उस वैभवके प्रसगमे दुख भी भोगे जा रहे है। ये ससारके सुख दु खोसे व्याप्त हैं।

वैभवकी चंचलता—ये भोग, ये धन बिजलीकी तरह चचल हैं। जैसे बिजली क्षण भरको चमकी कि समाप्त हुई ऐसे ही यह जीवन है। जैसे पहाडसे गिरने वाली नदीका वेग फिरसे पहाडके ऊपर नही जा सकता, जो पानी पहाडके नीचेसे बह गया वह पानी पहाड पर उल्टा चल दे, ऐसा तो नही होता। गुजरा वह तो गुजरा ही गुजरा। इसी प्रकार जो जीवन गुजरा वह जीवन गुजरा ही गुजरा यह जीवन भी बिजलीके समान चचल है। इन सब बातोका विचार करने वाले जो सत्पुरुष होते है वे मोहको प्राप्त नही होते। समस्त वैभवोको दु खरूप साररहित जानकर बुद्धिमानीसे अपने हितकी साधना करनी चाहिये। हितका साधन है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। यह पद्धति बनी रहे इस प्रकारके ध्यानका अभ्यास रहना चाहिये।

सङ्गैः किं न विषाद्यते वपुरिदं किं छिद्यते नामयैः,
मृत्युः किं न विजृम्भते प्रतिदिनं द्रुह्यन्ति किं नापदः।
श्वभ्राः किं न भयानकाः स्वप्नवद् भोगा न किं वञ्चकाः,
येन स्वार्थमपास्य किन्नरपुरप्रख्ये भवे स्पृहा ॥५०॥

विषादका कारण—इन सगोसे क्या यह जीवन विषादसे भरा हुआ नही बनता ? अर्थात यह परिग्रह धन धान्य स्त्री कुटुम्ब आदिका मिलाप क्या यह तुझे विषादरूप नही करता ? किसी भी परिजीवसे अपना परिचय बनाना यह ही एक आपत्तिका मूल है। जीवका परिचय तभी बन पाता है जब जीव जातिसे अलग हटकर व्यक्तिरूपमे इसको न्यारा करके निरखा जाय, यही है मोहमय काल्पनिक परिचय। जहाँ यहाँके लोगोसे परिचय हुआ वहीसे दुःख प्रारम्भ होने लगा। यह सग क्या तुझे विषादको प्राप्त न करायेगा ? और जीवन है हो क्या ? सग करना और दुःख भोगना, इन दोका जोड है इसीके मायने यह जीवन है। समागम बनाना और दुःख भोगना। जैसे सवालमे बोलते है, दो और दो चार, ऐसे ही समागम बनाना और दुःख भोगना मिलाकर क्या हुआ ? जीवन। इस जीवनमे और क्या चीज मिलेगी ? जो साधारणतया पुरुषोका जीवन है उसकी बात कही जा रही है। यह सग मेलमिलापमे क्या तुझे विषाद रूप नही करता है ?

शरीरकी रोगाक्रान्तता—इस शरीरको देखो, क्या यह शरीर रोगोके द्वारा छिन्न-भिन्न होकर तुझे पीडित नही करता है ? शरीरमे क्या है ? ये हाथ पैर सब बड़ी सफाईके लग रहे हैं और जहाँ कही भी रक्त रुक गया और फुसी हो गई वहाँ ही यह शरीर विड्रूप लगने लगता है। क्या यह शरीर रोगसे छिन्न-भिन्न नही हो जाता ? यह ससारकी दशाका वर्णन चल रहा है, ऐसा ध्यान दिलानेके लिये ऐसा इन्द्रजालकी तरह अरम्य अहितरूप इस ससारमे तेरी क्यो स्पृहा होती है ? यह मृत्यु क्या तुझे ग्रसनेके लिये मुख नही उठा रही है ? अर्थात सब मृत्युके मुखमे पड गये हैं। पता नही किस क्षण कब मृत्यु हो जाये ? जैसे स्वयभ्रमण समुद्रमे बडा मच्छ मुह बाये रहता है भीतर मछलियाँ लोटती रहती है, जिस क्षण उस बड़े मच्छने मुह दबाया कि १०–५ हजार मछलिया एक बार मुह दबनेसे पेटमे चली जाती है। इतना बड़ा मच्छ होता है। उसके मुहमे हजारो मछलिया कूदती खेलती रहती है पर पता नही कि किस क्षण वे अपना जीवन खो दे, ऐसे ही हम आप सब खुश होते है, विकल्प करते हैं बहुत-बहुत चिन्तातुर रहा करते हैं। अरे पता तो है ही नही कि किस क्षण इसकी मृत्यु हो जाय ? तो यह मृत्यु सदा जीवनको भखनेके लिये मुह फाड़े हुये है।

आपत्तियोंका निर्माण—अहो ! देखो अन्य भी अनेक प्रकारकी आपत्तिया विपदाएं आ रही हैं और किसी प्रकारका उपद्रव आ भी नही रहा है तो मनसे कल्पनाएं करके विपदाएं बना लेते हैं। जैसा एक छोटा बच्चा माके पास बैठा है, मां बातोमे लगी है, बच्चेकी इच्छा हो गई कि घर चले अरे घर जाकर क्या खा लेगा ? माके पास बैठा है, सारे आराम हैं, गोदमे बैठ जा, सब आपत्तियोसे दूर है। तुझे और क्या चाहिये, पर हो गया उस बच्चेको विकल्प तो जब तक मा वहांसे उठ न देगी तब तक वह बच्चा बेचैन रहता है, रोने लगता है। अरे आपत्तिया उसने बनायी या उसपर आयी ? उसने ही विकल्प-बनाकर आपत्तिया बनाली। तो ऐसे ही ये सब अज्ञानी जीव किसी भी प्रसगमे अट्टसट्ट कुछ भी विचार करके अपने आपमे आपत्तिया बना लेते है। इन आपत्तियोने क्या तुझ पर द्रोह नही किया ?

भोगोकी स्वप्नसमता—इस जीवकी दशा बता रहे हैं कि कैसी दशा है ? यह ससार कैसा है, इन समागमोका प्रेम कैसा है ? क्या तुझे यह विदित नही है कि यह नरक बड़ा भयानक होता है ? क्या तुझे यह विदित नही है कि ये भोग स्वप्नके समान तुझे धोखा देने वाले है ? किसीको स्वप्न आ गया कि बड़ा आनन्द भोग रहे हैं, राज्य मिल गया है। शासन कर रहे हैं, मनमाना भोग भोग रहे हैं। किसीने धक्का लगा दिया, नीद खुल गयी, लो सारा वैभव खत्म हो गया। एक भाईको आ गई नीद। उस नीदमे स्वप्न देखा कि मुझे किसी राजाने ५० घोडे इनाममे दिये हैं। बढियासे बढिया घोड़े हैं। उन घोडो के खरीददार आये, खरीददार लोग कहते है कि इन घोडोकी कीमत बतावो ? सस्ते जमानेकी बात है। वह बोला घोडोकी कीमत सवा-सवा सौ रुपया है। ५०-५० रुपयेमे दोगे ? नही। अच्छा ११० रुपयेमे देगे। ६०–६० रुपयेमे दोगे ? अच्छा सौ-सौ रुपयेमे ले जावो। ७०–७० रुपयेमे दोगे ? ९० रुपयेसे कममे न देंगे। अच्छा ८०–८० रु० मे दोगे ? अब यहाँ दोनोमें एक गुच्चसी हो गयी। इतनेमे वह पुरुष जग गया। जगने पर देखा कि यहाँ तो कुछ भी नही है, न घोड़े हैं न ग्राहक है, तो फिर वह आँखें मीच लेता है व कहता है अच्छा ८०-८० रुपयेमे ही ले जावो। था वहाँ कुछ नही, पर उसने सोचा कि शायद आँखे बन्द कर लेनेसे वे घोड़े आ जायेंगे ? तो जैसे यह सब स्वप्नका दृश्य है, ऐसे ही ये सब भोगोके समागम स्वप्नकी तरह हैं।

अतीत भोग—यो भोग स्वप्नवत् है इस बातको समझनेके लिये उन अतीत बातो पर दृष्टि दो। जिनके साथ आप हिल मिलकर रहे, प्यारसे रहे, सुखपूर्वक रहे और उनका हो गया वियोग तो वियोगके बाद फिर लगने लगता है कि अरे सब स्वप्नका ठाठ था।

यह सर्वसाधारणको उस समय विदित होता है कि वह सारा स्वप्न था जब उसका वियोग हो जाय, किन्तु सयोगके समयमे यह ज्ञान करले कोई कि यह सब स्वप्न जैसा ठाठ है तो फिर उसके शका नही रहती। हे मुमुक्षु! हे आत्मन्! क्या ये भोग तुझे स्वप्नकी तरह धोखा देने वाले नही मालूम पड़ रहे है? खूब सोच लो।

रागमे विडम्बना—रानी रक्ताकी एक कथा है। राजा देवरति अपनी रक्ता रानीसे बडा प्रेम करता था। उस रानीके प्रेममे राजा देवरति इतना आसक्त हुआ कि राज्यका सारा कारबार ढीला पड़ गया, प्रजामे अशान्ति फैल गई। यह हालत देखकर सभी मत्री राजाके पास पहुँचे और बोले राजन्! आप तो अपनी रानीमे आसक्त है, राज्यमे अशान्ति फैल गई है, आप या तो इस राज्यको सभालिये या इस रानीको लेकर नगरसे बाहर चले जाइये, हम मत्रीगण राज्य सभाल लेगे। राजा रानीको लेकर नगरसे बाहर चला गया। किसी गावके किनारे डेरा डाल दिया। राजा गावमे कुछ खरीदने चला गया। राजा तो गावमे खानेकी चीजे लाने चला गया और गावके किनारे एक खेत पर एक कूबडा व्यक्ति चरस हाक रहा था। उसने कोई गीत गाया तो उस गीतको रानीने सुन लिया। उस कूबडेके पास रानी पहुँची और बोली कि अब तो मैं आपके सग रहना चाहती हूँ। आजसे तुम हमारे हो गये। कूबडा बोला कि ऐसा न करो, नही तो राजा हमे भी मार डालेगा और तुम्हे भी। रानीने कहा कि उस बातका उपाय तो हम बना लेंगी। बस रक्ता उदास होकर उस झौपडीमे चली गई जहाँ पर ठहरी थी। राजा आया तो उसने रानीको उदास देखा। राजा बोला—तुम क्यो उदास हो? तुम्हारे पीछे तो हमने सारा राज्य छोडा, तुम अपनी उदासीका कारण बतावो? रानी बोली—सुनो आज आपका जन्मदिवस है। यदि महलोमे होती तो आपका विशेष स्वागत करती, यहाँ किस तरहसे आपका स्वागत करे? राजाने कहा ऐ रानी तू जैसा चाहे हमारा स्वागत कर ले। रानीने कहा देखो फूल ला दो, मैं माला बनाऊगी। माला बनाकर बोली, जो वह पहाड है, उस पहाडकी चोटी पर चलो, वहाँ पर मैं आपका स्वागत करूँगी। राजाने फूल ला दिये और ५०-५० हाथकी लम्बी कई मालाये रानीने बनाईं। राजाको उस पहाडकी चोटी पर बिठा दिया और रानीने उन मालावोसे राजाको कस दिया। जब राजा खूब बंध गया तो एक तेजीका धक्का मारकर राजाको ढकेल दिया। राजा लुढकते लुढकते नदीमे जा गिरा।

विधि विधान—राजा देवरति तो नदीमे बहकर किसी पेडसे टकरा कर किसी किनारे लग गया, नदीसे निकल आया और पासकी नगरीमे चला गया। उन दिनो उस

राज्यका राजा मर गया था, सो मन्त्रियोने हाथीकी सूढमे एक फूलमाला डालकर छोड दिया था और यह प्रतिज्ञा की कि यह हाथी जिस मनुष्यके गलेमे यह जयमाल डाल देगा उसीको हम अपना राजा बनायेंगे। हाथीने वह जयमाल उसी राजाके गलेमे डाल दी, जो नदीमे बहकर गया था। वह तो वहाँ राजा बन गया और इधर रानी उस कुबडेके सगमे हो गई। कुबडेको टोकने पर बिठाकर वह जगह-जगह घूमती थी क्योकि वह चल नही सकता था वह कुबडा गाये और वह रक्ता रानी नाचे, इस तरहसे जो कुछ पैसे मिल जाये उन्हीसे दोनो अपना गुजारा करते थे। किसी तरह ये दोनो उस राज्यमे भी नाचते गाते पहुँचे जहाँ वही राजा देवरति राज्य करता था। राजाको पता लगा कि कोई नटनी जो कि पतिभक्त है, अपने पतिको सदा टोकनेमे बैठाकर शिर पर रखकर चलती है, पति तो गाता है और वह नाचती है, यह बात सुनकर राजाने अपने दरबारसे उन्हे नाचने और गानेके लिये बुलाया। वहाँ उस राजाने जब अपनी ही रानीको उस हालतमे देखा तो उसे वैराग्य हो गया। सोचा ओह! यह वही रानी है जिसने मेरे मारनेका उपाय रचा था। राज्यको छोडकर चल दिया कहा कि धिक्कार है ऐसे जीवन को। तो ये भोग स्वप्नकी तरह असार है, क्या यह तुझे विदित नही है? इस इन्द्रजाल-वत् पुद्गलके समूहको एकत्रित करनेकी तू इच्छा कर रहा है। अरे इस ससारके भोग साधनोको असार समझकर अपने आत्महितकी साधनामे लगो। इससे ही तुम्हारा हित होगा।

> नासादयसि कल्याण न त्व तत्त्वं समीक्षसे।
> न वेत्सि जन्मवैचित्र्य भ्रातर्भूतैर्विडम्बित ॥५१॥

विषयविडम्बनासे निवृत्त होनेका उपदेश—हे भ्राता! तू इन्द्रियके विषयोसे विडम्बित होकर अपने कल्याणको प्राप्त नही करता है और तत्त्वका विचार नही करता है तथा ससारकी विचित्रताको नही जानता है। यह तेरी अज्ञानता है। इस श्लोकमे चार बातो पर प्रकाश डाला है। यह मोही प्राणी इन्द्रियके विषयोसे विडम्बित रूप बन रहा है। कहाँ तो इसका सीधा सादा ज्ञाताद्रष्टा रहने रूप ज्ञायकस्वभाव है और कहाँ यह अपने इस परमस्वभावसे चिगकर बाह्यपदार्थोमे अपने आनन्दकी आशा रखता है। जो किसी बाह्य पदार्थमे आशा रखे, अधिकारकी कल्पना करे उसको विडम्बना होती ही है। अपने अन्तस्तत्त्वको संभालो और इन्द्रिय विषयोकी विडम्बनामे मत फसो।

धनिक बननेके लक्ष्यकी मूढता—भैया! पहिले यह निर्णय कर लो कि तुम्हे क्या बनना है? इस लोकमे करोडपति, अरबपति बनकर इस कल्पित दुनियामे तुम्हे प्रसिद्ध

बनना है क्या ? तुम्हारी चाह क्या है ? तुम्हारा लक्ष्य क्या है ? किस बातमें अपना हित और बडप्पन माना है ? क्या स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रियके विषयोकी मौज ले लेने पर अपनेको खुश करनेका प्रोग्राम बनाया है। तुम्हारे जीवनका लक्ष्य क्या है, पहिले यह निर्णय कर लो। यदि इस लोकमे महा धनिक बननेका लक्ष्य है तो उस पर भी विचार करो। प्रथम तो धनी बननेमे निराकुलता नही है। फिर दूसरी बात यह है कि वह धन भी क्षणिक नही है, नियमसे नष्ट होगा। वियोग होगा उसका भी तो विश्वास नही है कि वह रहे। यदि वह निश्चयरूपसे रहे ही तो चलो कुछ दु ख ही सह ले। सो यह रहता भी नही है। फिर जिन जीवोसे तुम अपनेको बडा कहलवाना चाहते हो वे जीव भी न रहेगे, और उन्होने कह भी दिया तो भी तुम्हारे भक्त बनकर नही कह रहे है, किन्तु उन्हे भी कुछ प्रयोजन लगा होगा तो आपकी बडाई करेगे। धनी बननेमे कौनसा हित है ? उसका लक्ष्य मत बनावो, उसके लिये अपनी जिन्दगी मत समझो।

विषयोपभोगके लक्ष्यकी मूढ़ता—स्पर्शन इन्द्रियके विषयमे कामसेवनमे यदि हित समझा है, उससे ही अपना बडप्पन और सुख माना है तो यह बहुत बड़े धोखे वाली बात है। जन्मजन्मान्तरसे यह जीव इन्द्रियके विषयोको भोगता हुआ मलिन बन रहा है, इसीसे व्याकुलता भी अपने शिर लदी है। यह कामसेवन आत्महितकी बात नही है, यो ही समस्त इन्द्रियोकी बात है। इन्द्रियके किसी भी विषयका लक्ष्य मत बनावो। हम किसलिये जीवित रह रहे है इस प्रयोजनके निर्णयके लिये कुछ कहा जा रहा है। यहाँ परिस्थितिवश सब कुछ करना पडता है, विषयोका भोगना, धनका कमाना, धनी होना, सब बाते करनी पडती है, किन्तु तुम अपने भीतरकी निजकी बात बतावो। क्या यह निर्णय किया है कि हमारा जीवन विभूति मात्र बननेके लिये अथवा इन्द्रिय विषयोको भोगनेके लिये है। यदि ऐसा विकल्प है तो इस निर्णयको बदलो। ये धोखेकी सारी बाते है इन इन्द्रिय विषयोसे विडम्बनाको प्राप्त मत होवो।

विषय वैभवके लगावमे कल्याणका अभाव—दूसरी बात कही है कि यह जीव अपने कल्याणमे नही लगता। कैसे लगे ? जब विषयोकी आधीनता हृदयने स्वीकार कर ली है तो वह विषयोकी ही धुन बनायेगा ? अपने सारे यत्न, अभिलाषाये, चिन्ताएँ परके प्रसग मे बनेगी तो आत्मकल्याण कैसे होगा ? आत्मकल्याण तो यही है ना कि यह पूर्ण निराकुलताका अनुभव करे, रच भी आकुलता न हो। यह निराकुलता केवल स्वके आश्रयमे ही मिलेगी, किसी परके आश्रयमे न मिलेगी।

आत्मोपलब्धिमे दुःखोका मूलसे विनाश—आप यदि यह आशंका उठायें कि भूख लगती है, प्यास लगती है, ठड गर्मी लगती है, इनके लिये तो सब कुछ करना पडेगा। तो भाई पहिले यह विश्वास बनावो कि यह मैं आत्मा केवल ज्ञानस्वरूप हूँ और इस ज्ञान-स्वरूपकी भावनासे मैं कभी इन उपाधियोसे शरीरोसे छूटकर केवल रह जाऊ गा, फिर बतावो उसमे क्या भूख होगी, क्या प्यास होगी, फिर कोई उपद्रव नही है और यदि इन भूख, प्यासोके उपद्रवोके शमनके लिये ही ऐसा करनेके लिये ही अपना जीवन माना हो तो इससे कब तक अपनी साधना बनाये रहेंग ? ये भूख आदिकी परम्पराये तुम्हे दु खी ही करती रहेगी। ऐसा उपाय करो ना कि शरीर ही न रहे, फिर भूखादिक किसमे विराजेगे ? यह बहुत बडा काम है, सर्वोत्कृष्ट काम है। इससे बढकर और कोई हितकी बात नही है। यह जीव पाये हुए समागमोमे ममता बनाकर दु.खी हो रहा है। अपने कैवल्यस्वरूपकी दृष्टि बने तो वहाँ कल्पनावोका काम नही है। कल्याण यही है। अपने आपके स्वरूपमे उपयोगी बनें, यही आत्मकल्याण है।

मोह वस्तुस्वरूपके विचारका अभाव—तीसरी बात कही गई है वस्तुस्वरूपका यह विचार नही करता है। कैसे करे ? जैसे लोकव्यवहारमे कहते हैं ना, 'भूखे भजन न होय गोपाला, यह लो अपनी कठीमाला।' हम भूखे बैठे है भक्ति न बनेगी। यह अपनी कठी माला ले लो। कैसे वह जाप दे। पेटमे तो चूहे लोट रहे है, भूखके मारे परेशान हैं, मन तो नही लगता। ऐसे ही अध्यात्मक्षेत्रकी बात समझे कि जब परपदार्थोकी ओर अपना उपयोग लगाया है, इन्द्रिय विषयोमे यह मन रगीला बना दिया है तो इस मनमे विषयोके विचार आयेगे या तत्व विचार आयेगे ? कहासे तत्वविचार आयेगे। विषय व्यामोहसे बढकर भी कोई विपदा है क्या ? लग रहा है ऐसा कि सुखका पथ यही है, और कट रही है आनदकी सब जडे। उस ओर इस व्यामुग्ध पुरुषकी दृष्टि ही नही है। इन सब विषयोका विनाश करनेमे समर्थ तत्त्व विचार है। अपने आपका कुछ ध्यान तो करो, मैं कौन हूँ, किस गुण वाला हूँ, क्या मेरा स्वभाव है, इस समय क्या स्थिति है, कहांसे आया हूँ, कहाँ जाऊ गा ?

मोहकी विडम्बना—यदि अपने विषयमे कुछ भी विचार नही है तो जैसे किसी पागल मुसाफिरको देखकर आप उसका उपहास करते है, यह पागल है, इसका कुछ पता ठिकाना ही नही है। कही रुक जाय, जिसे अपने आपका पता ही नही। मैं कहासे आया, कहा मुझे जाना है ? इतना तक भी बोध नही कि आखिर मै हू कौन ? किस घर का हूँ। तो जैसे पागल मुसाफिर उपहासका पात्र है, बेकार है ऐसे ही यह उन्मत्त जीव

कोई इतना भी त्याग सच्ची श्रद्धासे करे तो वहाँ भी त्याग है और थालीमें न आये मगर कल्पना जग रही है कि अमुक चीज नही परोसी तो यह कोई त्याग नही है। खैर, यह भी बडी बात है कि न भी कोई चीज थालीमे आये पर उसको कल्पनासे त्याग दे तो यह भी तो त्याग है। परतु वास्तविक व उत्तम त्याग वह है कि सामने चीज मौजूद हो और फिर भी त्याग कर दे। ऐसे हो पाये हुए समागमोमे भेदविज्ञान बने, ऐसा करनेका तो गृहस्थोको बडा मौका है। तू अपनी असद्विद्यावोसे, चतुराइयोसे अपनेको मत ठग। तेरे लिये जो कार्य हितकर न हो उसे तू मत कर। जगत्के समस्त कार्य विनाशीक है, क्या तू इस ससारकी असारताको नही जान रहा है ? सम्यग्ज्ञान कर और आत्मकल्याणमे लग, यही तेरी भलाईका मार्ग है।

समत्व भज भूतेषु निर्ममत्व विचिन्तय।
अपाकृत्य मन.शल्यं भावशुद्धि समाश्रय ।।५३।।

समताका उपदेश—हे आत्मन् ! तू समस्त जीवोको एकसा जान, अन्य जीवोके ममत्व को छोडकर निर्ममत्वका चिन्तन कर। मनकी शल्यको दूर करके भावशुद्धिका आश्रय कर। इस श्लोकमे ४ बातो पर प्रकाश डाला है, पहिली बात यह कही है कि सर्वप्राणियो को तू समतासे भज, इस समताकी दो पद्धति है। प्रथम तो सर्वप्राणियोका स्वरूप है उसको दृष्टिमे लो और सर्वजीवोको समान समझो। प्रत्येक जीव ज्ञानानद पुञ्ज एक स्वरूप है, ऐसी उनमे समताकी दृष्टि करे और दूसरी पद्धति यो है कि सर्व प्राणियोमें तू रागद्वेष न करके समता परिणामको कर। इन दोनो बातोका परस्परमे सम्बन्ध है। हम अपनेमे रागद्वेष न करके समता परिणामको रखना चाहे तो हमारे लिये यह आवश्यक है कि हम सर्व जीवोका वह यथार्थ और समान स्वरूप समझले।

समताका प्रयोग—भैया ! जब कभी किसी मनुष्यपर यह जोर दिया जाता है—अरे क्यो इतने रागमे पड रहे हो ? छोडो, इतना क्यो तुम अपराध और मोह कर रहे हो तो कहना तो सरल है और वह विपत्तियोसे ऊब कर छोडना भी चाहे तो उसको भी छोडना कठिन है। यह छूटेगा तभी जब हम जिन जीवोमे रागद्वेष मोह किया करते है, उन जीवो का परमार्थस्वरूप जान ले तब रागद्वेष मोह छूटनेकी बात बनेगी। इस परमार्थ ज्ञानके होते ही ये सब निवृत्त होने लगते है। इसलिये इस अशका हम दो प्रकारसे दर्शन करें। सर्व-प्राणियोमे वह स्वरूप निरखो जो स्वरूप सबमें एक समान है। जैसे पारिणामिक भावकी अपेक्षा किसी भी जीवमे परस्पर असमानता नही है, ऐसे शुद्ध अनादि अनन्त चित्स्वभाव रूप हम सब प्राणियोको निर्णयमे ले तो ये रागद्वेष मोह दूर होगे, ममता दूर होगी।

अपनेको प्रसन्न कर रहा है। खोटी कलावोसे, अनेक आविष्कारोसे, धनार्जनकी कलावोसे, चतुराईसे, शृङ्गारोसे और शास्त्रोसे भी जो परिज्ञान करता है, वह एक विनोदके लिये करता है। हे आत्मन् ! अब मोक्षमार्गमे प्रमाद करके अपने आत्माको मत ठगो। अहो स्वकलासे अपरिचित इस मोही जीवने अपनी कैसी कैसी चतुराइया मानी है। दूसरोको हैरान करने और दूसरो को दु खी करनेमे अपनेको कुछ सफल समझ ले, अर्थात् अपनी बड़ी चतुराई समझे, किसी भी स्वार्थसाधनामे कोई छलका काम करे और उस छलसे कुछ अपनी स्वार्थसाधना बन जाय तो उसमे अपनी चतुराई मानते है। हे आत्मन् ! अब स्वहितका कार्य करो।

छलीका घात— भैया ! जब मिथ्या आशय बन जाता है तो यह मोही प्राणी अपना ही घात करने वाली प्रवृत्तियोमे चतुराई समझता है। यदि किसीके प्रति छल किया गया, छल करने वालेने धोखा देकर कुछ अपनी विषयसाधनाकी है तो यह तो बतावो कि जिसने छल किया ? वह घाटेमे रहा या जो छला गया वह घाटेमे रहा ? देखने वालोको तो यही दिखेगा कि जो छला गया वह घाटेमे रहा। इतना वैभव, इतनी दुकान, इतना गहना यह सब उससे निकल गया, लेकिन भावदृष्टिसे, बधदृष्टिसे भविष्यमे जो फल मिलेगा इस दृष्टिसे देखो तो छल करने वालेने अपने आपको ठग डाला। अपनी प्रभुता का, अपने ज्ञानानन्दके विकासका घात कर डाला। यह छल न करता, अपने निश्छल निश्चलस्वरूपकी आराधनामे लगता तो यह कितना विकसित होता, कितना समृद्ध होता ? बजाय इसके कि अब यह अधोगतिको प्राप्त होगा। इन असत् प्रवृत्तियोसे अपने आत्माको मत ठगावो।

कौतूहलोसे वञ्चनाका निषेध—घर भरा पूरा है, सुननेको रेडियो भी है और बैठक भी खूब सजा है, मित्रजन आते हैं तो बडे नाजके साथ वार्ता भी की जाती है, चलने उठने बैठनेमे भी देहसे कलाये टपकती है, इन असद् विद्यावोके विनोदसे अपने आपको खुश बनानेका यत्न रखते हैं किन्तु हे भव्य आत्मन ! इन असद् विद्यावोने तेरे इस ज्ञानानन्दनिधान परमात्मतत्त्वको ठगा है। इन कौतूहलोसे तुम अपनेको मत ठगो।

प्रायोगिक भेदविज्ञान—बच्चे को गोदमे खिलाते हुए भी अथवा खिलाती हुई स्थिति मे भेदविज्ञानका आशय बनानेमे मदद और ज्यादा मिल सकती है, जिससे अपने आपको भिन्न समझना है, अपने अन्तरङ्गमे उससे बात करके अपनेको भिन्नताके बोधमें लाया जा सकता है और ऐसी स्थितिमे समागमोके बीचरहकर उससे भेदविज्ञान बन सके तो समझिये कि मेरा मौलिक ज्ञान है। जैसे कोई भोजन करने बैठ जाय और डीग मारे कि मेरे तो आज उस चीजका त्याग है जो चीज थालीमे न आये। तो यह कुछ त्याग नही है। लेकिन

अनित्यमे नित्यकी कल्पनाकी वेदना—अनित्य पदार्थोंको हम जब तक नित्यरूपसे समझते हैं तब तक बहुत परेशानी है, अचानक वियोग होने पर बडी चोट लगती है। हाय यह हो गया, अनहोना हो गया। यदि अनित्यको नित्य समझते होते तो दु:खी न होते। लो हम इस अनित्य वस्तुवोको पहिलेसे ही जान रहे थे कि जो समागम मिले है वे किसी दिन विघट जायेगे। ऐसा हम पहिलेसे ही निर्णय किये हुए थे। जब विघटनका समय आया तो पहिले ही यह आवाज निकली कि देखो हम तो पहिलेसे ही जान रहे थे कि यह नष्ट होगा। वहाँ वह विह्वलता नही आ सकती।

भावनाका धर्मपालनमें स्थान—इन बारह भावनावोका बडा प्रमुख स्थान है आत्म हितके लिये और एक सीधा उपाय है हितके लिये तो बारह भावनावोका। थोडा भी जानने वाला पुरुष इन बारह भावनावोके चिन्तनके प्रसादसे अपनेको कल्याणमे ले जायेगा और कितना भी ज्ञान होने पर भी बारह भावनावोसे रहित वृत्ति बने तो वह ज्ञान जड धन जैसा काम करता है। जैसे मकान आदिक जड पदार्थ मिले है तो उनके मेलसे एक अहकार भाव आया, एक सासारिक मौज लेनेका भाव बनाया करते है इसी प्रकार आत्म हितकारिणी इन भावनावोसे रहित होकर यह ज्ञान वाला पुरुष भी इस ज्ञानके समागम से अहकार भाव बनानेमे जो सासारिक मौज मिला है उससे खुश रहनेका भाव–ये सब बाते बनने लगती है। इन भावनावोका कितना उपकार है? इस उपकारको वही पुरुष जानता है जो इन भावनावोंको पाकर अपनेमे कुछ लाभ उठा लेता है। हे भव्य! तू अपने भावोकी शुद्धिके लिये तू अपने चित्तमे बारह भावनावोका चिन्तन कर।

अनित्य व अशरण भावनाके मर्मका उदाहरण—इन भावनाओका स्वरूप इस ग्रन्थमे आगे विस्तारसे आयेगा, किन्तु थोडा बहुत तो भावनाओका मर्म अर्थ उनका नाम लेनेसे ही विदित हो जाता है। अनित्य भावना–अनित्यको अनित्य जानना, नित्यको नित्य जानना। यह ज्ञानपद्धति नित्य भावनाको पुष्ट करती है। अशरण भावना—मेरा जगत्मे कही कुछ शरण नही है। मेरा मात्र मैं ही शरण हूँ। ऐसी विधिमुखेन व निषेधमुखेन अशरण भावना भानेसे कल्याण फल प्राप्त होता है। केवल यदि यही जानते रहे कि मेरा जगत्मे कोई शरण नही है तो यह बजाय सन्तोषके और ज्यादा विकल हो जायेगा और अधिक दु खी हो जायेगा। कही इसे शरण ही नही मिल रहा, पर बाह्य वस्तु मेरेको शरण नही है, ऐसी भावनाका फल उसे मिलता है जिसकी यह प्रतीति बनी है कि मेरेको मेरा आत्मस्वरूप शरण है। यह शरणभूत मैं स्वय हू, ऐसी प्रतीति हो उसे ही तो बाह्य की अशरणताका परिचय मिलता है।

जहां वहांसे चलकर किसी तालाबमे स्नान किया कि उन सारी भावनावोको पानीके साथ धो देते है।

मिथ्यात्वकी गांठ—यह मोही जीव कभी धर्मकी शेखी भी दिखाता है कि ससार असार है, वह भी केवल एक वोचके पर्देकी बात है, वह भी यथार्थतया श्रद्धामे बसी हुई नही है। जब दूसरेका वियोग देखकर मरण देखकर चित्तमे यह ठोकर लग जाती है कि कही मेरा ऐसा न हो जाये तो उस दु खके मारे यह ससारको असार कहता है सच-मुच ससार असार है ऐसे स्वरूपको दृष्टिमे लेकर नही कहा। किन्तु अपने आपमे जो एक वेदना हुई, ठोकर लगी, शका हुई, भय बन गया है उसके कारण मुखसे कह देता है कि सारा ससार असार है। तो कितनी मोहकी गाठ पडी हुई है, वह गाठ क्या है? मिथ्यात्व।

मिथ्याका शब्दार्थ—मिथ्याका अर्थ क्या है? मिथ् धातुसे बना मिथ्या। मोहका नाम मिथ्यात्व है। दो या अनेक पदार्थोंका जो मेल है, वह है झूठ। इसलिये मिथ्याका भी अर्थ लोग झूठ कहने लगे। मिथ्याका सही अर्थ झूठ नही है। मिथ्याका अर्थ है मेल मिलाप। मेल मिलाप है असत्य। मिथ्या शब्द मिथुन मिथ् धातुसे बना है जिसका रूप भी बनता है। इसी रूपमे मिथ्या शब्द बना है। तो मिथ्याका अर्थ है दोका या अनेकका सम्बध। यह अवास्तविक है। जितनी वस्तुवोका मेल होकर बना है वह एक मेलरूप पिण्ड किसी एक वस्तुमे नही पडा है इसलिये अवास्तविक है, झूठ है, यह व्यवहारदृष्टिसे है, स्वरूपदृष्टिसे झूठ है। तो स्वरूपदृष्टिसे मिथ्या अर्थात् मेल मिलाप सही नही उतरते। इस कारण मिथ्याका नाम लेकर मेलमिलाप प्रसिद्ध न होकर सीधा झूठ प्रसिद्ध हुआ है।

दानके तात्पर्यका उदाहरण—जैसे दान नाम त्यागका है। त्याग किया उसका नाम दान है, पर दान किया इसको ऐसा कहनेके एवजमे यदि यह कहनेकी रूढि होती कि इसने त्याग किया तो कुछ बुद्धि सभली हुई रहती है, उस त्याग किएके एवजमे इसने दान किया बोला तो उसका कुछ ऐसा रूपक बन गया कि दान करने वालेको उस दानमे ममता हो गई, अथवा दान देकर यश, नाम आदिक किसीकी ममता हो गई। त्याग शब्द का प्रयोग हो तो इतनी विडम्बनाएं न होगी। लेकिन इस सम्बधमे सोचना यो व्यर्थ है कि दान किए कि जगह त्याग किया ही प्रयोगमे लाया जाता तो इस प्रयोगकी भी वही दुर्दशा बना दी जाती जो दान शब्द बोल कर दुर्दशा बना रहे हैं। मोहका नशा भी अद्भुत है।

ज्ञानार्णव प्रवचन द्वितीय भाग

हृषीकार्थसमुत्पन्ने प्रतिक्षणविनश्वरे ।
सुखे कृत्वा रतिं मूढ विनष्टं भुवनत्रयम् ॥५७॥

इन्द्रियसुखोंमे रतिको प्रतिषेध्यता—हे आत्मन् ! इन सासारिक सुखोमे रति करके तूने अपने आपका अब तक विनाश किया है । अब तो अपने आपका स्वरूप निरख । यह आत्मा अमूर्त अविनाशी है, लेकिन इस जगतमे कौनसा जीव अपने आपको अमूर्त और अविनाशी अनुभव कर रहा है ? यदि अमूर्त और अविनाशी अपने आपको माना होता तो फिर विपदा किसकी, शका किसकी, भय किसका ? निरन्तर शकित रहता है, निरन्तर विपदाका अनुभव करता है यह सब अज्ञान परिणामोकी ही बात है कि हमने अपनेको अमूर्त और अविनाशी नही मान पाया है । इसका प्रधान कारण है कि हम इन देहादिक सुखोसे प्रेम रखते है । इन्द्रिय जन्य सुख भोगविलास आरामके सुखोमे रति की तो उसके साधनमे ममता अपने आप आयेगी । इन्द्रिय सुखको चाहा तो यह जीव इन्द्रिय सुखके साधनोको भी जुटायेगा और उन साधनोकी पराधीनतामे यह अपने आपके स्वरूपको भूल जायेगा, दुखी होगा ।

आत्माका आकिञ्चन्य—भैया ! इसी समय देख लो, यदि कोई ऐसा उपयोग बन जाय अपने आपके बारेमे कि यह मैं आत्मा आकाशकी तरह निर्लेप रूप, रस, गध, स्पर्शसे रहित सबसे न्यारा अविनाशी हूँ, यही अनुभव कर लिया जाय तो सारे क्लेश कम हो जायेंगे। क्लेश बनते है ममतासे । इन अनन्ते जीवोमे से कुछ जीवोको मान लिया कि ये मेरे है, अब उनसे विपत्ति बढने लगी । इन अनन्ते जीवोमे से दस पाच हजार मनुष्योमे अपने नामकी धुन बन गई, ये हमे समझे कि हम वैभववान् है आदिक धुन बन गयी, लो इसे कष्ट होने लगा । भला सोचिये तो सही कभी तो मृत्यु होगी ? मृत्यु होनेके बाद इस जीवको फिर यहाँकी क्या सम्पदा क्या व्यवहार ? कुछ भी तो नही है ।

आत्मपोषणका यत्न—यहाँ एक स्वरूपदृष्टिकी बात कही जा रही है । जैसे वृक्षको रात दिन नही सोचा जाता । किसी भी टाइम १० मिनट पानी डाल दिया, किन्तु उस १० मिनटमे जो पानी डाला उसका प्रभाव शेष २४ घटे चलता है । वह वृक्ष हरियाता रहता है, ऐसे ही हम अपने आपकी स्वरूपदृष्टिका एक आनन्दसिंचन करे,

किसी भी क्षण ऐसा उपयोग बना ले कि मैं उन विपदावोसे रहित केवल एक शुद्ध चित्प्रकाश हूँ। जो मैं हूँ तैसे ही ये सब हैं—ऐसा एक चैतन्यस्वरूप अपनेको मान ले वहाँ भय नही होता है, दु'ख नही होता है। यह काम २४ घटेमे एक सेकण्ड भी बन जाय तो बाकी समस्त रात दिन अनाकुलतामे व्यतीत होगे।

सासारिक सुखोमे रति न करनेका अनुरोध—हे आत्मन्! इन इन्द्रिय और पदार्थोके सम्बन्धसे उत्पन्न हुए सासारिक सुखोमे रति मत करो। ये समग्र सुख, ये समस्त पदार्थ प्रतिक्षण विनाशीक है, ये टिकने वाले नही है। इन्हे अपनावो तो भी नही टिकते। इन सुखोके पीछे अपने आपके उपयोगको खेद खिन्न मत करो। श्रद्धा सत्य बनावो, नहीं करते बनता तो वह एक परिस्थिति है, आसक्ति है, पर सच्ची बात जाननेकी भी कजूसी करोगे तो पार न पा सकोगे। बने सो कीजिये। न बने, न कर सकें तो न कीजिये, किन्तु सत्य बातकी श्रद्धा तो बना लीजिये। मैं सबसे न्यारा हू, यह बात यदि झूठ है तो न मानो और सत्य है तो मान लीजिये। पूजामे आप कहा करते है—कीजे शक्ति प्रमाण, शक्ति विना सरधा धरे। शक्ति प्रमाण करिये, पर नही है करनेकी शक्ति तो श्रद्धा तो यथार्थ बनाइये। श्रद्धा यथार्थ होगी तो अपना पूरा पडेगा, श्रद्धा ही ठीक न रही तो फिर अपना कहाँ जमाव होगा ? हित नही हो सकता।

सुख दु ख आनन्द सब ज्ञानके विचारसे है। हम कैसा ज्ञान बनायें कि आनन्द हो जाय और कैसा ज्ञान बनायें कि दु खी हो जाये। ममतासे मिला हुआ ज्ञान चलेगा तो नियमसे दु ख होगा और सबसे निराला अपने आपको निरखनेका ज्ञान चलेगा तो वहाँ आनन्द होगा। सारा जीवन दु खमय व्यतीत करे उसमे कुछ हित नही है। अनित्य पदार्थोको अनित्य जान जावो। अनित्य भावनामे यह शिक्षा दी गयी है जो चीज मिट जाने वाली है उसे मानते तो रहो कि यह चीज मिटेगी जरूर। इससे भी लाभ है। जब वह चीज मिटेगी तो यह ख्याल जरूर आयेगा कि मैं तो पहिलेसे ही सोच रहा था कि यह चीज अवश्य मिटेगी। लो आज मिट गई, इसमे दु ख करनेकी क्या बात है ? अनित्य पदार्थोमे नित्य माननेकी बुद्धि जग रही हो तो वहाँ अचानक वियोग होने पर वज्रपात जैसा क्लेश माना जायेगा। इससे भाई जगत्मे जो कुछ दृश्यमान् है, जितने भी इन्द्रियोके विषय है, जो भी मनकी कल्पनाके आश्रय है वे सब नियमसे नष्ट होने वाले हैं, इस प्रकारकी भावना भाइये। सोचिये चिन्तन कीजिये।

विषय सुखोकी रतिसे बरबादी—ये तीन लोकके सभी जीव विनश्वर वैषयिक सुखोकी रति करके नष्ट हो रहे है। मनुष्योको देखो ये भी वैषयिक सुखोमे बरबाद हो रहे हैं,

पशु पक्षियोको देखो तो वे भी वैषयिक सुखोमे बरबाद हो रहे है। ये केचुवा वगैरह छोटे-छोटे बरसाती जीव गिजाइया ये भी अपने-अपने विषयोके सुखोमे रति करके अपने आपको बरबाद कर रहे हैं। सोचो सभलो, एकदम बाहरी चीजोमे आसक्त होनेकी हठ न बनावो। कभी तो छूटेंगे कभी तो मरण होगा उससे पहिले यदि कुछ दिन अपनेको विरक्त रख लो तो कौनसा नुक्सान पा लिया ? हे आत्मन् ! इन इन्द्रियजन्य सुखोमे, इन विनाशीक सम्पदावोमे रति मत करो।

नित्य तत्त्वकी दृष्टिसे अनित्यभावनाकी सफलता—अनित्य भावनामे अनित्य जानने के साथ-साथ अपने आपको अविनाशी भी समझ लो। ये विनाशीक पदार्थ यदि मुझसे अलग हो गए तो उसमे मेरी क्या हानि है ? यह मैं आत्मा तो एक अविनाशी तत्त्व हूँ, सदाकाल रहने वाला हूँ, इस अविनाशी तत्त्वकी सुध लीजिये। इस ज्ञानार्णव ग्रन्थमे पूर्व भूमिकाके बाद यह अनित्यभावनाका प्रथम प्रकरण चल रहा है।

भवाब्धिप्रभवा: सर्वे सम्बन्धा विपदास्पदम्।
सम्भवन्ति मनुष्याणा तथान्ते सुष्टु नीरसा: ॥५८॥

सम्बन्धोकी विपदास्पदता—इस ससार सागरसे उत्पन्न हुये ये समस्त विभाव, ये समस्त सम्बधी विपत्तिके साधन है। सोच लीजिये आज जो भी मनुष्य कुछ विपदा समझ रहे है उसका कारण क्या है ? किसी परका लगाव सम्बध। तो ये समस्त सम्बध विपत्तियोके साधन है, कुछ ही दिनो बाद ये नीरस लगने लगते हैं। खूब अनुभव कर लो—जो भी सम्बध हुआ वह सम्बध कुछ समय तो सुहावना लगता है। नया सम्बध है, नयी उमंग है किन्तु कुछ कालके बाद वहीका वही सम्बध नीरस लगने लगता है। भले लडके है, स्त्री आज्ञाकारिणी है। सर्व परिजन भले है पर उन्ही परिजनोमे रात दिन रह कर वे उतने प्रिय नही रह पाते जितने कि प्रारम्भमें वे प्रिय लगते थे, नीरस हो जाते है। अन्य इद्रियोके विषय भी देखो—स्पर्शन इन्द्रियका विषय, पुरुषको स्त्री, स्त्रीको पुरुष, ये थोडे समयको तो सुहाते है पर थोड़े ही दिन बाद नीरस जचने लगते है। भोग भोगनेके पश्चात् तुरन्त ही पछतावा आने लगता है। भोजन खा लिया, पेटमे पहुँच गया, अब वह नीरस लगने लगा, कुछ रस आता है क्या ? पेटमे पहुँचे हुए भोजनसे कोई स्वाद आ रहा है क्या ? वह तो नीरस लगता है। प्रत्येक इन्द्रियके विषय अत्यन्त नीरस जचने लगते है। तो ये सम्बध हितकारी नही है, ऐसी अपने आपमे प्रतीति रखियेगा।

निर्लेपताकी पूज्यता—हम प्रभुको पूजते है, प्रभुका स्वरूप निर्लेप है तभी उनका पूजन किया जा रहा है। यदि वे हम आप जैसे गृहस्थीमे रहते तो उन्हे कौन पूजता ?

तीर्थंकर भी जब तक घरमे रहे, महामण्डलेश्वर राजा बने रहे, वैभवमान् रहे तब तक वे पूज्य नही कहलाये थे, जब विरक्त होकर समाधिभावके द्वारा समग्र कलकोको नष्ट कर दिया, निर्लेप हो गये तब वे पूज्य कहलाये। तो क्या यह श्रद्धा नही है कि भगवान जैसी अवस्था हो वही परमहितको अवस्था है। है कि नही श्रद्धा ? श्रद्धा तब समझे जब भगवान जैसो अवस्था पानेकी रुचि जग जाय, अर्थात् सर्वपदार्थोंसे मुक्त होकर केवल ज्ञानान्दस्वरूप अपने आपको सभालमे अपने आपको लगा दिया जाये तो समझो कि भगवानकी भक्ति है, हृदयमे, और यदि भक्ति तो करते जाये और अपने आपको मोह रागद्वेष परिग्रह नाना आरम्भोमे व्यासक्त रहे, ऐसी परिस्थिति अपनी बना डाली तो भगवान्‌को भक्ति नही हुई।

यथार्थ उपासनाका ध्यान—भैया ! करते न बने चारित्र सयम तो न कीजिये, लेकिन श्रद्धामे तो यह होना चाहिये कि मेरा कल्याण तो सर्व बाह्यपदार्थोंसे देहसे न्यारा रहनेमे है। इस सत्य बातसे मुख न मोडिये और जब कभी भी इन विषयप्रसगोमें कोई विपदा आये, उपद्रव आ जाये तो आखिर इस ही मूल निजतत्त्वके ज्ञानसे वास्तविक सन्तोष मिलेगा। सन्तोषका अन्य कोई दूसरा सही उपाय नही है। इन बाह्य पदार्थोंको पा पाकर, रख रखकर हम चाहे कि सन्तुष्ट हो जाये तो हो नही सकते है। अपने आपको जब आकिंचन केवल ज्ञानस्वरूप निरख सके तो हम संतुष्ट हो सकेंगे। अब जान लीजिये। भगवद्‌भक्तिका यथार्थ लाभ लीजिये। प्रभुके स्वरूपके चिन्तनमे कोई सकट नही रहता। प्रभुभक्तिके प्रसादसे समस्त संकट दूर हो जाते है। क्यो दूर हो जाते है कि प्रभुभक्तिमे नित्य तत्त्वका उपयोग रहता है, अविनाशी, चैतन्यस्वरूपका निर्मल ज्ञानस्वभावका उपयोग रहता है। जब तक हम नित्य पदार्थका आश्रय रखेंगे तब तक हमे विडम्बनाएं नही हो सकती है।

अनित्यको अनित्य माननेसे खेदका अभाव—जब हम अनित्य पदार्थको नित्य मानते है तो हमे विह्वलता होती है क्योकि जो अनित्य है वह तो मिटेगा, और यह चाहे कि न मिटे तो यही द्वद्व हो गया। परपदार्थ मिटते तो नियमसे जा रहे है और यहाँ हम चाहते हैं कि न मिटे इसीसे तो क्लेश है। जैसे बच्चे लोग बरसातके दिनोमे रेतमे भदूना घर बनानेका खेल किया करते हैं। पैरो पर मिट्टी डाल दिया, हाथोसे खूब थोप दिया फिर धीरेसे पैर निकाल लिया, एक वह घरसा बन जाता है। पर वही बच्चा या और कोई इसको मिटा दे तो वह क्लेश तो नही मानता क्योकि वह समझ रहा है कि यह तो मिटानेके लिए है, यह तो मिटने ही वाला है, इसे तो हम मिटानेके लिये ही बना रहे

हैं। इन मिटते हुए समागमोको हम मिटता हुआ ही मानता रहे तो वहाँ भी क्लेश नही है।

अनित्यको अनित्य माननेसे खेदके अभावपर दृष्टांत—भैया! और भी देखो, विवाहादिमे जो लोग अतिशबाजी घालते हैं तो अतिशबाजीमे मानो १००) खर्च हो गये तो ये १००) पन्द्रह मिनटमे खर्च हो गये, इन १००) के खत्म हो जानेका कोई खेद लोग नही मानते और कोई छोटीसी चीज एक दो रुपयोकी घंटी अथवा गिलास खो जाय, नष्ट हो जाय तो उसका क्लेश मानते हैं, क्योकि बारूदके बारेमे उनका यह ख्याल था कि यह तो मिटनेके लिये ही खरीदा गया और उस २) के गिलासमे यह बुद्धि थी कि यह तो बीसो वर्ष रहेगा, बस इस बुद्धिके अन्तरसे १००) के खर्चमे तो दु ख नही हो रहा है, लेकिन इस २) के गिलासके गुम जानेसे दु ख हो रहा है। अनित्यको नित्य माना इसलिये उस बड़े खर्चमे दु ख नही हुआ और इस गिलासको नित्य मान रहा था, यह सदा रहेगा तो उस प्रसगमे दुःख होता है। तो दु.खी होना, सुखी होना यह सब कल्पनावो पर निर्भर है।

द्रव्यधर्म व पर्यायधर्म—साधारणरूपसे यह बताया जाता है कि जगतके सभी पदार्थ विनश्वर है, नष्ट हो जाने वाले हैं, लेकिन वहाँ यह समझना कि पदार्थ नष्ट नही होता किन्तु पदार्थका परिणमन नष्ट होता है। ये पौद्गलिक ठाटबाट आज जिस शकलमे है वह शकल मिट जायेगी, पर पदार्थ मूलसे न मिट जायेगा। जगत्मे जितने भी अणु है, जितने भी जीव है, जितने भी अन्य द्रव्य है उन सबमे न कोई एक कम हो सकेगा, न कोई एक ज्यादा हो सकेगा। उस पदार्थमे अनित्यता नही है, किन्तु पदार्थके परिणमनमे अनित्यता है। पदार्थसे कौन प्रेम करता है? जो भी प्रेम करता है वह पदार्थके परिणमन से प्रेम करता है।

परमार्थमें रागका अभाव—इन दृश्यमान् अचेतनोमे वास्तविक पदार्थ है परमाणु। एक एक परमाणुसे कौन प्रेम करता है? यह परमाणु बडा अच्छा है, यह मुझे मिल गया। अरे परमाणुके तो विकल्प भी नही होता। तो परमार्थ तो परमाणु है, उससे कोई प्रेम नही करता। उन परमाणुवोका मिलकर जो यह ठाट बना है, यह मायाजाल है, मिट जाने वाला है। इसी तरह जीवके बारेमे सोच लो। जीवमे परमार्थ जीव तो जीवत्व तो एक शुद्ध चित्प्रकाश है। शुद्ध चैतन्यस्वभावसे कौन प्रेम करता है? यह चैतन्य बिगडकर कर्मोंका सम्बध पाकर जो विकृत बन गया है उसमे लोगोका प्रेम होता है। यह मेरा भाई है, यह मेरा अमुक है, यह मेरा मित्र है, इस पिण्डपर्यायमे, इस विजातीय द्रव्यपर्यायमे

इस भवमे लोगोका प्रेम व्यवहार चलता है, तो जीवमे तो परमार्थ है शुद्ध चैतन्य प्रकाश, उससे तो कोई मोह नही रखता, और इन जीव स्कधोमे परमार्थ पदार्थ है परमाणु । उस परमाणुसे भी कोई प्रेम नही करता । कोई प्रेम करता है इन्द्रजालसे अथवा मायाजाल से । इन्द्रजाल तो जीवके विकार हैं । मायाजाल - ये पुद्गलके विकार हैं । विकारोसे ही लोगोको मोह हो रहा है, परमार्थसे जीवको मोह नही होता ।

अविनाशी तत्त्वकी भावना—अपने आपके बारेमे यह ध्यान लाइये कि प्राणीरूप यह मैं भी विनाशीक हूँ । जो व्यवहार कर रहा है और जिन वस्तुवोंसे व्यवहार किया जा रहा है वह पदार्थ भी विनाशीक है । मैं अविनाशी हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ, शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ, ऐसी हम बार-बार अपने आपकी भावना बनाएं, इससे ही हमे सन्तोष प्राप्त होता है । जगत्मे जो कुछ होता वह सब भाग्यके अनुकूल होता । बडे-बडे बलवान् बडे-बडे अधिकारी अभिमानमे चूर अपनी बुद्धि और बलका कौशल भी दिखाये, लेकिन भाग्य प्रतिकूल है तो वहा सिद्धि नही मिलती । और जो सरल हैं, ददफद नही मचाते है, शान्तिसे रहते हैं, भाग्य उनके अनकूल है तो उनका कोई बिगाड नही कर सकता । यह है बाहरी बात, सासारिक बात । अत इनका हम अधिक विकल्प न करके पाये हुए इस मनुष्यभवको एक शुद्ध ज्ञानमात्र अनुभव कर करके सफल बनाले तो यही क्लेशसे हटकर आनन्दमे लानेका पुरुषार्थ है । अपने आपमे परमविश्राम पा सके, एकदर्थ समस्त वैभव को अनित्य समझे और अपने स्वरूपको अविनाशी समझें ।

वपुर्विद्धि रुज क्रान्त जराक्रान्त च यौवनम् ।
ऐश्वर्यं च विनाशान्त मरणान्तं च जीवितम् ॥५६॥

देहकी रोगाक्रान्तता—हे आत्मन् ! तू शरीरको रोगोसे भरा हुआ समझ और जवानीको बुढापेसे घिरा हुआ समझ, तथा ऐश्वर्य सम्पदाको विनाशीक जान और जीवनको मरणवत् जान । अनित्य भावनाके प्रसगमे इस श्लोकमे ४ बातो पर प्रकाश डाला है, प्रथम तो इस शरीरको रोगोसे आक्रान्त समझ, कितनी ही प्रकारके रोग इस शरीरमे हुआ करते हैं । आयुर्वेद शास्त्रोमे इन रोगोकी सख्या लाखोमे बताई है । शरीरमे वात, पित्त, कफ—ये तीन धातुये हैं । जब इनमे विषमता हो जाती है तो अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं । शरीर रोगोसे भरा हुआ ही है । एक भी मनुष्य ऐसा न मिलेगा जिसको किसी प्रकारका रोग न हो, बुखार, जुखाम आदि बडे रोग न हो, पर जो समझते हैं कि मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ, वे भी किसी न किसी रोगसे भरे हुए हैं । हो सकता है कि कोई स्थायी रोग न हो । प्रतिदिन यह फर्क पड जाता है कि सुबह इस शरीरकी कुछ स्थिति है, दोपहरकी कुछ स्थिति

है, शामको इस शरीरको कुछ स्थिति है। जिन्हें हम स्वस्थ समझते हैं, नीरोग जानते है ऐसे नोरोग पुरुषके शरीरमे भी एक दिनमे कई स्थितिया बन जाया करती है।

अनित्य शरीरकी अप्रेयता—हे आत्मन्! जिस शरीरको देखकर तुझे अभिमान उत्पन्न होता है उस शरीरको तू रोगोसे घिरा हुआ जान। यह शरीर प्रेमके योग्य नही है, रोगोसे घिरा हुआ है। यह शरीर अनित्य है। अनित्यके दो अर्थ है, एक अर्थ तो यह है कि यह नष्ट हो जायेगा। जब शरीर रोगोसे व्याप्त है तो इसके विनाश होनेके साधन रोग आदिक ही तो है। रोगोसे इस शरीरकी व्याप्तता बनानेका भाव यह है कि शरीर विनाशीक है। अनित्यका दूसरा अर्थ यह है कि यह शरीर प्रतिक्षण अपनी स्थितिया बदलता रहता है। सुबह कैसा शरीर, शामको कैसा शरीर है? उसमे अन्तर हो जाया करता है। रोज ही यह अनित्य है और अन्तमे इसका विनाश भी है। ऐसे विनाशीक रोगी, असार शरीरसे प्रीति मत करो, तू अपने स्वभावका स्मरण करके अपने स्वभावमे रति करो।

यौवनकी जराक्रान्तता—इस श्लोकमे दूसरी बात कही गई है कि यह जवानी बुढापेसे आक्रान्त है। जवानी सदा बनी रहे ऐसा कोई मनुष्य नही देखा होगा। जवानी खिरती है, बुढापा आता है। जवानीके बाद बचपन भी आया करता है क्या? मरण न हो तो जवानीके बाद बुढापा ही आया करता है। इस शरीरका नामश रीर क्यो है? शीर्यते इति शरीरम्। जो शीर्ण हो जाय, छिन्नभिन्न हो जाय उसका नाम है शरीर। तो शरीर शब्द ही यह बतलाता है कि ये छिन्न भिन्न हो जायेगा, और शरीरमे धातुवोकी प्रबलता रहना, रक्त मास आदिक पुष्ट रहना—इसका ही नाम जवानी है। तो जवानी बुढापेसे घिरी हुई होती है।

ऐश्वर्यकी विनाशान्तता—यहाँ तीसरी बात कही गई है कि ऐश्वर्य विनाशान्त होता जिसको जो वैभव मिला है उस सबका विनाश होना है। आज पुराण और इतिहासोमे देख लो, जिनके पास जो वैभव था, न वह वैभव रहा और न वे खुद रहे। जिनके पास बडा ऐश्वर्य था, बड़ा वैभव था वह सब विनष्ट हो गया। तो जो भी जिसको मिला है वह नियमसे बिछुड़ेगा। जो बिछुड जाय वह मिले अथवा न मिले, पर जो मिला है वह नियमसे विछुड़ेगा। ऐश्वर्य मिला है, सम्पदाका समागम हुआ है तो जरूर नष्ट होगा। चाहे अपने जीते जी यह नष्ट हो जाय, खुद ही मर जाय तो यो वियोग हो जाय। किसी भी प्रकारसे वियोग हो, पर यह नियम है कि जिन पदार्थोका सयोग हुआ है उसका नियमसे वियोग होगा।

जीवनकी मरणान्तता—चौथी बात कही गई है कि यह जीवन मरणान्त है अर्थात् इसका निकट मरण है। किसका जीवन ऐसा हुआ कि वह जीता ही रहा, मरा कभी नही अथवा मरेगा कभी नही? अरे जीवन मरण सन्मुख ही हुआ करते हैं। मरणके बाद जीवन हो या न हो इसका कोई नियम नही है। ससारी जीवोके मरणके बाद जीवन होता रहता है, किन्तु अयोगकेवली भगवानके मरण अर्थात् आयुके विनाशके बाद फिर जीवन नही मिलता। पर जीवनके बाद मरण नियमसे हुआ करता है। इस ओर दृढ नियम है।

विनाशीक पदार्थोमे राग न करनेका कर्तव्य—यह ससारी प्राणी इन चार प्रकारकी बातोमे आसक्त होकर अहंकारी और बेसुध बने हुए है। शरीरमे अति तीव्र ममता है। जवानी आये तो उस शरीरको निरख निरखकर भी आप चित्तमे खुश रहा करते हैं, ऐश्वर्य पायें तो उसका भी बडा गर्व रहा करता है और जीवनकी तो तीव्र अभिलाषा रहा ही करती है। आचार्यदेव कह रहे हैं कि ये चारोके चारो पदार्थ विनाशीक हैं। नष्ट होने वाले पदार्थोमे राग मोह मत करो।

ये दृष्टिपथमायाता पदार्था पुण्यमूर्तय।
पूर्वाह्ने न च मध्याह्ने ते प्रयान्तीह देहिनाम् ॥६०॥

वैभवोंकी क्षणिकता—इस ससारमे जो भी बडे, उत्तमोत्तम पदार्थ दृष्टिमे आते है वे पर्वाह्नमे हैं तो मध्याह्नमे नही है। प्रभातके समय कोई पदार्थ दिखता था, दोपहर कालमे वह पदार्थ नष्ट हो जाता है। किसीके बालक हुआ, पूर्वाह्नकालमे खुशी मनायी और मध्याह्न कालमे नही रहा तो उसके घरमे रज छा जाता है। पूर्वाह्न कालमे श्री रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक होनेको था, थोडे ही समय बाद क्यासे क्या घटना बनती है कि वे अयोध्याको भी छोड़कर जगलमे चले जाते है। कितने ही सुख कभी आयें, कुछ ही समय बाद वे खिर जाते हैं।

यज्जन्मनि सुख मूढ! यच्च दुखं पुर स्थितम्।
तयोर्दुःखमनन्त स्यात्तुलाया कल्प्यमानयो ॥६१॥

सांसारिक सुखसे अनन्त गुणा दुःख—हे मूढ पुरुष! इस ससारमे तेरे समक्ष जो कुछ सुख या दुःख हैं उन दोनोको ज्ञानकी तराजूमे चढाकर यदि तौलेगा तो सुखसे दुःख अनन्त गुणा अधिक दीखेगा। इस श्लोकमे यह बताया है कि ससारमे सुख तो है तिलभर और दुःख है पहाड़भर। अपनी-अपनी बात ही अपनेको जल्दी समझमे आयेगी। दूसरेका सुख दुःख समझमे नही आता। तब अपनी ही बात अपने पर घटाकर देखलो। किसी भी प्रसग

में, किसी भी समयमे सुख आपकी कल्पनामे है तो उसके साथ उससे अनन्तगुणा दु ख भी लगा हुआ है। यह क्यो ? इसलिये कि वे तो सारे दु खके ही काम है। इतने पर भी यह मूर्ख प्राणी मोहवश उसमे सुखकी कल्पना कर डालता है तो यह उसके कल्पनागृहकी बात है। वास्तवमे सुखसे अनन्तगुणा दु ख है। यह कहनेके बजाय सर्वत्र दु ख ही दु ख है, यह कहा जाना चाहिये था लेकिन जिन्हे समझाना है उनकी कल्पनामे तो वह सुख जचता है, जो कि दुःखस्वरूप है, अत उन्हे उनकी भाषा बोलकर ही तो समझाना पडता है। इस कारण यह कहा गया कि ससारमे जितने सुख हैं उससे अनन्तगुणा दु ख है।

धनके कल्पित सुखमे दुखोंका उपचय—अच्छा कोईसा भी प्रसग ले लो किसमे सुख मानते हो ? धन वैभव जोडनेमे सुख मानते हो तो धन वैभव जोडनेकी कल्पनावोसे जो सुख मानते हो तो उस प्रसगमे उससे कई गुणा अन्य बातोका दु ख है। कही कोई विरुद्ध कानून न बन जाय, कही इस दबे हुए धनको कोई जान न ले, कही कोई चुरा न ले, कितनी ही प्रकारकी कल्पनाएँ बनती है। उस सम्बधमे जो भी विकल्प बनते है उन विकल्पोको वचनोसे कहा नही जा सकता। वे विकल्प अनुभवमे तो है पर उनका वर्णन वचनोसे किया जाना शक्य नही है। सारा ससार दु खपूर्ण है। ससारकी प्रत्येक परि-स्थिति पूर्ण दु खमय है।

वाञ्छाओमे ही सुख दु.खकी कल्पना—किसीको १०४ डिग्री बुखार चढा था और अब रह गया १०२ डिग्री, अब उससे पूछा जाय कि कहो भाई कैसी तबियत है ? तो वह तो यही उत्तर देता है कि अब तो तबियत अच्छी है। अरे अभी कहाँ अच्छी है, अभी तो तीन डिग्री बुखार चढ़ा हुआ है लेकिन बडा दुःख जो अभी निकटमे भोगा था उसके मुकाबलेमे कुछ कम है, अतएव उसे सुखमें ले लिया है। ऐसे ही वाञ्छाये ही विपदा है अब इच्छाये अनेक हुआ करती है। बस उन्ही इच्छावोमे से जब अति पराधीन बातोकी इच्छा नही रही है, कुछ निकट प्राप्यवस्तुकी इच्छा जगती है तो यह जीव उसमे सुख मान लेता है। इच्छावोमे ही दुःख मानता है और इच्छावोमे ही सुख मानता है। जैसे उस बीमार पुरुषने बुखारमे ही खराब तबियत बतायी थी और बुखारमे ही अच्छी तबियत बतायी, ऐसे ही इच्छावोका उपद्रव प्रत्येक ससारी जीवमे पडा हुआ है, जिसको सज्ञाके नामसे कहते है। आहारसज्ञा, भयसज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रहसज्ञा। जैनाचार्यो ने इन चार सज्ञावोको अतिज्वर बताया है। चार सज्ञावोरूपी जडसे पीडित हुए ये प्राणी विकल हो रहे है।

मूढ़ता—हे मूढ प्राणी ! यहां मूढसे सम्बोधन किया है। मूढ शब्द सुनकर बुरासा

लगता होगा। यदि आपको कोई कह दे कि आप बडे मूढ हो तो आप बुरा मान जायेंगे और मूढका ही पर्यायवाची शब्द है मोही। आप बहुत मोही हैं इस बातको सुनकर आप उतना बुरा न मानोगे जितना कि मूढ शब्द सुनकर बुरा मानोगे। बल्कि कभी-कभी तो मोही शब्द सुनकर आप हर्ष मानेंगे, जैसे कोई कहे कि आपको तो अपनी नातीसे बडी मोहब्बत है तो इसको सुनकर आप खुश हो जाते हैं। अरे मूलमे कहा तो गया मूढ ही। व्यक्त शब्दोमे कहा यह गया कि तुम्हे अपने नातीसे बडा मोह है, तो इस बातको सुनकर आप अपनी प्रशसा मान लेते है और यदि कहा जाय कि बाबा जी आप तो बड़ मूढ़ है तो इस बातको सुनकर आप दु ख मानेंगे। पर मूढका अर्थ है परवस्तुमे व्यामोह होना। जिसे परवस्तुमे व्यामोह है उस पुरुषका नाम मूढ है।

सुखकी अरम्यता—देखो इस ससारकी किसी भी वस्तुमे मग्न मत हो तो वह सुख नही है, दु ख है। इन सारे दु खपटलोको भेदकर, बिखरा कर अन्त बसे हुए आत्मीय सहज परमआनन्दमय इस स्वरूपपर नजर डालो, यही है वास्तविक सुख। इससे बाहर कही विश्वास मत करो। यह मेरा है, यह पराया है, ऐसी मिथ्या श्रद्धा मत करो। यह भी पराया है यह भी पराया है। जो कुछ मिला है यह भी पर है। श्रद्धा सही रक्खो। अपना भविष्य अपने आप पर निर्भर है। हम जिस ओर मुख करेंगे उस ओर वैसी ही बात हम पर गुजरेगी। एक निर्णय कर लो, सब कुछ क्लेश है। बडे क्लेशके सामने छोटे क्लेशसे सुख मान लेना यह तो कल्पनाकी बात है, पर मूलसे स्वरूपको देखो तो सब कुछ कल्पनायें है।

खानेका उपद्रव—देखो भैया! गजबकी बात खाने पीनेको मौज माना जाता है और यह स्वाद किस जगहसे आता है? यह कुछ पकडमे बात नही आती। जब खाते हैं तो सारी जीभसे तो स्वाद आता नही, यह जीभ करीब एक बेथाकी होगी लेकिन अन्यत्र इस सारी जीभभर कोई चीज रख दो तो स्वाद नही आता और एक जरासी नोक है वह जहाँ छू जाय, बस सो ही गडबड पैदा करती है। यह स्वाद कहाँसे आ जाता है, किस ढंगसे आता है तो खाना ही दु ख है उसका सुख क्या माने?' न जाने कब कैसा शरीर मिले, न जाने कब कैसा खानेको मिले? नरक शरीर मिले तो भूख तो लगती है सबसे अधिक और खानेको दाना भी नही मिलता। इस खानेका सुख माननेसे खानेके निदानभूत विविध देह मिलते रहते है। खाना भी उपद्रव है। आहारसे रहित हो जाय यह जीव बस इसमे ही आनन्द है आहारमे आनन्द नही है।

संबोधन—इस मनको बहुत समझाना पडेगा। यो ही आरामसे धर्म न मिल जायेगा।

धर्म तो आरामसे ही मिलेगा, पर ससारी जीवोने जिस काममे आराम समझ रक्खा है उस काममे सुख न मिलेगा। मनका सयमन करो, इन्द्रियोका दमन करो, जो बात इस आत्माके हितके लिये होती हो उस पर दृष्टि दो। हे प्रियतम ! अपने आप पर दया करके श्रद्धा सही बना लो। श्रद्धा निर्मल होनी चाहिये। अतस्तत्वका रुचिया ज्ञानी सत अपने आपके सम्बधमे यो निरख रहा है कि जो मैं ज्ञान कर रहा हू। जो एक ज्ञानरूप बन रहा है वह एक जाननस्वरूप है ऐसा यह भावात्मक मैं चेतन् केवल एक प्रतिभासस्वरूप हूँ, इसमे अन्य कुछ भी दद फद नही है। न इनमे किसी परवस्तुका लेप है। व्यवहार दृष्टिसे लेप है, किन्तु वह निमित्तनैमित्तिक बन्धनरूप है, न कि मेरे स्वरूपसे किसी वस्तु का स्वरूप लिया गया है। मैं सदैव अपने स्वरूपमात्र हूँ, ऐसे निज विचारसे इस ज्ञानीके अतस्तत्त्वमे रुचि दृढ हुई है। इसके दर्शनमे आनन्द है। इसके सिवाय अन्य कुछ विकल्प मे आनन्द नही है।

प्रत्येक सांसारिक स्थितिमे दु.खकी कल्पना—हे भाई ! तू ससारके सुखोको तौलकर देख। जिनके सतान नही है वे इस बातसे दुखी होते कि मेरे सतान नही है, मेरा घर सूना है, घरमे दीपक कौन जलायेगा और जिनके सतान है वे सतानके कारण दुखी रहते हैं। दिन भरमे पचासो बार उन सतानोपर झुझलाते है। कभी-कभी तो झुझलाहट प्रकट हो जाती है और कभो दिल मसोसकर रह जाते है, पर पचासो बार जरा जरासी बातोमे उन सतानो पर झुझलाते है। और न भी कुछ हो तो रागकी वासनासे यो ही क्षुब्ध हुआ करते है। सर्वत्र दुखी होकर यह जीव बरबाद हो रहा है। ससारमे कौनसा सुख है जो सुख कहलाये ? उसके साथ अनन्तगुणा दुख भी लगा हुआ है। जैसे कोई साधारण-सी मोटरगाडी होती है तो उससे कभी बडा सुख मानते है, सीटपर बैठे है। पो-पो करते चले जा रहे है और कही रास्तेमे बिगड गई तो सोचते है ओह ! इसमे तो बडा जजाल है, बडा दुख है। ऐसी बाते अनेक बार होती हैं। यो ही यह बिगडी हुई गाडी है ससारी जीवकी। कुछ थोडीसी चल उठी, सुख मान लिया, और पचासो बार बिगडते हैं, उसमे क्लेश मानते है।

आंतरिक आधियां—खूब विचार लो, ससारकी किस परिस्थितिमे सुख है ? कुछ भी आरामके लिये साधन बनाए जावे, कुछ भी सुखपूर्वक रहनेकी स्थिति बनाई जाये उसके साथमे ही कितना दुख लगा हुआ है, लोगोको दिखता है ऐसा कि फलाने साहबका कमरा बैठका बडा सजा धजा है। नये-नये तरहकी कुर्सिया पडी हैं, नये-नये प्रकारके टेबुल है, अच्छे-अच्छे चित्रोकी सजावट है, ये बड़े सुखसे रहते होगे। अरे वह पुरुष

कितना दुःख भोगकर, कितने विकल्प बनाकर, कितने कष्ट सहकर उस क़मरेमे बैठा है? चाहे गद्देदार कुर्सियो पर भी पडा हो, पर यह नही कहा जा सकता कि इसके चित्तमे सुख है। वेदनाये वहाँ भी चल रही हैं। इस संसारमे अगर सुख होता तो तीर्थंकर जैसे महापुरुष इसे क्यो त्यागते, क्यो सयम धारण करते? ये सारी चीजे मायामय है, त्यागने योग्य है। एक श्रद्धा तो सही बना लो और उस पर कुछ प्रयोग करो।

परोपकारमे तन मनके प्रयोगका अनुरोध—शरीर पाया है तो लगने दो परोपकारमे। दूसरोके उपकारसे इस शरीरका भी कुछ नही बिगडता और बिगड जाये तो क्या हुआ, बिगडना तो है ही। हम अपने भावोंमे उज्ज्वलता बसायें, इस अवसरको पाकर अब न चूकें। सब जीवोको सुख हो, शान्ति हो इस प्रकारका चिन्तन करें। हमारा कोई न साथी है, न शत्रु है, जिन्हे यहाँ साथी और द्वेषी समझा जा रहा है। वे बेचारे अपने सुखके लिये, अपने कषायोकी शान्तिके लिये अपने आपमे जैसा उन्होने सुख मान रक्खा हो उस तरहके उनमे विकल्प पैदा होते हैं। तो कोई साथी अथवा द्वेषी कैसे होगा? जगत्मे कोई किसीका साथी अथवा द्वेषी नही है। ज्ञानी गृहस्थके चित्तमे भी कितनी उदारता है कि युद्धके समय व्यवहारमे शत्रुका डटकर मुकाबला करते हुए भी अन्तरगमे यह श्रद्धा बनी है कि कोई मेरा शत्रु नही है। यह मन पाया है तो इस मनको सब जीवोकी भलाईके चिन्तनमे लगा दो, कोई भी हो, दूसरोके प्रति भला विचारनेसे उसका कुछ भी बिगडता नही है, किन्तु मन खुश रहता है।

परोपकारमे धन वचनके प्रयोगका अनुरोध—धन मिला है तो परोपकारमे इसे लगा दो। जैसे अपने घरमे किसी भी प्रकारका खर्च आ जाये, उस खर्चके प्रति आप चिन्ता नही करते, यह तो हमे करना ही है ऐसा आप सोचते हैं, इस ही प्रकार कोई परोपकार का कार्य आये तो यह तो करना ही है, कर्तव्य है, इसमें भी कुछ बिगाड नहीं है। बल्कि धन पकडे रहनेसे बिगाड है। यह वैभव तो पुण्योदयके कारण आता है और इस पुण्योदय का कारण है परिणामोकी उदारता, निर्मलता निर्मोहता ऐसे ही वचनोकी बात देखिये। ये वचन परोपकारमे लगते हैं तो लगावो, हितपरिमित मिष्ट वचन बोलकर जगत्का उपकार करो। इसमे तेरा क्या बिगाड है? देख जीभ कितनी कोमल है, जितने भी शरीरके अग हैं सभीसे कोमल है, पर जब मिथ्या आशय होता है, हृदयमे क्रूरता होती है तो इतनी कोमल जिह्वा जिससे कठोर वचन निकलते है। देखो भैया! सुनो ज्यादा और बोलो कम। देखो कान तो दो मिले हैं और जीभ एक ही है, सो सुननेका डबल काम करो और सुननेसे आधा काम बोलनेका करो। जो कुछ मिला है यह सब परोपकारमे

लगे, अथवा अपने आपमे सदाचरण, सत् श्रद्धान् सद्ध्यानमे लगता हो तो ठीक है।

सद्बुद्धिकी अभीष्टता—इस ससारमे सुख जिस-जिस बातमे माना जाता है उससे अनंतगुणा दु ख उस प्रसंगमे है और यह तो सब लोगोको अपने आपके अनुभवमे आया हुआ होगा। तब क्या करना ? इस सुखका विश्वास न करें। इस ससारके समागमोमे यह मेरा है, इस प्रकारका भाव न बनाये। यदि ऐसा भाव बन गया तो इसका घोर दु ख खुदको ही सहना पडेगा। सबसे निर्मल केवल ज्ञानप्रकाशमात्र मैं हूँ ऐसी श्रद्धा बनावो। भगवान्से कुछ मांगो तो यह मांगो कि हे नाथ! मेरे ऐसी सद्बुद्धि बनी रहे कि मेरा जो पारमार्थिक यथार्थ स्वरूप है उसको मै पहिचानता रहूँ, इतनी सद्बुद्धि पैदा हो, इसके अतिरिक्त हम कुछ नही चाहते है, यही है चीज प्रभुसे मागनेकी। प्रभु है खुद ऐसे। जो जैसा होता है उससे उस बातकी आशा की जा सकती है। यद्यपि यहाँ प्रभुसे मिल जाये सद्बुद्धि सो ऐसी सोधी बात नही है, किन्तु निज ज्ञानके भण्डार प्रभुस्वरूपका चिन्तन करनेसे अपने आपमे चूँकि यह भी सच्चे ज्ञानका भण्डार है स्वरूपमे अतएव स्वय सद्बुद्धि प्रकट हो जाती है। यही अभिलाषा करो कि हे नाथ! मुझमे ऐसी सुबुद्धि हो कि मैं पर को पर और निज प्रतिभास स्वरूपको निज मानता रहूँ, ऐसी सद्बुद्धि उत्पन्न हो। यही सद्बुद्धि सब कुछ उपाय बना देगी। जिन उपायोसे जीवको कल्याण प्राप्त होता है।

भोगा भुजङ्गभोगाभा सद्य प्राणापहारिण:।
सेव्यमाना: प्रजायन्ते ससारे त्रिदशैरपि ॥६२॥

भोगोंकी अहितकारिता पर सर्पफणका उदाहरण—इस ससारमे भोग सर्पके फणके समान है क्योकि इन भोगोका सेवन करते हुए देवता लोग भी शीघ्र प्राणात हो जाते है। देव भी भोगोमे रमकर अपने व्यतीत होने वाले समयको नही जानते। वह सागरोका समय भोगोमे ही रमकर व्यतीत हो जाता है। देवगतिमे जीव मरकर एकेन्द्रियमे पैदा हो या पञ्चेन्द्रियमे पैदा हो, अन्यत्र पैदा नही होता। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय जीवोमे विकलत्रयोमे ये उत्पन्न नही होते। कितनी विलक्षण बात है ? या तो वे भले मन वाले सज्ञीपञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च या मनुष्य हो और या एकदम एकेन्द्रियमे पैदा हो। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु वनस्पतिमे पैदा हो जाये। तो जो देव मिथ्यादृष्टि है, देवियोमे ही आसक्त हैं, वे भोगोमे रमकर एकेन्द्रिय भी हो जाते है। तब है ना सही बात कि ये भोग सर्पके समान है। सर्प सामनेसे निकल आये तो अभी भगदड मच जाए, सर्पकी बात छोड दो, अभी किसी कोनेसे कोई चुहिया निकल पडे, तो लोग डर जाते है। लोगोको शका हो जाती कि अरे क्या है ?

भोग परिहारकी शिक्षा—यह सर्प कितना भयकर है, उस सर्पके फणसे भी अधिक भयकर ये इन्द्रिय विषयोके भोग है, इनकी ओर रच भी दृष्टि न जाय और ज्ञानकी आराधनामे समय व्यतीत हो, ऐसी चर्यामे ही लाभ है। इन भोगोके आकर्षणमें आदिसे अन्त तक बरबादी ही बरबादी है, इस कारण हे मुमुक्षु पुरुषो ! जब देव तक भी भोगोमे रमकर मरकर एकेन्द्रिय तक हो जाते है तो मनुष्योकी तो सारी योनिया खुली हुई हैं। ये मरकर नारकादिक गतियोमे नही जायेगें क्या ? भोगोमे रमना, मरना। रमका उल्टा मर। भोगोमे रमे और मरे। ये भोग इस जीवके लिये हितकारी नही हैं और इतनी ही बात नही कह रहे, सारे समागमोमे यही विश्वास रक्खो कि ये मुझसे अत्यन्त न्यारे हैं। यह बात हृदयमे जमे बिना, श्रद्धा आये बिना कल्याण नही हो सकता।

वस्तुजातमिद मूढ प्रतिक्षण विनश्वरम्।
जानन्नपि न जानासि ग्रह. कोऽयमनौषध ।।६३।।

अनित्यको अनित्य माननेसे व्याकुलताका अभाव—हे मूढ पुरुष ! यह प्रत्यक्ष अनुभव मे आता है कि इस ससारमे जो पर्यायोका समूह है सो वह पर्यायोकी दृष्टिसे क्षण-क्षणमे नष्ट होने वाला है। इस बातको तू जानकर भी अज्ञानी हो रहा है। यह तेरी कैसी हठ है ? क्या तुझ पर कोई पिशाच चढ गया है जिसका कि कुछ इलाज ही नही होता ? अनित्य पदार्थको नित्य माननेका अज्ञान इस जीव पर लगा है, सो यह दु खी होता है। अचानक चोट पहुँचती है अरे क्या हुआ यह ? अरे उस पदार्थको पहिलेसे ही ऐसा निश्चित रखिये, निर्णयमे रखिये कि जो कुछ यह मायारूप है यह सब विनष्ट हो जायगा, ऐसा निर्णय रहे तो नष्ट होते समय इसे क्लेश नही होता।

मोहियोको वियोगका क्लेश—अहो ऐसा मोह छाया हुआ है विकट कि घरका आदमी बूढा भी हो गया तो क्या वह बूढा भी कभी मरेगा नही, पर उस इसमोही वृद्धके भी वियोगकालमे बडा ठेस पहुँचता है, जिसको जिससे जितनी प्रीति है उसके वियोगमे उसे उतना ही कष्ट मिलता है। सो क्या ऐसी बातको तू जानता नही है ? जानता तो होगा। हम आप क्या यह जानते नही कि मरण नियमसे होगा ? अपने मरणकी बात नही सोच पाते। दूसरोको एक निगाहसे देख डाले तो दूसरो पर यह बात बडी जल्दी समझमे आयगी कि हा ठीक तो है, जो जीवित होता है वह नियमसे मरता है, पर इसी बातको खुद पर घटानेके लिये मुश्किल जचता है। यह जानता हुआ भी नही जानता ऐसा कोई निरुपाय इसके गृह लग गया है।

कदाचित् महापुरुषोको भी वियोगका खेद—बडे बड़े इतिहास और पुराणोमे भी ऐसा

सुना गया है कि बड़े-बडे पुरुषोने भी वियोगकालमे बडा खेद माना था। नारायणके वियोगमे बलभद्रने कितना खेद माना था, वैसी मिसाल तो यहाँ भी कही मिल नही पाती। श्रीकृष्णके मरण पर श्री बलदेव कितने तडफे थे ? श्री लक्ष्मणजी के वियोग पर श्री रामचन्द्रजी ने अपनी क्या स्थिति बना ली थी ? यह राग पिशाच इस जीवको बुरी तरहसे चोट पहुँचाता है। सम्यग्दृष्टि पुरुष भी जब रागका तीव्र उदय आये तो कुछ विवशसे होकर ऐसी चेष्टाये करने लगते है कि लोग यो कह उठे—ऐसा तो सामान्यजन भी नही कर सकता। रागीकी वेदना बडी प्रबल वेदना होती है। द्वेषकी वेदनासे भी प्रबल वेदना रागकी होती है। हां रागपूर्वक जो द्वेष हो रहा है उसमे भी तीव्र वेदना होती है, वह वेदना भी रागसे समझिये।

विनाशीक पदार्थोंमे ही रागका सम्बन्ध—जिन वस्तुवोमे यह जीव राग करता है वे समस्त पदार्थ विनाशीक हैं, अविनाशी तत्त्वमे कौन राग करता है ? करके दिखावो। आपमे अविनाशी तत्त्व है चैतन्यस्वभाव। अनादि अनन्त शाश्वत एकस्वरूप शक्तिमात्र जो एक प्रतिभास शक्ति है वह है अविनाशी तत्त्व। किसमे राग करनेकी मनमे ठानी है ? जो राग करता है वह कषायवान् पुरुषोसे राग करता है। चित्स्वरूपसे कौन राग करता है ? तो जगत्मे मित्रता है कषाय को। कषायसे कषाय मिल गई लो मित्रता हो गयी। तो यह मित्रता भी कषायसे की जा रही है। चित्स्वभावसे मित्रता कोई नही करता। चित्स्वभाव तो अविनाशी तत्त्व है, उससे कोई प्रीति करे तो सारा काम ही न बन जाय। यहाँ तो जो दृश्यमान् पदार्थ हैं उनमे इस जीवका रागभाव पहुँचता है। इन स्कधोमे जो परमार्थ तत्त्व हैं परमाणु, उस परमाणुसे कौन राग किया करता है ? हाय यह परमाणु मेरा है, बडा अच्छा है मुझसे कही न जाय। अरे परमाणु टिकता तक भी नही है, किसी से बधता तक भी नही है। परमाणुसे कोई प्रीति नही करता। विनाशीक पदार्थोंमे यह जीव राग किया करता है। विनाशीक पदार्थोंमे राग करनेका फल उत्तम नही है। ससार को बढाने वाला है और आकुलित रखने वाला है।

क्षणिकत्व वदन्त्यार्या घटीघातेन भूभृताम्।
क्रियतामात्मनः श्रेयो गतेय नागमिष्य त ॥६४॥

क्षणिकत्वकी घोषणा—बड़े-बड़े लोगोके घर दरबारोमे मंदिरोमे जो घटा बजता है अथवा घडीका घटा बजता है वह शब्द करता हुआ लोगोंको यह बता रहा है कि सबका सब क्षणिक है। जो जिस घटेका समय निकल गया वह अब वापिस नही आनेका है, ऐसे ही जो जीवन व्यतीत हो गया वह अब वापिस लौटकर न आयेगा। पदार्थका जो परि-

णमन निकल गया वह पुन. न आयेगा। जो पदार्थ है उसका नियमसे विनाश होगा और जिसका नाश हो गया वह पर्याय फिर लौटकर नही आती। दूसरी पर्याय आयेगी। यो सभी पदार्थ क्षणिक है ऐसा आचार्य पुरुष कहते है। तो यह घटीका शब्द मानो पुकारकर कह रहा है कि हे जगत्के जीवो! यदि कुछ अपना कल्याण करना चाहते हो तो शीघ्र करलो। जो समय गुजर जाता है वह समय पुन वापिस नहीं आया करता।

व्यतीत कालकी अप्राप्ति—भैया! बीती हुई कलाका तो तुम्हे भी ध्यान ही होगा। जो पीरियड गुजर गया वह पुन वापिस आता नही। प्राय. करके ऐसा होता है कि जब बचपन है तब याद करनेकी शक्ति अधिक होती है लेकिन बचपनमे पढनेके प्रति मन नही लगता। खेलोकी ओर चित्त जाता है। बचपनमे थोडासा देख लेने पर ही विद्या कठस्थ हो जाती थी। वह बचपनका समय तो प्रमादमे खो दिया। उस वचपनकी अवस्थासे कोई लाभ न उठा पाया और जब बडे हुए, विद्याके चमत्कारकी समझ बनी, जो कुछ है सो विद्या है, सो अब तडफता है कि देखो मैंने बचपनमे विद्या सीखनेका यत्न नही किया।

सरलता कर्मठता व विवेक—यदि बचपनकी सरलता, जवानीका बल और बुढापेका विवेक– ये तीनो बाते एक साथ किसी मनुष्यमे आ जाये तो वही मनुष्य तो महापुरुष है। बच्चोमें सरलता अधिक है, इस कारण उनकी बुद्धि भी स्वच्छ रहती है और बहुत ही जल्दी उन्हे याद हो जाता है। अन्यथा फर्क बतलावो जवान होने पर तो बच्चेसे कई गुणाबल मिला है ना। बच्चे तो अनेक बातोको तरसते रहते है, बचपनमे किसी पर कुछ अधिकार नही रहता। कोई भी उसे डाट डपट देता है। जो उस बच्चेको खिलानेके लिये नौकर रखा गया है वह भी उसे कभी-कभी धमका देता है। उससे उस बच्चेको क्या क्लेश नही उत्पन्न होता है? क्या उस बच्चेके अन्दर यह भावना नही जगती कि हम भी ऐसे बडे हाते तो यह क्यो मुझे धुधकाग्ता? कितना बचपनमे कष्ट है, पराधीनता है। सब कुछ होकर भी विद्याभ्यासमे उन्हे सफलता क्यो मिल जाती है? बडे होने पर तो बुद्धि बढी, विवेक बढा पर वह स्मरण शक्ति कहाँ चली जाती है। यह स्मरण शक्ति मायाजाल, आसक्ति, रागभाव इनकी प्रमुखतामे समाप्त हो जाती है। बच्चोमे सरलता है इस कारण उनकी बुद्धि प्रबल रहती है। बचपनकी सरलता, जवानीका बल कर्मठता और बुढापेका अनुभव, ये तीन बाते किसी एक पुरुषमे आ जाये तो वह पुरुष महनीय हो जाता है। ये समस्त पदार्थ विनाशीक है, इनमे प्रीति न करके अपने आत्माका कल्याण करना हो तो इन सबको यो जानो कि ये सब नष्ट होने वाले हैं, चले जानेके बाद फिर नही आते।

यद्यपूर्व शरीरं स्याद्यदि वात्यन्तशाश्वतम् ।
युज्यते हि तदा कर्तुमस्यार्थे कर्म निन्दितम् ॥६५॥

शीर्यमाण शरीरके लिये मोहियोंकी निन्द्यवृत्ति—यह प्राणी इस शरीरके लिये बडे-बडे निन्दनीय कर्म भी करनेमे लग जाता है। निंद्यकर्म क्या है ? पञ्चेन्द्रिय और मनके विषयोमे आसक्त होना, प्रवृत्ति करना और इन विषयसाधनोकी पूर्तिके लिये इन विषयोके बाधक जिन्हे मान लिया है उन लोगोको सताना, उनका घात करना, ये सब कार्य इस शरीरके लिये यह प्राणी कर रहा है। जो शरीर मिट जायेगा, जल जायेगा, जो माया-जाल है, मिलकर एक शकल बनी है, जिसमे कुछ सार बात भी नही है ऐसे इस शरीरके लिए भी लोग निंद्य कर्म करते हैं। यदि यह शरीर अपूर्व होता, अनुपम होता, ऐसा कभी न मिलेगा, यदि ऐसा होता और साथ ही यह शाश्वत होता, सदा रहने वाला होता तो चलो निंद्य भी कर्म इस शरीरके लिये कर जायें, क्योकि यह अपूर्व मिला और सदा रहने वाला है, लेकिन इस शरीरमे तो कुछ भी विशेषता नही है। न तो यह अपूर्व है, न जाने कितने शरीर ऐसे धारण किये जिनका अन्त नही, गिनती नही और यह शरीर सदा रहने वाला भी नही। प्रथम तो आयुके क्षयके समय यह शरीर विघट जाता है, फिर एक ही दिनमे यह शरीर कितने ही ढग बदलता है। न तो यह शाश्वत है। फिर इसके अर्थ निंद्य-नीय कर्म करना क्या योग्य है ?

निन्द्य शरीरके लिये विकल्पक बननेकी व्यर्थता—भैया ! इस निंद्य शरीरके लिये कुछ कल्पनाएं मत बढावो और सम्यग्ज्ञानका प्रकाश पाकर इन सब जडोको हटाकर निजमे अपने आपके प्रकाशको समा दो। कोई विकल्प न रहे, ऐसी स्थिति बनानेका प्रयत्न करो। इस शरीरके लिये मत दौडो भागो, श्रम करो। देखो तो अज्ञानवशी कैसे-कैसे मोही मनुष्य पाये जाते हैं, कैसा शरीरको सभालते है ? एक घटेमे नहाना बने, अब साबुन लगा, फिर तेल लगा, फिर दो दो चार-चार बार नहानेकी पद्धतिया भी अनेक नलसे नहायें, फव्वारेसे नहाये, पानी भर कर टंकीमे नहायें, नहाकर बाल सवारनेमे ही समय बिता दिया। दर्पणमे मुह देख रहे, खुश हो रहे, इस शरीरकी सभालमे कितने मुग्ध हो रहे हैं ये प्राणी ? यदि यह शरीर स्वय अच्छा होता तो इसे सभालनेकी क्या आवश्यकता थी ? यह शरीर खुद गदा है, बदबू निकलती है। और आकार प्रकार भी इसका भयानक बन जाता है तो इसे तेल फुलेल लगाकर सवारते रहते है, अच्छे-अच्छे कपडोंसे इसे सजाते है। ये सब तो बेकार लोगोके काम है। जिन्हे अपने आपके मर्मका पता नही है, आत्मकल्याणका जिन्हे परिचय नही है वे सब बेकार लोग ही तो है। उन

बेकार लोगोको इस शरीरकी सजावटमे रुचि जगती है। हे आत्मन् ! इस शरीरके लिये निंद्य कर्म मत करो। एक अपने आपके कल्याणमार्गमे लगो।

अवश्य यान्ति यास्यन्ति पुत्रस्त्रीधनबान्धवा ।
शरीराणि तदैतेषा कृते किं खिद्यते वृथा ॥६६॥

आने जानेकी प्रकृतिवालोंमे व्यर्थका खेद—पुत्र, स्त्री, धन, बन्धु शरीर ये सब अवश्य जाते है और जायेगे। अर्थात् इनका वियोग होता है और वियोग होता रहेगा। फिर इन बाह्यपदार्थोंके लिये वृथा खेद क्यो किया जा रहा है? ये १०–२० वर्ष ही तो अधिक से अधिक सगमे रहेगे, सदा सगमे न रहेगे। जो भी समागम मिले हैं ये सब विनष्ट होगे। इस अनन्तकालके सामने ये १०–२०–५० वर्ष कुछ गिनती भी रखते है क्या? १०० वर्ष भी, करोड वर्ष भी, सागर भी और उत्सर्पिणी काल और कल्पकाल भी इस अनतकालके सामने कुछ गिनती नही रखते हैं। स्वयभूरमण समुद्रमे जितना पानी होगा उसमे एक बूद पानीका तो कुछ हिसाव लग जायेगा, पर इस अनन्तकालके सामने ये करोड वर्ष जल बिन्दु बराबर भी कुछ गिनती नही रखते हैं। फिर इन १०–२०–५० वर्षोंकी तो बात ही क्या है? जो लोग इन १०–२०–५० वर्षोंके लिये मौजके साधन, भोगविषयोके साधन, इन्द्रियसुखके साधन बनाते हैं, श्रम करते है वे अनन्त संसारी जीव है, व्यामोही प्राणी हैं, मिथ्यादृष्टि जीव हैं। इन नष्ट होने वाले पदार्थोंके लिये व्यर्थ क्यो खेद किया जा रहा है।

मनके वशीकरणका अनुरोध—देखो भैया! जैसे कोई उजाड करने वाली गाय हो, उसे कितने ही बार खूंटेसे बांध दो, कितने ही उपाय करके बाँधो, पर वह गाय दूसरेके खेत उजाड करने पहुँच ही जाती है। ऐसे ही यह प्राणी अपने गुण उपवनका उजाड़ करने वाला है। इसे कितना ही मना करो, कितने ही उपदेशो द्वारा समझावो तिस पर भी यह मन, यह उजड्ड गाय, ये इन्द्रिया उसे उजाडने के लिये ही उद्यत हो जाती है। इस जीवपर विपदा वास्तवमे रागद्वेष मोह भाव है। जिस विपदाके कारण यह अनन्तज्ञान की सामर्थ्य वाला होकर भी आत्मा दबा है, अविकसित है, अपने आपका उत्थान नही कर पाता। कुछ उत्थान कर सको या न कर सको, पर एक बार सत्य तो जान जावो। पदार्थका सत्यस्वरूप जानने पर नियमसे दुःखमे अन्तर हो जायेगा और आनन्दका मार्ग मिल जायेगा।

अज्ञानमे ही विह्वलता—जितनी घवडाहट है, भय है, शका है वह अज्ञान विकारमे हो रहा है। जब यह जीव अजर अमर अछेद्य अभेद्य निज चैतन्यप्रकाशपर नही पहुँचता

तो इसके सर्वत्र अधेरा ही अधेरा है, वहाँ फिर कुछ नही सोचता। यह मैं आत्मा सबसे न्यारा केवल अपने स्वरूपमात्र-हूँ, ऐसी दृष्टि जगे बिना शान्तिका मार्ग तो नही मिल सकता। चाहे खूब बढिया वैभव मिल गया, स्त्री पुत्र भी अच्छे आज्ञाकारी मिल गए तो उनके सम्बधमे उनके प्रसगमे हम अपने उपयोगको बाहर ही बाहर भ्रमावेगे कुछ अन्तर मे शान्ति न पावेगे। खूब सुहावना सब कुछ मिल जाय जितना तुम अपनी कल्पनामे बात बना सकते हो तो उस ठाठसे कौनसा लाभ उठा लोगे ? यह सारी मूर्ख दुनिया जिस ओर दौड रही है, चूंकि ये दौड रहे है तो भली बात होगी, यो ही देखादेखीकी दौड लगा देते है।

ससारी जीवोंकी प्रकृति—कोई भगिन मलसे भरा हुआ टोकना लिये जा रही थी। किसी सज्जन पुरुषने उसे ढाकनेको एक बहुत बढिया साफ स्वच्छ रगीन चमकदार तौलिया दे दिया। तीन पुरुष कुछ देर बादमे उसके पीछे लग गये, सोचा कि इसमे कोई बढिया चीज होगी। भगिनने समझाया अरे क्यो पीछे लग रहे हो, इसमे विष्ठा भरा है। इतनी बात सुनकर उनमेसे एक लौट गया। अभी दो उसके पीछे लगे रहे। भगिन बोली—भाई पीछे क्यो लग रहे हो ? इसमे तो मल है। नही-नही, इसमे तो कोई अच्छी चीज होगी, सुन्दर तौलियेसे ढकी है। अरे नही इसमे मल है। हम नही मानते। अच्छा तो हमे खोलकर दिखा दो। भगिनने खोलकर दिखाया तो देखकर उनमेसे एक लौट गया। एक अभी भी पीछे लगा रहा। भगिनने बहुत कहा कि लौट जावो, पर उसने कहा कि हम तो जब अच्छी तरहसे सूंघसांघ कर देख लेगे, विश्वास हो जायेगा तब लौटेगे। भगिनने तौलिया उघाडा, उस पुरुषने उसे सूंघा। जब सूंघसाघ कर सही विश्वास हो गया तब वह लौटा। यही हालत इन ससारी प्राणियोकी है। कोई तो भोगोको असार समझकर उनमे पडते ही नही हैं, कोई कुछ भोगोको भोगकर उनसे पृथक् हो जाते है और कोई उन भोगोमे ही जीवन भर लिप्त रहते हैं।

विवेक—भैया ! यहाँ किनमे अपना यश चाहते हो, सब असार हैं, सब इन्द्रजाल-वत् हैं। क्यो यहाँके रागी द्वेषी मोही प्राणियोके लिये वृथा खेद कर रहे हो ? अहो ! यहाँ लोग अपने यशके पीछे हजारो लोगोको भी मरवा डालते है। युद्धमे मूल बात कितनी है ? एक निजका प्रभाव बढ जाय, यश बढ़ जाय—इसके लिये इतना विकट पाप। ओह ! कितना महान् अज्ञान छाया है। ससारमे अधेर नही है। जो अज्ञानी है वह अज्ञानका फल भोगेगा, जो विवेकशील है वह विवेकका फल भोगेगा। अपने लिये यह समझो कि गृहस्थी है, धन, जन, परिजन इन सबकी रक्षा भी करनी होती है, फिर भी

बात सच जाननेसे क्यो मुकरते हो ? सत्य बात समझलो, तो इससे अनाकुलता हो जाती है। सम्यग्ज्ञानके होने पर अन्तरङ्गमे निराकुलता प्रकट हो जाती है। पुत्र स्त्री बान्धव शरीर—ये सब नष्ट हो जाते हैं, वियुक्त हो जाते हैं और वियुक्त होगे। इनके लिये वृथा क्यो खेद किया जा रहा है ?

अनित्यके प्रेमसे हानि—यह अनित्य भावनाका प्रकरण चल रहा है। यहाके सभी ठाठ विनाशीक हैं, सभी अनित्य हैं। उन अनित्य चीजोके प्रति क्यो इतना व्यामोह किया जा रहा है ? कोई पुरुष २०) का खोमचा रखकर रोज अपने परिवारका पालन पोषण करता है। उससे कोई कहे कि देखो हम कल भरके लिए तुम्हे लखपति बनायेंगे और बादमे जो कुछ तुम्हारे पास है वह भी छीन लेंगे, तो क्या वह लखपति बनना स्वीकार करेगा ? अरे वह तो कहेगा कि मुझे तो वह २०) का सट्टपट्ट ही भला है जो जिन्दगीमे साथ देगा। मुझे वह लाखोका वैभव न चाहिये जो मेरा भी सब छुड़ा देगा। ये मोही प्राणी अनित्यको नित्य मान रहे हैं। यही अज्ञान है।

अनित्यमे अनित्यताके निर्णयमें शान्तिपथका दर्शन—सभी जीव सुख चाहते हैं, आनन्द चाहते हैं, यह बात तो भली है और इनकी प्रकृतिके अनुरूप है। जीवको ऐसा चाहिये भी, लेकिन जो सुख नही है, दु खरूप है उसको ही आनन्द मानकर यह जीव भोगता है, यह तो उसकी नादानी है ना ? तो अनित्यको अनित्य समझलो। मिट गया तो क्या हुआ, मिटना ही था। कब तक कहाँ तक कौन साथ रहता है ? लोग जानते हैं कि मेरी मा गुजर गई, अनहोनी हुई, पिता गुजर गया तो यह अनहोनी हुई। अरे वह कुछ अनहोनी नहीं हुई। तुम अपनी कल्पनामे अनहोनी समझ रहे हो तो अनहोनी हुई। दूसरेके यहाँ कोई गुजर जाय उसे तो अनहोनीकी दृष्टिसे नही देखते। ससारमें होता ही है ऐसा, ऐसी समझ बन जाती है। अरे खुदके सम्बन्धमे सही निर्णय करनेसे ही सम्यग्ज्ञान माना जायेगा। इन विनश्वर पदार्थोंमें प्रीति मत करो और इनके वियोगमे खेद मत करो।

नायाता नैव यास्यन्ति केनापि सह योषित ।
तथाप्यज्ञा कृते तासां प्रविशन्ति रसातलम् ॥६७॥

स्त्रीरतिका अनौचित्य—इस ससारमे स्त्री न किसीके साथ आयी है और न किसीके साथ जायेगी। अनित्यभावनामे समग्र वस्तुवोंकी अनित्यता बताकर इस श्लोकमे केवल स्त्रीकी अनित्यताका कथन किया है। इसका कारण यह है कि मनुष्योंकी सर्वाधिक रति स्त्रीमे होती है। किसीकी स्त्री न रहे और धन वैभव माल बहुत कुछ हो तो वह अपने को ऐसा महसूस करने लगता है कि मैं कहाँ हूँ आदमी, कहाँ हूँ गृहस्थ ? मेरा तो कुछ भी

नही है। क्या है ? मोहीजनोका स्त्रीके प्रति अधिक आकर्षण है। तो तत्सम्बन्धी मोह दूर करनेके लिये स्त्रीकी अनित्यता बताई गई है, कि ये स्त्रीजन न साथ आई हैं, न जायेगी और साथ-साथ रहेगी, यह तो प्रकट दीखता है। २०–२५ वर्षकी उमरके बाद ही तो स्त्री मिली। बचपनसे तो स्त्री सगमे थी ही नही और न स्त्री साथ जायेगी—यह भी दिखता है, फिर उनके लिये ये अज्ञानी प्राणी क्यो रसातलमे प्रवेश कर रहे है ?

अशुचि देहके रागमे दुर्गति—अहो, इस अशुचि शरीरको सारभूत समझ कर इसमे रमा जा रहा हो तो इसका फल क्या होगा ? जो अधिकसे अधिक दुर्गति होगी वह फल है। एक कविने लिखा है कि जैसे सूकर मलघरमे घुसकर मलको खाकर अपनेको सुखी मानता है ऐसे ही यह मोही जीव मलमूत्र चर्ममय इस शरीरमे आसक्त होकर इस शरीर मे अनुराग करके, अपनेको उपभोक्ता मानकर व्यर्थ ही सुखी होनेकी कल्पना करता है। मिला क्या ? कुछ नही। किया क्या ? केवल अपनेमे कल्पनाएँ, फिर रहा क्या ? कुछ नही। सूनाका सूना, केवल एक वहीका वही और यह सब हो गया व्यर्थ। यही है दुर्गतिका प्रवेश। परभवमे तो दुर्गति है ही, उसकी तो इसही भवमे दुर्गति हो जाती है।

सत्य सम्पदा—सम्पदा है बुद्धिका स्वच्छ बना रहना। इससे बढ कर कोई विभूति नही है, कोई धन नही है, कोई अकल नही है। कही-कही देखा होगा लाखोका धन है और कपडे भी पहिननेका सहूर नही है। लार भी टपकती है, अकल भी नही है, पागल से बने है। जिनको बुद्धि स्वच्छ न होनेसे कोई सुख नही है उन्हे तो दुखी ही माना जायेगा। जिसकी बुद्धि स्वच्छ है, परके रागमे बढे नही, किसीसे द्वेष करे नही, सर्वजीवो के हितकी कामना करे ऐसा पुरुष ही वास्तवमे प्रसन्न है, आनन्दित है। जाना किसीके साथ कुछ नही है, लेकिन जिसने यहाँ गडबड़ मचा दी है वह यहाँ भी कुफल भोगता है और परभवमे भी कुफल भोगता है। किसी भी अनित्य समागममे मोह करना इस जीवको शान्तिके उपयोगकी बात नही है।

शान्तिका आधार आशयकी स्वच्छता—शान्तिके उपायमे सर्वप्रथम सम्यक्त्वको उपाय कहा है। जब तक आशय विशुद्ध न बने तब तक इसमे शान्तिकी कला चमक ही नही सकती है। जैसे गदी और अटपटी फोकसी भींतपर चित्रकी कला नही बनायी जा सकती है, साफ पुष्ट स्वच्छ भीत पर ही चित्रकी कला शोभा देगी, ऐसे ही गन्दे मलिन विषय-वासनासे वासित हृदयमे शान्तिकी कला कहाँसे आयेगी ? शान्ति तो स्वच्छ आशयके होने पर ही बनती है। इस स्वच्छताके लिये यही तो आवश्यक है कि निजको निज पर-को पर जानो। अपने आपके स्वरूपका परिचय पाये बिना शान्ति कहाँसे मिलेगी; समस्त

परसे निराले केवल ज्ञानमात्र अपनेको देखो। दिन रात भी संकट आता हो और उसमे किसी भी क्षण इस सहजस्वरूपका स्पर्श हो जाये तो भी यह इस कल्याणससारमे जीवित रहता हुआ समझिये। सर्वसमागम पर है, विनाशीक है। इनसे न्यारे अविनाशी ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वको निरखो, उसकी ही दृढ प्रतीति बनावो तो इससे शान्ति अवश्य प्राप्त होगी।

ये जाता रिपव पूर्व जन्मन्यस्मिन् विधेर्वशात्।
त एव ते वर्तन्ते बान्धवा बद्धसौहृद ॥६८॥

शत्रुताकी व्यर्थ कल्पना—हे आत्मन्! पूर्वजन्ममे जो तेरा शत्रु था वह ही इस भवमे तेरा अत्यन्त स्नेही बनकर बन्धु हो गया है अर्थात् तू इसको हितू और मित्र समझता है, किन्तु पूर्वजन्मकी दृष्टिसे देखो तो वह तेरा शत्रु है। इसी तरह जिन्हे आज तुम शत्रु समझते हो वे पूर्वजन्मके कहो बन्धुजन हो, मित्रजन हो। अनित्य भावनाके इस प्रकरणमे जहाँ इस पद्धतिकी अनित्यता दिखाई जा रही है कि देख जिन्हे तू आज अपना इष्ट समझता है कहो यह भी सम्भव है कि वे पूर्वजन्मके तेरे शत्रु हो, वहाँ यह भी फलित अर्थ निकला कि जिन्हे तू शत्रु समझता है यह सम्भव है कि पूर्वजन्मके वे तेरे मित्र हो और कुछ भी हो, जो आज बंधुजन है, इष्ट मित्रजन है उनसे राग बढा तो मरे, द्वेष बढा तो मरे, तब शत्रुताका ही तो काम बना।

प्राप्त समागममे ज्ञानियोका विवेक—सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष ही ऐसे विवेकी होते है जो प्राप्तसमागममे अन्तरङ्गसे न राग करते हैं, न विरोध करते हैं। सुकौशल स्वामीपर सिहनीने आक्रमण किया। लो सिहनीके भवसे तो बैर हुआ और इससे पहिले वह सुकौशलकी माता ही थी। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो पूर्वजन्ममे भी इष्ट मित्रजन थे और इस भवमे भी इष्ट मित्रजन हैं और कहो कई भवोसे वे बधु बने चले आये हो। लेकिन नफा क्या मिला उनके सम्बधसे? नेमिनाथ स्वामी और राजुलके जीव ९ भवोसे वे परस्पर बधु रहे, पारिवारिक सम्बध रहा, लेकिन अन्तमे नेमिनाथ स्वामीका गुजारा तभी बना जब त्याग दिया, विरक्त बने, केवल अपने स्वरूपको सभाला। बात यही सत्य है। किसीके साथ कब तक भी रहा आये पर पूरा तभी पडेगा जब त्याग होगा, मोह छूटेगा, जब केवल अपने स्वरूपकी सभाल होगी।

समागममे हर्ष माननेकी मूढ़ता—हे आत्मन्! तू आज प्राप्त हुए बन्धुजनोके समागममे हर्ष मत मान, अपनी सुध बुध मत खो दे। यह तो ससारका नाटक है। शत्रु मिल ही गए, मित्र शत्रु हो गए। यह तो पूर्वजन्मकी बात कही। यह तो एक जन्मकी बात हुई।

दो वर्ष पहिले जिससे अधिक विरोध था, कोई कारण ऐसा बना, प्रसग ऐसा हुआ कि आज उनसे अत्यन्त घनिष्ट सम्बध है और दो वर्ष पूर्व जिससे अति घनिष्ट सम्बध था, प्रसग ऐसा हुआ कि आज वे एक दूसरेको देखना भी नही पसन्द करते। इस ही भवमे सब देख लो। जिन घरोमे भाई-भाईमे विरोध हो जाए तो वे भाई-भाई बचपनमे कैसे मित्र थे? किसीको कोई पीट दे तो कितना पक्ष लिया जाता था। आज क्या स्थिति है? जिस घरमे पुरुष और स्त्रीमे अनबन रहती हो, एक दूसरेको देखना नही चाहते, एक दूसरेसे बोलना नही चाहते, अथवा जरा-जरासी बात पर विवाद कलह हो जाए। उस घरकी पहिली बात देखो—जब प्रथम मिलन हुआ, विवाह हुआ, दो एक वर्ष कितनी घनिष्टता रक्खी गई थी?

मोहमें दौड़—लोग यो कहते है कि एक शिष्य गुरुके पास एक दिन न आया, अनुपस्थित रहा, तब दूसरे दिन गुरुने शिष्यसे पूछा—तुम कल अनुपस्थित क्यो रहे? तो शिष्य बोला—महाराज! कल हमारी सगाई हो रही थी। तो गुरु बोला कि तुम अब अपने गावसे गये। सगाई होनेके बाद उस पुरुषको अपना गाव नही सुहाता। उसके लिये स्वसुराल ही सब कुछ हो जाती है। देखा भी न हो कभी स्वसुरालका घर तो भी कल्पनामे चित्र सारा बन जाता है। ऐसा है वह घर। फिर कुछ माह बाद वह शिष्य तीन चार दिन अनुपस्थित रहा। बादमे जब गुरुके पास आया तो गुरुने पूछा कि तुम तीन चार दिन अनुपस्थित क्यो रहे? तो शिष्यने बताया महाराज! हमारी शादी हो रही थी। तो गुरु बोला—अरे अब तुम घरसे भी गये। शादी होनेके बाद घरके आदमी हितू नही मन मे जचते। जो कुछ हितू है सो वह नई बहु है, उसके बाप भाई है।

लोकमे इष्ट अनिष्टकी व्यर्थ कल्पना—जिसके साथ कुछ ही वर्ष पहिले बडी मित्रता थी वे ही आज परस्परमे बडे विरोधी नजर आते है और जिनका कुछ ही वर्ष पहिले कट्टर विरोध था पर प्रसग ऐसा हुआ कि वे बड़े सुहृद बन जाते है। तब फिर किसे इष्ट मानना और किसे अनिष्ट मानना? कुछ निर्णय तो बतावो। अधाधुन्धा ही अज्ञान की प्रेरणासे जिस किसीको इष्ट मान लिया, जिस किसीको अनिष्ट मान लिया, इससे तो आत्माका पूरा न पड़ेगा।

रिपुत्वेन समापन्नाः प्राक्तनास्तेऽत्र जन्मनि।
बान्धवा क्रोधरुद्धाक्षा दृश्यन्ते हन्तुमुद्यता. ॥३९॥

बन्धुताकी व्यर्थकल्पना—पूर्व श्लोकमे जो बात कही गई है उस ही के प्रतिपक्ष रूप बात इसमे कह रहे है। हे आत्मन्! जो तेरे पूर्वजन्ममे बडे बान्धव थे वे ही इस जन्ममे

शत्रुताको प्राप्त हो गये। क्रोधसे जिनके लालनेत्र हो गये अथवा क्रोधसे जिनकी आखे रुद्ध हो गईं, इस तरह होते हुए तुझे मारनेके लिये ये उद्यत हुए है। जो हो रहा है, ठीक है, जिसमे जैसी योग्यता है वह वैसा परिणमन कर रहा है, पर कोई भी जीव परमार्थत. न तेरा इष्ट है, न बन्धु है और न कोई तेरा द्वेषी है। सब जीव अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार, वासनाके अनुसार परिणमन किया करते है। तुझे किसी विषयमे राग है और उस विषयकी पूर्ति न हो सके, जिस किसी पुरुषके कर्तव्यसे तुझे अपने विषयोमे बाधा जचे उसे तू विरोधी मान लेता है। वस्तुतः कोई विरोधी नही है, न कोई बन्धु है।

इष्ट अनिष्ट बुद्धिके नाशके लिये किसी दार्शनिकको कल्पना—जो लोग एक ही आत्माकी सत्ता मानते हैं उनका यह कहना है कि तुम्हारा कौनसा द्वेषी है? जो तू है सो ये सब है। जब एक ही आत्मा है तो यह भी मैं, यह भी मैं, जितने जीव हैं वे सब मैं हूँ। तो ऐसा मान कर उनको यह प्रयत्न करना चाहिये कि मेरा किसी भी परजीव पर क्रोध भाव न जगे। अरे तुम किसपर क्रोध करते हो? वह भी तो मैं ही हूँ। विरोधभाव उत्पन्न न हो इसके लिये यह माननेका उन्होने यत्न किया है। साधारणतया समझमे यह बात बडी अच्छी लग रही है कि क्रोध न आये, विरोधभाव न जगे, इसके लिये यह भावना ठीक है। किसपर क्रोध करते हो? वह भी तो मैं ही हूँ, लेकिन वस्तुस्वरूप ऐसा नही है। इस कल्पनामे क्षणिक कुछ सन्तोष कर लोगे, मगर सदाके लिये कोई शान्तिका मार्ग नही मिल पाता।

जीव और आत्माकी मान्यताका आधार—अब इस ही तत्त्वको वस्तुस्वरूपकी दृष्टि से अब देखो तो यो मानना होगा कि जगत्मे जितने भी जीव हैं वे सब स्वतः ऐसे ही है जैसा कि मैं हूँ और इस पूर्ण सदृश्यताके कारण किसी भी प्राणीके प्रति यह गुजाइश नही निकाली जा सकती कि यह जीव मेरा बन्धु है या यह जीव मेरा शत्रु है। फिर व्यवहारिक क्रियावोमे यह देखा जाता है कि कोई पुरुष एकदम लाल आखे करके मेरेको गाली देता हुआ मेरेसे सीधा मुकाबला कर रहा है, ऐसी स्थितिमे तो वह विरोधी समझा जायेगा ना? तो यह सिद्धान्त यह समाधान देता है कि वह कैसे ही लाल आखे करके आये और कितना ही गाली देता हो, कितना ही मुकाबला करे, इतने पर भी उस जीवने अपने आप की योग्यताके अनुसार अपने आपमे परिणमन किया है। यो ही कोई किसीका बैरी नही है।

मोक्षपथमे अनित्य भावनाका स्थान—यहाँ बात चल रही है मोक्षमार्गके प्रसगकी। कैसे इस आत्माको देहसे, कर्मसे, विभावोसे मुक्ति प्राप्त हो उसकी यह बात चल रही है। हे आत्मन्! पूर्वजन्ममे जो तेरे बन्धुरूपसे थे वे ही आज क्रोधके वशीभूत होकर वैरी

बनकर तेरे प्राण हरनेके लिये भी उद्यमी हुए हैं। इससे तू जगत्की अनित्यता जान। यहाँ कुछ भी पदार्थ एक बातपर कायम नही है। कोई भी विकृत पदार्थ किसी एक निर्णयपर नही है। क्षण-क्षणमे अपना रूप, आकार परिणति बदलते रहते है। तू इन समागमोमे न तो प्रीति कर और न विरोध कर। ये तो सब मायाजालरूप है।

अङ्गनादिमहापाशैरतिगाढं नियन्त्रिताः।
पतन्त्यन्धमहाकूपे भवाख्ये भविनोऽध्वगाः॥७०॥

अज्ञानान्धोंकी वृत्ति—इस ससारमे निरन्तर परिभ्रमण करने वाले ये प्राणी स्त्री आदिकके महान् पापोंसे अर्थात् बडे-बडे रस्सोसे बडे दृढ बंधे हुए होकर नियन्त्रित होकर अधमहाकूपमे गिरते है। जैसे अंधे पुरुष मार्गमें चलते-चलते कूपमें गिर पडते है इसी प्रकार ये आखो वाले प्राणी भीतरसे ज्ञाननेत्रके बुझनेसे अधे हुए प्राणियोके समान इस ससाररूपी कुएमे गिरते है। क्या ढग हो रहा है? मनमाने विचार बनाये, वैभवका सचय किया, विषयोकी प्रीति हुई, अपने स्वरूपकी सुध खोई और इस ससारमे जन्म-मरणके चक्र लगाते रहे, यही है इनकी चर्या।

मोहियोंकी चर्या—कोई पूछे कि आजकल तुम किस चर्यासे चल रहे हो? क्या प्रोग्राम है क्या आपका कार्यक्रम है? तो जिस प्रोग्रामसे आप चल रहे हो उसे बता दोगे। जिस किसी भी पदार्थको अपना इष्ट अथवा अनिष्ट मानकर रागमे हम अधे बनते हैं और द्वेषमे हम जले जाते है। सुनो भाई यह अपना प्रोग्राम बतला रहे हैं, हम किस प्रोग्राममे चलते है यह प्रोग्राम कहा जा रहा है और अपने इस कुटुम्बके प्रोग्राममे चलकर कर्मबन्ध करते हैं और उसके उदयकालमे फिर कष्ट बढाते हैं, और ऐसा करते हुये हम क्या कर रहे है, इसका कुछ पता भी है आप लोगोको। होना तो चाहिये पता। क्योकि हम आप सबका एक प्रोग्राम है। इस मामलेमे हम आप सब एक सगठन बनाये हुये हैं, क्या करते हैं? जन्मते मरते है, रागद्वेष करते है, विषय उपभोग करते है, बहुत बड़ा प्रोग्राम है। यह बात चल रही है ससारी जीवोकी। ये ससारी प्राणी अन्य प्राणियोकी तरह ज्ञानके अधे बन-बनकर ससाररूपी कुवेमे पतन किया करते है। अधा चलेगा, उसे क्या पता कि आगे क्या है? कुवा मिला, उस ही मे गिर पडा। इसी तरह अज्ञानके अधे पुरुष, इन्हें क्या पता कि आगे क्या होगा, भविष्यमे क्या होगा? बस आगे जन्म-मरणकी वेदनाके कुएमें गिर जाते है।

पातयन्ति भवावर्ते ये त्वां ते नैव बान्धवाः।
बन्धुतां ते करिष्यन्ति हितमुद्दिश्य योगिनः॥७१॥

बन्धुता कैसी—हे आत्मन् ! जो कोई तुझे ससारके चक्रमे डालते हैं उन्हें तुम अपना हितैषी कह सकोगे क्या ? और सीधी भाषामे सुन लो। तुम्हे कोई किसी चक्करमे डाल दे, विपदामे गिरा दे, धोखा देकर परेशानीमे डालकर खुद अलग हो जाये, उसको आप हितैषी कहोगे क्या ? नही कहोगे। तो ऐसे बतलावो कौन-कौन हैं जो तुझे रागकी बात बोल-बोलकर, तेरा दिल हर-हरकर उन्मत्त बना दे, परोपयोगी बना दे और खुद अलग का अलग है ही। अलग रहना तो वस्तुका स्वरूप है ही। ऐसी बात कहाँ कहाँ बीत रही है ? जिन-जिनके प्रति यह बात बीत रही हो उनको क्या आप हितैषी कहोगे ? अब भी आप जवाब दे देंगे कि नही कहेगे, लेकिन जब नाम लेकर बोल दे लो ऐसे तो है ये पुत्र, स्त्री, बन्धु परिवार, मित्र, तो अब दिल ठिठकने लगेगा। मैं उन्हे अहितैषी कह दूं क्या ? जो कोई तुझे ससारके चक्रमे डालता है वह तेरा हितैषी नही है।

वास्तविक बन्धु—जो लोग तेरे हितकी वाञ्छा करके तेरे साथ बन्धुताका बर्ताव करे, तुझे विपदासे बचायें, सतोषके भावमे ले जाये वे ही वास्तवमे तेरे सच्च परममित्र हैं। बात सुननेमे अच्छी लग रही होगी। क्या कहा ? जो तुझे विपदासे बचाकर यथार्थ सतोषके भावोमे ले जाये, तुझे निराकुल बनानेका यत्न करे वह पुरुष तेरा हितैषी है, लेकिन वह है कौन ? उसका यदि नाम बता दे, उसका व्यपदेश कर दे तो अब रूखापन आ जायेगा। कौन है ऐसा ? उपदेष्टा गुरु महाराज ये तेरे हितकी वाञ्छा करते हैं हित का उपदेश करते हैं, शुभ और शुद्ध मार्ग बतलाते हैं, ठीक है। वे ही हितैषी है, लेकिन देखनेमें सामने यो नजर आता है कि कहाँ हितैषी हैं ? वे तो ये ये लोग हैं, जो गुरु, गुरु कहे जाते हैं। वे खुद बेठिकानेमे हैं।

वास्तविक हितैषी—जिनको अपने आपकी सुध हुई है, अन्तरङ्गसे हितकी भावना जगी है उनका निर्णय ठीक यही होता है, जो तुझे ससारके चक्रमे डाल दे, वे बान्धव नही हैं, वे भाई बन्धु नही है, हितैषी नही है। किन्तु जो पुरुष, जो ज्ञानी विरक्त सत निर्मोह है जिन्हे स्वार्थका लगाव नही, जो किसी भी प्रकारसे अपने इन्द्रिय और मनके विषयको भोगना नही चाहते हैं ऐसे महापुरुष जो निरारम्भ और निष्परिग्रह होकर हित का उपदेश करते हैं वे गुरु महाराज ही वास्तविक हितैषी है। इस जीवके महान् मोहरूपी रागसे पीडित पुरुषोके लिये ये सतजन आकस्मिक वैद्य हैं, अचानक निरपेक्ष वैद्य है। ये उपदेष्टा गुरुजन तेरे निरपेक्ष बन्धु हैं, तेरे मगलको करने वाले है, कल्याणके सुखके साधक हैं। ये ही शरण हैं। ऐसे गुरुजनोके प्रति, सतजनोके प्रति तो यह श्रद्धा बने कि मेरा वास्तविक हितैषी यह है और जिसमे बसकर रात दिन राग और द्वेषके परिणाम

ही किए जाते हैं, मेरा तेरा, मैं मैं तू तू की वासना जिनके बीच रहकर दृढ़ बनती है वे बन्धुजन तेरे हितैषी नही है—ऐसा निर्णय कर।

अनित्यका व्यर्थ मोह—इस अनित्य भावनाके प्रसंगमे इस अनित्यताको इस पद्धतिसे कह रहे है कि तू किनमे भ्रम कर रहा है कि ये मेरे मित्र है, जिनको तू जानता है, कल्पनाएं करता है कि ये मेरे मित्र है वे सही मित्र नही है। तू अनित्यमे अपने हितकी आशा रखता है। इनको छोड। ये गुरुजन ही तेरे शरण है। इन गुरुजनोमे कोई व्यक्ति नही आया जिससे कि मोह बने। वे तो एक सामान्यस्वरूप हैं। देव, शास्त्र, गुरु, वे अपने जातिस्वरूपमे समाये हुए हैं। किन्तु घरमे ऐसा नही होता। उनका चेहरा शकल-सूरत वाणी देखकर व्यक्तिसे मोह होता है। तू अनित्य व्यक्तियोसे मोह मत कर और अपने शरणभूत साधु सतजनोके उपदेश पर अपना निर्णय बना। यही तुम्हारे कल्याणका एक मात्र उपाय है।

शरीरं शीर्यते नाशा गलत्यायुर्न पापधीः।
मोह स्फुरति नात्मार्थ पश्य वृत्ता शरीरिणाम् ॥७२॥

आशाकी अशीर्णता पर खेद—आचार्यदेव आश्चर्यपूर्वक कह रहे है कि देखो शरीर तो प्रतिदिन क्षीण होता जाता है परन्तु यह आशा शीर्ण नही होती है। शरीर वृद्ध हो गया, रोगसे दब गया, शक्ति नही रही उठने बैठने, खडे होनेकी, मृत्यु निकट है किन्तु आशामे कितना-कितना काल्पनिक वैभव भरा पडा हुआ है जिसकी कोई हद नही है। यह आयु तो गल जाती है, मगर पाप करनेकी बुद्धि नही गलती है। कितनी ही उमर हो गई, वृद्ध हो रहे, आयु गलनेके निकट है लेकिन विषयोकी आशा और विषयोकी आशा के ही कारण अन्य जीवोको धोखा देना अथवा सताने आदिकी बुद्धि यह बराबर चलती रहती है, यह आशा गलती नही है।

मोहस्फुरणपर खेद—जीवके मोह तो वृद्धिगत होता है पर आत्मकल्याणका भाव नही स्फुरायमान् होता है। अहो! देखिये इन देहधारियोका समाचार कितना आश्चर्यकारक है। जैसे दिन भरकी धूपसे तपे हुए बगीचेके पौधोको किसी एक समय और वह भी प्रात.काल ठडके समय अथवा शामके समय उनमे पानी डाल देने पर वे उस गहरी तापसे भी मुरझाते नही है, ऐसे ही इस गृहस्थावस्थामे नाना उपद्रव नाना परिसह सहे जाते है, बड़े-बड़े सताप होते है। परिग्रहका सम्बन्ध तो सतापका हेतु है, ऐसे इन गृहस्थीके सतापोसे तपे हुए इन प्राणियोको, इन पौधोको जरूरत है कि किसी क्षण आध मिनट भी ये अपने आत्माके इस अकिञ्चनस्वरूपकी श्रद्धा कर ले, आत्मप्रतीति जलसे अपने मूलका

सिन्चन करके, एक क्षण भी अपने आपके अकिंचन स्वरूपकी श्रद्धा कर ले तो शेष रात दिनका सारा सताप यह योग्य ढगसे झेल सकता है अन्यथा तो यह मोही निरन्तर व्याकुल होता हुआ अपने इस जीवनको भी किरकिरा कर देता है। देखिये कितने कठिन उपसर्ग है, उपद्रव है ? ये सब उपद्रव भीतर चल रहे है। ऐसा कर करके किसीने कुछ लाभ पा लियाँ हो तो चलो वह भी ठीक है, पर लाभ क्या मिला ? जीवनभर आशा की और फिर ज्योके त्यो रहे। जैसा परिणाम है, कलुषता है, मोह है, रागद्वेष है बस वही पास रह गया और कुछ नही है।

पापबुद्धिके न गलने पर खेद—अहो, देखो मोहकी दशा, पापकी बुद्धियां की जा रही हैं। स्पर्शन इन्द्रिय, रसना इन्द्रिय, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रिय इनके वशीभूत होकर यह नाना खोटे परिणाम करता रहता है। यह पापबुद्धि नही गलती है और आयु देखो प्रतिक्षण गलती जा रही हैं। एक जगह लिखा है कि व्रतोमे दुर्धर व्रत ब्रह्मचर्य व्रत है। इन्द्रियोमे कठिन इन्द्रिय है रसना, गुप्तियोमे कठिन गुप्ति है मनोगुप्ति। तो ब्रह्मचर्य का उल्टा है स्पर्शनइन्द्रियका विषय। तो ये दो इन्द्रिया बहुत कठिन इन्द्रिया है और इन दोनो इन्द्रियोको उत्साह देने वाले हैं ये नेत्र। देखनेसे ही आगे बढकर नाना व्यञ्जनो के खानेकी सुध होती है और इस नेत्रइन्द्रियसे रूपको देखने पर स्पर्शनइन्द्रियके विषयमे इसकी आसक्ति होती है। तो स्पर्शन इन्द्रियके विषयमे साधक है रसना और चक्षुइन्द्रिय। अब देख लो कितनी सुविधा मिली है कि इस रसना और चक्षु इन कठोर इन्द्रियोको दबानेके लिये हम आप सबको दो दो ढक्कन मिले है। बन्द करलें। आखोको दबानेके लिये दो दो पलक मिले हैं और रसनाको दबानेके लिये दो ओठ मिले है। किस्सा खत्म। पर इनका उपयोग कर सकें, ऐसी बुद्धि भी सही सलामत रहे तब बात बने।

मोहियोकी आत्महितकी अनुत्सुकता—यह मोह तो स्फुटायमान् होता है, वृद्धिगत होता है, किन्तु आत्महितकी उत्सुकता भी नही होती। मोहसे हटनेका तो कभी मनमे आता ही नही चलो शान्ति हो, मोह कम करे, विवेक हो, भेदज्ञान हो ऐसी भावना भी बने तो चलो कहलो कि मोहको हटानेकी बात चित्तमे आयी, यह सब अज्ञानका माहात्म्य है। अज्ञान जैसा पाप अन्य क्या होगा ? वस्तुस्वरूपका यथार्थ बोध न हो सके, उल्टा उल्टा माने, निजकी सुध न रहे, परको निज माने ऐसा अज्ञानभावका फल कितना खोटा होता है ? जैसे केवलज्ञानकी महिमा, बडप्पन, महत्व बतानेकी सामर्थ्य नही है ऐसे ही इस अज्ञानकी महिमा माहात्मय बतानेकी भी सामर्थ्य नही है। अब हे आत्मन् ! वस्तु-स्वरूपका ज्ञान करके, भेदविज्ञान उत्पन्न करके इस अज्ञानको दूर करो, मोहको क्षीण

करनेका उपाय करो, पापबुद्धि और आशाको हटावो । तू स्वयं ही परम आनन्दमय है, अपने स्वरूपका स्पर्श करके आनन्द तो भोग ।

यास्यन्ति निर्दया नूनं यद्दत्वा दाहमूर्जितम् ।
हृदि पुंसां कथं ते स्युस्तव प्रीत्यै परिग्रहाः ॥७३॥

परिग्रहोंकी चोट—हे आत्मन् ! यह परिग्रह पुरुषोके हृदयमे अत्यन्त संतापदाह उत्पन्न करके चला जाता है। यह परिग्रह तो ठहरता नहीं है और इसका मूलमें जो दस्तूर है कि पुरुषोके हृदयमे अत्यन्त दाह उत्पन्न करना, सो अपना दस्तूर निभाकर यह परिग्रह बिछुड जाया करता है। यह परिग्रह तेरे प्रीति करने योग्य नहीं है। तू व्यर्थ ही परिजन धन वैभव आदिक परिग्रहोसे पीडित होता है, ये किसी भी प्रकार तेरे साथ न रहेगे। कर लो कितना मोह करते हो, कितने दिन करते हो ? कितने तीव्र भावसे करते हो, करलो। ये मोहके दिन तो तुझसे जाने न जायेगे, कहे न जायेगे और वे है बहुत अल्प दिन। अन्तमे विछोह होगा, खेद होगा, बड़ा संक्लेश सहेगा। उचित है कि तू अभीसे यथार्थ बोध बना। मेरा मेरे स्वरूपके सिवाय अन्य सब पदार्थोका समागम मुझ से भिन्न है, मेरे हितरूप नहीं है। ऐसी शुद्ध दृष्टिके प्रसादसे इस लोकमे भी तू प्रसन्न रहेगा और परलोकमे भी तू प्रसन्न रहेगा।

मोहियोंके ज्ञानवृत्ति पर आश्चर्य—मोहीजन ही ऐसा सोचा करते हैं कि इन त्यागियो को, साधुवोको अथवा इन ज्ञानी गृहस्थोको जो घरमे रहते हुये भी जलमे भिन्न कमलकी नाई रहते है, क्या सुख है, अकेले पड़े है, किसीसे मन ही नही मिलाते। न जाने किस धुनमे बने रहते हैं, ऐसा मोहीजन सोचते हैं। किन्तु आनन्द तो उस एकत्वके रुचिया ज्ञानी संतोको ही है। इसे अज्ञानी क्या समझे ? जैसे महापुरुषोकी उदारता देखकर कजूसोको आश्चर्य होता है ऐसे ही ज्ञानी संतपुरुषोकी विरक्तिको निरखकर अज्ञानियोको आश्चर्य होता है।

दानवृत्तिपर खेद करने वाले कंजूसका दृष्टान्त—एक शहरमे किसी कजूसने किसी धनिकको धन बाटते देखा। उसी समयसे उसका चित्त अत्यन्त उदास हो गया। ओह ! ये कैसा अपना सारा धन लुटाये दे रहे है—उसका सिरदर्द करने लगा, रोनी सी शकल लेकर वह घर पहुँचा। स्त्री उसे उदास देखकर पूछती है—नारी पूछे सूमसे काहे बदन मलीन। क्या तेरो कुछ गिर गयो या काहूको दीन ॥ ऐ पतिदेव !, आज आप उदास क्यो है ? क्या आज आपका कुछ गिर गया है या आपने आज किसीको कुछ दे दिया है ? तो सूम कहता है—ना मेरा कुछ गिर गयो, ना काहूको दीन। देतन देख्यो औरको तासो

बदन मलीन ॥ मेरा कुछ गिर नही गया और न मैंने किसीको कुछ दे डाला है, किन्तु औरोको खूब मनमाना धन बाटते हुये देखा तो मेरा दिल हिल गया। ओह! कैसा ये अपना सारा धन लुटाये जा रहे हैं ? इसीसे मेरा चित्त आज दुःखी है।

ज्ञानियोंकी उदारतापर मोहियोंको आश्चर्य—जब किन्ही महापुरुषोकी कहानीको ये अज्ञानीजन सुनते हैं कि वे इस प्रकारके वैरागी थे, बिना ही विवाह किये निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण करके बडी कठिन तपस्या की, ये राजपुत्र इतने सुख साधनोके बीच रहकर इस प्रकार विरक्त रहे, तो उनके दिलमे एक चोट सी पहुँचती है और आश्चर्य होता है कि ओह! उनका दिमाग बिगड गया था क्या ? आत्माकी सुध रखने वाले ज्ञानी सत्पुरुषोको किस प्रकारका विलक्षण आनन्द जगता है ? इसकी पहिचान मोहियोको कभी नही हो सकती।

अरक्ष्योंमें प्रीतिकी व्यर्थता—ये चराचर पदार्थ चेतन अचेतन परिग्रह, समागम ये तेरे चित्तमे दाह उत्पन्न करके निर्दय होकर चले जायेंगे, अर्थात् तू तो इन पदार्थोंको बडा साज शृङ्गार करके रखता है, धन वैभव बढ़ा बढाकर तू इनका बहुत ढेर सचय बना लेता है, लेकिन ये सबके सब चेतन अथवा अचेतन कोई दया न करेगा। अचेतन तो दया ही क्या करें ? जब समय आयेगा, बिगड जायेगा। पर चेतन तो दया कर सकता है ना ? अरे ये भी दया न करेंगे। मरने वालेसे घरके बचे हुए लोग बडी प्रार्थना करते हैं, भाई मत जावो, और मरने वाला सुनता नही है तो भगवानको पुकारते है, हमारा भाई तो सुनता ही नही है, वह तो जा ही रहा है, हे भगवन्! वह न जा पाये। सभी लोग बड़े-बडे प्रयत्न करते है, पर मरने वाला तो निर्दय होकर वियोग ही करता है। यह सब एक अलकृत भाषामे कहा जा रहा है। तो जिनके प्रसंगमे तूने इतने विकल्प किये, श्रम किया वे सब जब तेरे साथी ही नही होते तो इन परिग्रहोके प्रति तू इतनी अधिक प्रीति क्यो करता है ?

सयुक्तोंके वियोगकी अवश्यभाविता—इन समागमोको कभी तो बिछुडना है। जिन्दगी मे भी बिछुडे तो बिछुडे, नही तो मृत्युके समय तो बिछुडेंगे ही, उस समय दुखी होना पडेगा। तो जब सब बिछुडना ही है तो अभीसे ट्रेनिङ्ग क्यो न करलो कि ये सब कुछ अवश्य बिछुडेंगे। इस जिन्दगीमे परोपकारमें, परसेवामे जिस किसी भी प्रकारसे इन परिग्रहोके विछोह करनेकी ट्रेनिङ्ग ले लो ताकि उस बिछोहमे आकुलता न हो सके, यही तो पुरुषार्थका अभ्यास है। हे आत्मन्! वृथा इन धन धान्यादिक परिग्रहोमें प्रीति मत करो। अपने आपके आत्माके कल्याणका प्रोग्राम बनावो और उस ही मे बढो।

अविद्यारागदुर्वारप्रसरान्धीकृतात्मनाम् ।
श्वभ्रादौ देहिना नून सोढव्या सुचिर व्यथा ।।७४।।

रागान्धोंकी व्यथा— मिथ्याज्ञानसे उत्पन्न हुए रागके दुर्निवार प्रसारमे जो जीव अध हो गये हैं उन जीवोको अवश्य ही नारकादिक दुर्गतियोमे बहुत काल पर्यन्त दु.ख सहने पड़ते है, इनको क्या तुझे खबर नही है ? इस ससारमे एक व्यापक दृष्टिसे निरखने वाला पुरुष जानता है कि कभी कही अन्याय होता ही नही । वह कैसे ? जिसने जैसा भाव किया, जिसने जितना पुण्य बाँधा उसके उदयके अनुकूल बीत रही है । उसके ही अनुसार सब फल पा रहे है । भले ही कोई अत्याचारी है, लेकिन उस अनाचारके कारण घटकर भी जो पुण्य है उसका फल पा रहा है । अब जो कर रहा है उसका निकट काल मे ही फल पा लेगा । एक इस वस्तुपरिणमनकी दृष्टिसे जिस योग्यता वाला पदार्थ है, जिस योग्य निमित्तको पाकर रूप परिणमन कर सकता है उस रूप यह सब विभाव व्यवस्था बन रही है । हाँ हितदृष्टिसे देखो तो खोटी बातका नाम अन्याय है । उसके करनेसे न स्वका हित है और न परका हित है ।

स्वपरहित भावना— यहाँ इससे हमे यह शिक्षा लेनी है कि हम जैसा परिणाम करते हैं उसका फल उस रूपसे हमे अवश्य भोगना होगा । अत हम सबका हित सोचे । शत्रु के प्रति भी यही भावना करे कि हममे सद्बुद्धि जग जाय, यदि ऐसी बात हो गयी तो फिर वह शत्रु न रहेगा, फिर अडचन क्या रही ? सद्बुद्धि वही जगती है ऐसी ही कोई बात है । हठ हो तो उस शत्रुके विनाशका हो । एक प्रत्याक्रमणके प्रसगमे ज्ञानी विरोध भी करता है, फिर भी भीतर छिपी हुई अन्तर्वृत्ति यह ज्ञानीके सदा रहती ही है कि इसके सद्बुद्धि जग जाये तो अच्छा है । इस मुकाबले कि अपेक्षा हम अज्ञान भाव रक्खे, विषयकषायोके परिणामकी वृत्ति रक्खे तो उसके फलमे नियमसे दुर्गति भोगनी होगी । इस अनित्य भावनाके प्रसगमे यह बताया जा रहा है कि जिन अनित्य विषयोके खातिर तू अपने भाव बिगाडता है ये भी साथ न रहेगे और तुझे ये नरकादिक दुर्गतियोके दु ख भोगनेके कारण बन जायेगे ।

वह्नि विशति शीतार्थं जीवितार्थं पिवेद्विषम् ।
विषयेष्वपि य सौख्यमन्वेषयति मुग्धधी. ।।७५।।

विषयोंमें सुखके अन्वेषणकी मुग्धता— जो मूर्ख, जो व्यामोही पुरुष पञ्चेन्द्रियके विषयोके सेवनमे सुख तलाशते है वे ऐसा काम कर रहे है जैसे कि कोई अपनेमे ठड लानेके लिये, शीतलता लानेके लिये आगमे कूद जाये । चाह तो उसकी यह थी कि मेरा

संताप बुझे, मुझमे शीतलता आये, लेकिन प्रयत्न किया आगमे कूद जानेका। तो ऐसे पुरुषको आप मूढ ही तो कहेंगे, ऐसे ही लोग चाहते तो हैं कि मुझे आनन्द मिले और उसे आनन्दकी आशासे पञ्चेन्द्रियके विषयोंकी दाहमें कूद जाये तो फल इसका क्या होता है ? संताप। अब भी संताप, आगे भी संताप, जन्ममरणकी परम्पराकी वृद्धि और जैसे कोई पुरुष बहुत काल जीनेकी इच्छासे विषको पी ले तो यह उसकी कितनी उल्टी चाल है ? ऐसे ही सुख पानेके लिये जो पञ्चेन्द्रियके विषयोंका सेवन करते हैं, विषय विषपान का पान करते हैं तो यह भी उनकी कितनी मूढता है ?

त्याग वृद्धिमे सुखकी संभावना—हे आत्मन् ! विपरीत बुद्धि करनेसे सुख न मिलेगा, किन्तु सुखके बजाये दुःख ही मिलेगा। एक आदत ऐसी बनावो, प्रकृति ऐसी बनाओ कि विरक्तिकी ओर झुकी हुई दृष्टि रहे और परिग्रहोकी ओरसे ममताका परिणाम न रहे। कुछ अपनी आदत बनावो इन परिग्रहोके त्यागकी, और यह आदत रोज-रोज बनें। धन, वैभव जोडते जायें, जोडते जाये और किसी समय २०-२५ हजार दानमे लगा दिया। अरे इसकी अपेक्षा तो रोज-रोज कुछ न कुछ दान करते रहते तो रोजकी उदारताका पुण्य बंध होता और शान्तिकी पात्रता रहती। सबकी प्रकृति होनी चाहिये कुछ त्याग-रूप। दीन दुःखियोंकी सेवामे लगे, विद्यार्थियोंके विद्याध्ययनमें लगे, किसी प्रकारकी धर्म की प्रभावनामें लगे, ऐसी आदत त्यागकी सबमें कुछ न कुछ होनी चाहिये। इस त्यागकी आदतसे इस ममता डाइनकी शिथिलता होनेमे बड़ी सहायता मिलेगी। बजाय विषय विष सेवनके त्यागकी ओर दृष्टि बने तो शान्तिका मार्ग मिल सकता है।

कृतं येषां त्वया कर्म कृतं श्वभ्रादिसाधकम्।
त्वामेव यान्ति ते पापा वञ्चयित्वा यथायथम्॥७६॥

पापोंके फलका खुदके ही भोक्तृत्व—हे आत्मन् ! जिन प्राणियोके लिये तू नारकादिक दुःखोके देनेमे समर्थ पापकर्मोंको करता है सो वे पापी लोग तो जिनके लिये तूने पाप किया वे सब ही धोखा देकर अपनी-अपनी गतिको चले जायेगे। उनके लिये जो तूने पाप कर्म किया, उसका फल तो केवल तुझे ही अकेला भोगना पड़ेगा। नरकोमे जो विवेकी नारकी होते हैं, अवधिज्ञान बलसे पूर्वभवकी बातोंको भी जान जाते हैं वहाँ भी इन भावनाओको भाते है बिना क्रम, बिना नामके अपने सच्चे हृदयसे। मैंने जिन कुटुम्बियोके लिये अनेक पापकार्य किये वे कुटुम्बीजन यहाँ एक भी मेरे साथी नहीं हो रहे हैं। उन पापकर्मोंका फल यहाँ मुझे अकेले ही भोगना पड रहा है। वस्तु है सब एक दूसरेसे न्यारी-न्यारी किन्तु अपने स्वरूपसे तन्मय है। जो जीव अपने इस यथार्थ स्वरूपकी श्रद्धा

नही रखते है वे बाहरी पदार्थोकी परिणतियोंमें नाना कल्पनाएं बनाते और दुखी होते रहते है।

अपनी सभालका अनुरोध—हे आत्मन्! अपने आपको सभाल। कोई खोटा आचरण न बने इसकी सावधानी रख। यही सर्वोत्कृष्ट विभूति है। देखिये यह एक नीति बहुत प्रसिद्ध है कि तेरा धन, वैभव यदि गुम गया, मिट गया तो समझ कि तेरा कुछ नही गया। यदि शरीर निर्बल हो गया, अति राज रोगसे ग्रस्त हो गया, एकदम शक्तिहीन हो गया तो समझ कि तेरा कुछ-कुछ गया और यदि तेरा पापोसे भरा दिल बना तो समझ ले कि सब कुछ चला गया। हे आत्मन्! तू सर्वपरिस्थितियोमे-केवल अकेला ही अपना जिम्मेदार है। ये सब मायामयी रंग हैं जो देखनेमे सुहावने लगते है, भीतरमे मोहवश बड़े रमणीक लगते है पर है सब तुझसे अत्यन्त भिन्न, जितने कि अन्य पदार्थ है अत्यन्त भिन्न हैं। कर्त्तव्य तो अपना परिस्थितिके अनुकूल करे लेकिन इस समझसे कभी बेहोश मत बने कि मेरा तो केवल मै ही आत्माराम हू। जिस प्रकारकी भावना बनाऊं, जैसी मैं परिस्थिति बनाऊं वैसा मैं अपने आपको आनन्द-धाममे अथवा निकृष्ट धाममे ले जा सकता हूँ।

अन्यके द्वारा सहायताकी असभावना—मेरा सर्वत्र मैं ही हूँ, मेरा भविष्य मेरे पर ही निर्भर है, ऐसा जानकर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी भावनासे अपने आपको पवित्र बनाये, मोक्षमार्गके पथिक बने। इन मायारूप परिजन इष्ट मित्रादिकके लिए अथवा उनमे अपना मन बहलानेके लिए अथवा उनसे भोग सम्पादनके लिए तू तृष्णा मत बना, उनकी आशा और उनमे आसक्ति मत कर। जिनके लिए तू इतने कार्य कर रहा है वे तुझको धोखा देकर अपनी गैल जावेंगे और तुझे उन सब पापकर्मोका फल अकेले ही भोगना पडेगा।

अपने परिणामसे कर्मका सचय और भोक्तृत्व—एक जगह एक सेठने प्रश्न किया था कि हम अन्याय करके असत्य व्यवहार करके, अनेक लोगोको धोखा देकर इतना द्रव्य कमाते है तो उस द्रव्यको जो-जो लोग खाते है, जिन-जिनके काम वह धन आता है अर्थात् परिवारके सभी लोगो को उन सबका पाप बंट जाता होगा ना? इसका उत्तर तो बहुत सीधा है। उत्तर दिया गया कि तुम्हारे अन्यायको, धोखेबाजीको कुटुम्बीजन यदि जानते हो कि यह इस प्रकारकी कमाई है और उसका उपयोग करते हो तो उन्हे पाप लगेगा, मगर वह पाप बढकर न लगेगा। तुम्हारा तो तुम पर पूरा ही पाप लगेगा, वे कुटुम्बीजन यदि जान बूझकर उसे भोग रहे है, प्रोत्साहन दे रहे है तो वे अपना पाप और अलग बाधेगे। कदाचित् किसी, कुटुम्बीको इस बातका बिल्कुल भी पता

न हो कि यह धन धोखा देकर कमाया गया है, अन्याय करके उपार्जित किया गया है और वे उस धनको भोग रहे हों तो उन्हे उसका पाप न लगेगा। खैर, उससे यह शिक्षा लेनी चाहिए कि हम जो कुछ करते है उस करनीके जिम्मेदार हम ही है ऐसा निर्णय रखते हुए अपना कदम बढाये।

अनेन नृशरीरेण यल्लोकद्वयशुद्धिदम्।
विवेच्य तदनुष्ठेय हेयं कर्म ततोऽन्यथा ॥७७॥

पावन कर्मकी अनुष्ठेयता—इस प्राणीको चाहिए कि इस मनुष्य-देहसे ऐसा काम करे जो इस लोकमे और परलोकमे शुद्धता प्रदान करे और शान्ति प्रदान करे। शुद्ध और शान्त कार्यके अतिरिक्त अन्य कार्य तो हेय है। आत्मकल्याणकी बात चित्तमे समाना और आत्मकल्याणके ढगसे अपने आपको प्रवर्तना, यह दृष्टि आ जाय तो आत्मकल्याण सुगम है अन्यथा बहुत कठिन बात है। विषयकषायोके रगमे चिरकालसे रगा हुआ पुरुष विषयोकी ओर ही झुकता है। इसे विषय और कषायोमे ही सुख प्रतीत होता है।

आहारमे पाशविक वृत्ति—अहो! ऐसे दुर्लभ मानवशरीरको पाकर यह बेचारा कर्मप्रेरित प्राणी क्या करे? इसकी जिन्दगी तो पशुवोके समान विषयोमे लगी पगी चली जा रही है और ये मनुष्य पशुवोसे भी निम्न श्रेणीकी वृत्तिको अपनाए हुए हैं। कोई पशु हिसा करे अपना पेट भरनेके लिए तो दो चार जीवोको मार लेगा, पर यह नरपशु एक अपनी इज्जत बढानेके लिए दुनियामे मायावीजनोसे अपनेको एक खासा कहलवाने के लिए मात्र हजारो और लाखो मनुष्योका विध्वस करा देता है, यह जिन्दगी पशुवोसे भी निम्न श्रेणीकी है ना? पशुजन तो पेट भर जाने पर आहार भी नही किया करते, कुछ भी सतोषके योग्य उनका उदर भरा हो तो बहुत बढिया घास आदिक जो उनका भोजन है सामने भी रखा हो तो उसकी ओर दृष्टि भी नही देते है, किन्तु इस मनुष्यकी तृष्णा विलक्षण है। भर पेट भोजन किया है फिर भी यदि कोई रसीली चीज, चाट चटपटीकी चीज सामने आ जाय तो कुछ न कुछ खा लेनेकी जगह निकल ही आती है। पशु, पक्षी प्राय रात्रिको नही खाते, कोई बिरला ही अत्यन्त भूखा हो तो वह खा लेता हो तो हमे पता नही, पर देखा नही गया, किन्तु इस मनुष्यको न रात, न दिन जब चाहे, जैसा चाहे भोजन बना हुआ है उसे खा लेते है।

भय व मैथुनमे पाशविक वृत्ति--पशु, पक्षी भय तभी मानते हैं जब उन पर कोई डडा उठाकर आये, लेकिन यह मनुष्य गद्दा, तक्की पर बैठा है, बड़े शीतल कमरेमे है, कई नौकर हैं, सब कुछ ठाट है लेकिन ऐसी जगह बैठा हुआ भी इतना भयशील है कि

उसका चित्त ठिकाने भी नही है। क्या-क्या कल्पनाएं करता है, क्या-क्या शकाएं बनाता है? उनको विशेष क्या खोलना, सबको कुछ न कुछ उन कल्पनावोंके बारेमे परिचय है। ये पशु तो किसी नियतकालमे मैथुन वृत्तिमे प्रवृत्त होते है किन्तु मनुष्यके लिए कोई काल नियत है क्या ? ऐसी एक बात नही, मुकाबला करके देख लो तो यह धर्महीन मनुष्य पशुवोसे भी अधिक निम्न श्रेणीका पुरुष है।

दुर्लभ नरदेहको व्यर्थ न गंवानेका अनुरोध—ऐसे दुर्लभ मनुष्य शरीरको पाकर हे प्राणी! तू ने व्यर्थ खो दिया। कितना अमूल्य हीरा, रत्न पाकर कौवोको उड़ानेके लिए फेंक देता है, समुद्रमे गिर जाता है, ऐसे ही इस मनुष्य शरीर रत्नको एक रौद्र ध्यानके लिए, एक विषयभक्षण के आनन्दके लिये तूने यो ही गंवा दिया। अब तू ऐसा ही कार्य कर जो इस लोकमे भी शुद्धि शान्ति प्रदान करे और परलोकमे भी शुद्ध शान्ति प्रदान करे।

वर्द्धयन्ति स्वघाताय ते नूनं विषपादपम्।
नरत्वेपि न कुर्वन्ति ये विवेच्यात्मनो हितम् ॥७८॥

स्वघातवृत्ति—जो मनुष्य इस नरदेहको पाकर भी भेदविज्ञान नही करते, विवेक विचार नही बनाते, आत्माका हित नही करते वे पुरुष अपने ही घातके लिये विषवृक्षको बढाते है। पापकार्य सब विषवृक्षकी तरह हैं। जैसे विषवृक्षका फल प्राणियोको मारने वाला होता है इसी प्रकार इस पापकार्यका फल जीवका, प्राणियोंका हनन करने वाला होता है। विविध देहोंमें भटका कर ससारके क्लेशोको देनेका कारण होता है। जब बुरे दिन आते है तो अपना ही वैभव अपने घातके लिये हो जाता है। उदय प्रतिकूल हो तो वही वैभव प्राणनाशका कारण बन जाता है। कोई लोग तो डाकुओके द्वारा सताये जाते है और घात किये जाते है, कितने ही रागीजन अपनी ही कल्पनाओसे अपने दिलको कमजोर बनाकर हार्टरोगके रोगी हो जाते है और उनका हार्ट फेल हो जाता है, गुजर जाते हैं। जब प्रतिकूल समय होता है तो वह प्राप्त समागम भी इस जीवके घातका कारण बनता है।

पापविरत होनेका शिक्षण—समस्त पापकार्य विषवृक्षके समान है, उनके ही फलमे ये अनेक उपद्रव भोगने पडते है। क्या विश्लेषण किया जाय, पाप किया और उसका फल तुरन्त भोगना पडता है। कोई जाने अथवा न जाने, पाप कार्यके समय जो क्षोभ होता है, कायरता जगती है, कल्पनाएं बढती है उन खोटी वृत्तियोमे तो तुरन्त ही सक्लेश सहना पड़ता है, पापका फल इस जीवको तुरन्त मिल जाता है। फिर जो कर्मबधा पापका

और उसके उदयमे कालान्तरमें फल मिला वह तो उसका एक प्रकारसे वृद्धिरूप समझिये अर्थात् ब्याज समझिये। तुरन्त भी दु खी हो और भविष्यकालमे भी दु·खी होना पडता है। अतएव हे कल्याणके इच्छुक पुरुष ! तू अपना घात अपनी प्रवृत्तिसे मत कर। एक शुद्ध निज-स्वरूपकी दृष्टि कर। तेरा मात्र तू ही है, तू अकिञ्चन् है, तेरा स्वरूप प्रभु-स्वरूपकी तरह ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण है। अपने स्वरूपको सभाल इस सावधानीसे सासारिक कष्टोके सहनेकी सामर्थ्य प्रकट होगी और उन कष्टोके समय निज स्वरूपकी दृष्टिसे विचलित न होगा तो मुझे मोक्षमार्ग मिलेगा, अपूर्व आनन्द होगा, निकट कालमे ही समस्त सकटोसे छुटकारा पा लेगा। तू अपने ही घातके लिये विषवृक्षकी वृद्धि न कर। भेदविज्ञान करके अपने स्वरूपको लक्ष्यमे लेकर अपने हितको किये जा।

यद्देशान्तरादेत्य वसति विहगा नगे।
तथा जन्मान्तरान्मूढ प्राणिन कुलपादपे ॥७६॥

पक्षियोकी तरह अत्यल्प काल तक एकत्र निवास—अनित्य भावना के इस प्रकरण-मे प्राप्त समागमोकी अनित्यता बतायी जा रही है। जैसे अन्य देशोसे आकर पक्षीजन एक पेड पर बस जाते है इसही प्रकार जन्म-जन्मान्तरोसे आ आकर ये प्राणी एक इस वशवृक्षमे इकट्ठे हो जाते है। हे मूढ ! थोडी देरके लिये एक जगह इकट्ठे हुये इन परजीवोमे तू आसक्ति करता है और इन्हे मान लेता है कि ये सब मेरे है, इस मोह बुद्धिसे तू अब उनके वियोगकालमे अत्यन्त दु खी होता है, कष्ट भोगता है। जैसे वे पक्षी अपने ही आरामके लिए अपने ही आप एक पेड पर इकट्ठे हो जाते हैं और जैसे ही सवेरा होता है तो अपने आहारकी खोज के लिए वे उस वृक्षको छोडकर अपने इष्ट देशोको चले जाते हैं ऐसे ही ये ससारके प्राणी जैसा जिसने वाञ्छाका निदान बाधा, पुण्य पाप किया उस कर्मके अनुसार आ आ कर एक कुल गृहमे इकट्ठा हो जाते है और फिर आयुके क्षय होनेपर अपनी-अपनी बाधी हुई आयुके अनुसार उस-उस गतिको चले जाते है। इन आने जाने वाले प्राणियोमे हे प्राणी ! तू मोह को प्राप्त मत हो। यथार्थ बातकी समझ रख।

पशु पक्षियोमे भी अलभ्य मानवीय मोहवृत्ति—ये पक्षीजन तो फिर भी चुपचाप आते है, पेड़पर बैठ जाते हैं। उन्हे किसी पक्षीसे किसी प्राणीसे विशेष राग नही है, कभी किसी पक्षीके पास बैठा है तो थोडी ही देरमे उडकर किसी पक्षीके निकट बैठ गया, कभी किसी डालीपर बैठ जाता है तो फिर थोडी देर बाद किसी डालीपर बैठ गया। वैर विरोध भी इनके कुछ नही है। कभी कोई दूसरा पक्षी उस स्थानपर आये तो थोड़ा विरोधसा जचता है किन्तु वह तो एक प्राकृतिक ढग है, लेकिन ये मनुष्य-जन एक जगह होकर इतना

जाती है, फिर भी यह स्थिर रहे ऐसी इच्छा करता है। इस श्लोकमें आयु और जवानी की अनित्यता पर विचार किया है। अजुली अगुलियोकी गोल कटोरीको कहते है। जैसे उसमे रखा हुआ पानी झरता जाता है ऐसे ही इस देहमे बसे हुए जड, साथ लगे हुए ये आयुकर्म, इनके निषेक प्रतिक्षण झरते जाते है और जैसे कोई बात घटे तो अंजुलीका पानी एकदम भी झर जाता है ऐसे हो आयुकर्मकी उदीर्णा चले तो आयुकर्म सबका सब अन्त-र्मुहूर्तमे ही झड जाता है। ऐसा तो है आयुका चरित्र। जिस आयुकी जीव वाञ्छा करते है, प्रत्येक जीव जीना चाहते हैं, एक नरकगतिक ही जीव ऐसे है जो जीना नही चाहते हैं, पर शेष सभी ससारी जीव अपना जीवन चाहते हैं। मरणका भय रहता है, आयुके विनाशको नही चाहते। लेकिन यह आयु किसीके रोके नही रुकती है। कैसी भी कोई कलायें बनाये, पर किसीकी आयु स्थिर नही रह सकती है। लेकिन यह मोही प्राणी उस आयुको स्थिर करना चाहता है।

यौवनकी अस्थिरता—यौवन भी क्षणविनश्वर है। यौवन क्षण मात्रमे ढलक जाता है। जवानीके वे १० वर्ष जिनमे युवावस्थाका जोर रहता है कैसे निकल जाते है ? कुछ पता नही पडता। जैसे कमलिनीके पत्र पर पडी हुई बूंदे ढलकती रहती हैं, वे स्थिर नही रह पाती, इस ही प्रकार यह यौवन किसीके स्थिर नही रह पाता, किन्तु मोही प्राणी इस यौवनको सदा स्थिर रखना चाहते है। जो जीवका किया हुआ हो सकता है उसे तो जीव करना नही चाहता और जिस पर इस जीवका अधिकार नही है, निमित्तनैमित्तिक योगसे हो रहा है, ऐसी अनहोनी बातका जो इसके अधिकारमे नही है उसकी यह इच्छा कर रहा है।

जीवके वशकी बात—जीवका वश है अपने आपके सहजस्वरूपकी भावना और सहजस्वरूपमे मग्न होने पर। इसमे किसी भी परवस्तुकी आधीनता नही है। पैसा हो तो हम अपने इस आत्मधर्मको कर सके ऐसी होड़ नही है। बल्कि पैसो पर दृष्टि हो तो यह जीव आत्मधर्मको कर भी नही सकता है। इतना सुगम और स्वाधीन निज सहज काम तो इस जीवको कठिन लग रहा है और जिस पर अपना अधिकार नही वैभव जब आए, जितना आए, जैसा आये जब जाय, जैसा जाय, जाय। जिस पर जीवका अधिकार नही उसको यह स्थिर करना चाहता है। यह भी सबसे बड़ी कठिन समस्या है। यह विपदा जीव पर है। हे आत्मन् ! यदि आत्म-शान्ति चाहते हो तो अब निज सहजस्वभावके ग्रहण रूप स्वाधीन सुगममे लगो।

मनोज्ञविषयै. सार्धं सयोगाः स्वप्नसन्निभाः।
क्षणादेव क्षय यान्ति वञ्चनोऽद्भुतवैभवः ॥८६॥

विषयोंकी कल्पितता व क्षणक्षयिता—ये मनोज्ञ विषय जिनके साथ यह थोडा सयोग हो रहा है यह सब सयोग स्वप्नके समान है। क्षण मात्रमे नष्ट हो जाता है। जिसकी बुद्धि ठगनेमे उद्यत है ऐसे ठगो की नाई ये विषय भोग समागम थोडे काल चमत्कार दिखाकर फिर इस जीवका सर्वस्व हरण करने वाले हैं। इन इन्द्रिय विषयोके प्रति इस श्लोक मे दो बातें दर्शायी हैं, एक तो यह कि इन विषयोका सम्बन्ध इनकी प्राप्ति स्वप्नके समान है। जैसे कोई जोव स्वप्नमे जो चाहे वैभव निरखता है, पर वह वैभव सब इस जीवको वहा प्राप्त नही है, केवल एक स्वप्नमे दिख रहा है, जग जाने पर फिर वह वैभव कहा रहता है और उस स्वप्नके कारण जग जानेपर भा इसे क्लेश भोगना पडता है। जैसे स्वप्न मे वडा वैभव दीखा, निद्राभग हुई, अव उस वैभवके न दिखनेसे यह कुछ तो कष्ट मालूम ही करता है। चाहता है कि पहिले जैसी नीद फिर आ जाय और वही वैभव फिर मुझे मिल जाय। तो जैसे स्वप्नमे वभव है नही, केवल कल्पित है, इसी प्रकारसे ये विषय समागम कुछ तत्त्वभूत नही हैं, केवल एक कल्पित हैं। एक बात तो विषयोके सम्बन्धमे यह बतायो, दूसरी बात जिसका विषयोके सम्बन्धमे सकेत किया है उसे सुनिये।

विषय ठग—ये विषय महा ठग हैं। जैसे ठग लोग कुछ थोडासा वैभव दिखाकर, कुछ फुसला कर, कोई आशा दिखाकर अथवा कुछ लोभ देकर अन्तमे उस व्यक्तिका सर्वस्व हर लेते हैं इसही प्रकार ये विषयभोग इस जीवको कुछ-कुछ चमत्कारसा दिखाकर कुछ बड़प्पनसा दिखाकर अन्तमे इस जीवका सर्वस्व हर लेते है। जिसका ज्ञान हरा गया उसका सर्वस्व हरा गया। जिसका श्रद्धान बिगड गया उसका सर्वस्व बिगड गया। ये इन विषय भोगोके समागम केवल दुःख ही दु ख बनाते है और इन विषय सुखोके प्रसगमे सुख तो राइ भर होगा किन्तु दु.ख मेरूपर्वत बराबर है। इस ससारमे कौनसी स्थिति ऐसी है जिसमे रहकर हम सुखी रह सकें? यह ससरण ही समस्त दु खमय है। तो ठगियोकी ही भाति ये विषयसमागम कुछ थोडा सुख, थोडा मनोरञ्जन यश, नाम, कीर्ति आदिककी कुछ कल्पित घटना ऐसी कुछ कल्पित ऋद्धिया बता-बताकर इस जीवका सर्वस्व हर लेते हैं। विषयोकी आसक्तिसे इस जीवका ज्ञान स्थिर कहाँ रह पाता है?

जीवका स्वास्थ्य—जीवका स्वास्थ्य तो अथवा जीवका परमप्रयोजन तो सदाके लिए अपने आपमे स्थित हो जाने मे है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य ही इस जोवका परम स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य आत्माका आत्मामे स्थित हो जाना ही है। ये भोग स्वास्थ्य नही हैं क्योकि प्रथम तो ये उपभोग क्षणिक हैं फिर और तृष्णाके सम्बन्ध होने से इन भोगोके

प्रसग मे शान्ति नही रहती। अत. एक आत्माका आत्मामे आत्मस्वरूपका दर्शन होना और इसमे ही सन्तुष्ट रहना, प्रसन्न रहना, इसे ही अपना मानना, ऐसा जो ज्ञानप्रकाश है वह ज्ञानप्रकाश ही इस जीवके हितरूप है। ऐस जानकर हे मुमुक्षुजनो! इन असार भोगोके लिए आसक्त मत होओ, इन्हे सारभूत मत समझो। इनसे विरक्त होकर अपने आपमे ही लीन होनेका यत्न करो।

घनमालानुकारीणि कुलानि च बलानि च।
राज्यालङ्कारवित्तानि कीर्तितानि महर्षिभिः ॥६०॥

राज्यादि वैभवोंकी तरह क्षणभंगुरता—महर्षिजनो ने इतनी चीजोको मेघमालाकी तरह देखते-देखते विघट जाने योग्य बताया है। एक तो कुल मायने कुटुम्ब। सभी जो वयस्क लोग है, उन्हे स्वय आखो देखा है वे कुटुम्बीजन, पुराने लोग देखते-देखते ही विलीन हो गए है। यदि किसी घरका कुटुम्ब बना ही रहता, मरण न करता तो आज वह कहा समाता? पर ऐसा होता ही नही। जो जन्म लेता है वह नियमसे मरण करता है।

ज्ञानीके मरणभयका अभाव—मरण तो अचानक कभी हो सकता था, लेकिन मरणकी कल्पना मनमे आते ही यह जीव भयभीत हो जाता है। आज यह सोचता है कि कही मैं २-४ वर्षके भीतर ही गुजर गया तो क्या होगा और यह नही जानता कि यदि मैं आजसे १०-२० वर्ष पहिले ही गुजर गया होता तो क्या होता? ज्ञान तो वह है जिसमे यह ज्ञानी-पुरुष सदा मरनेके लिए उद्यत है अर्थात् मृत्यु आती हो तो आये, यह मैं अपने इस शुद्ध अमूर्त ज्ञानस्वरूप निज अतस्तत्त्वको सभाले रहूं तो मेरा कुछ अहित नही है ऐसा साहस रखता है और मरणका भय नही करता है यह। मैं पूराका ही पूरा हू, पूरा ही था, पूरा ही रहूंगा, इसमे किसी दूसरे द्रव्यका कोई वश नही चलता, उसका कोई खण्ड नही कर सकता। खण्ड करना तो दूर रहा, उसका कोई स्पर्श भी नहीं कर सकता। इस बातका जिन्हे ध्यान नही है और वाह्य चीजोमे ही जिनकी बुद्धि प्रवर्त रही है वे पुरुष कुटुम्बसे मोह करके अपने आपको दु.खी किया करते है—हाय! यह नही रहा, यह मर गया। अरे मर गया तो क्या हुआ, खुदको भी तो कभी मरना है। यह कुल, यह कुटुम्ब, यह समागम मेघमालाकी तरह देखते-देखते विघट जाने वाले हैं।

बलकी विनश्वरता—इसी प्रकार यह देहबल, शरीरकी शक्ति यह भी देखते-देखते ही विघट जाने वाली है। कभी बढ गया, कभी घट गया, क्या स्थितियां होती है? जो आज वृद्ध हैं वे कुछ थोड़े ही समय पहिले बालक अवस्थामें रहकर आजके बालकों

से भी ज्यादा कूदफांद करते थे। आजके बालकोमे क्या शक्ति है? जो इन बूढ़ोके बचपनमे शक्ति था। कैसा कूदते फांदते अपने बलका प्रयाग करत थ। आज स्थिति यह है कि खुद खडा नही हुआ जाता, खुद लेटा नही जाता। बलकी क्या हालत है, जिसे आज बल मिला हुआ है यह बल भी इस जीवनमे रहनेका नही है, यह भी मेघमालाकी तरह देखते-देखते नष्ट हो जाता है। ये राज्य, वैभव, ऐश्वर्य, कीर्ति, प्रतिष्ठा ये सब भी मेघमाला की तरह विनष्ट हो जाते हैं।

कीर्ति समृद्धिकी असारता—मानलो कदाचित् कीर्ति फैल गयी तो लोग १०-२० वर्ष तक गुण गा लेंगे और गा ले लोग कुछ वर्ष तक तो इससे जीवको क्या मिला? यह तो अपने परिणाम और अपने भाग्य के अनुसार अपने आपका ही कर्ता भोक्ता होता है। कौन किसका क्या कर देता है? जिन समृद्धियोके पीछे उपयोग जुटाकर, तृष्णा लाकर, आशा बनाकर अपने आपके प्रभुका घात किया जा रहा है, ये वैभव समृद्धियाँ दु खके कारण तो बनेंगे पर शान्तिके कारण नही बन सकते।

विनश्वरमे विनश्वरकी अदृष्टिसे हानि—यह वैभव धन सम्पदा दिखते-दिखते विनष्ट हो जाने वाली चीज है। धनका बढ जाना भी बडा दु खकारी है। जितना अधिक धन होता है विघटने पर उतना ही अधिक उससे क्लेश होता है। कम धनके विघटने वाला तो शीघ्र ही सन्तोष कर लेगा, पर अधिक धनके विघटने वाला तो उसके पीछे बहुत दु खी होगा। अरे धन वैभव न रहा, न सही, यह तो घनमालाकी तरह देखते-देखते ही विलयको प्राप्त हो जाता है। लेकिन यह मोही प्राणी इन क्षणिक पदार्थों मे व्यर्थ ही नित्यपनेकी बुद्धि करता है। यह मुझे मिला है, मैं इसे ऐसा व्यवस्थित बनाऊंगा, यह मेरे साथ सदा रहेगा, यो नाना कल्पनाएं करके यह जीव दु खी हो रहा है।

फेनपुञ्जेऽथवा रम्भास्तम्भे सार' प्रतीयते।
शरीरे न मनुष्याणा दुर्बुद्धे विद्धि वस्तुतः ॥६१॥

शरीरमे सारका नितान्त अभाव—हे अज्ञानी पुरुष! अज्ञानमे ही दौड मत लगा। कुछ थम और कुछ परख। देख फेनके पुञ्जको नि सार बताया गया है। उसमे भी सार प्रतीत होता है, किन्तु देहमे कुछ सार नही है। तालाबके किनारे पर पानीके फेनका जो ढेर इकठ्ठा हो जाता है वह पुञ्ज नि सार माना जाता है। यो समझ लो—जैसे जब दूधको बहुत उछालते हैं एक गिलाससे दूसरे गिलासमे तो आधा गिलास ऊपर फेनका उठ जाता है, उसको जब खाये पियें तो मु हमे क्या रहता है, फिर भी वह दूध फेन हैं, खानेसे कुछ तो उसका स्वाद आयेगा लेकिन पानीका फेन जो तालाब और नदीके

और खेदकी बात क्या बतायी जा सकती है ? सदुपयोग करो, जो दुर्लभ चीज मिली है उसका ऐसा उपयोग करो जिससे उत्कृष्ट मार्ग शान्तिपथ प्राप्त हो जाये।

सुखोकी क्षोभमयता—भैया ! यहाके सुखोमे क्या छटनी करना कि मुझे ऐसा सुख मिले। सभी सुख क्लेशरूप है, क्षोभरूप हैं। जैसे साप का नाम बदल देनेसे कही विषमे बदल तो न हो जायेगी। चाहे सापनाथ नाम रख लो, चाहे नागनाथ नाम रख लो। नाम तो नागनाथ बडा अच्छा है, पर ऐसा बढिया नाम रख लेनेसे उसके विषमे अन्तर तो न आ जायेगा। ऐसे ही ये सुख हैं। कल्पनावश इनका कुछ नाम रख लीजिए। धनी होना, वैभवका सुख, स्त्रीका सुख, यशका सुख कुछ भी नाम रख लीजिये, कैसी ही कल्पनाएं कर लीजिये उससे इस सुखके भोगनेमे जो क्षोभ कारण है, क्षोभ परिणमना है और क्षोभफल है उसमे अन्तर नही आ जाता। कैसा ही सुख भोगो उसका पहिले क्षोभ होता है। भोगनेके कालमे क्षोभ होता है, भोग भोगनेके बादमे क्षोभ होता है। इस सुखमे रति करना योग्य नही है।

अचानक मरणके निर्णयसे धर्मपालनका उत्साह—किसीने अपने बारेमे किसी दिन की मृत्युका निर्णय किया है क्या कि अमुक दिन मरेंगे ? अरे मृत्यु तो जब भी होगी अचानक होगी। तो उस अचानककी बात कुछ नियत है क्या ? अचानक तो अचानक ही कहलाती है। नीतिकार भी कहते है कि देखा भाई ! यदि तू धनकी कमाई चाहता है तो अपनेको ऐसा सोच कि हम तो अजर अमर हैं, बहुत काल तक जिन्दा रहेंगे और समर्थ रहेगे। यदि ऐसा सोच बैठा कि हम तो शायद कल सुबह भी न रहे, मृत्यु हो जाय तो धन कैसे कमायेगा ? जिसे धन कमाना हो वह अपनेको अमर माने। इसी प्रकार जिसे विद्या सीखनी हो तो वह भी अपनेको चिरजीव माने। लो अभी कोई गणितका या किसी विषयका हम अभ्यास करनेको है और उसी समय ख्याल आ जाये कि हमारी मृत्यु तो घटा भर बाद भी हो सकती है तो वह इस विद्याको कैसे पढगा ? विद्या का अर्जन करनेके लिये और धनका अर्जन करनेके लिये अपनेको चिरजीव मानना होगा तब वह यत्न होगा। चाहे कभी गुजर जाये, वह बात अलग है लेकिन धर्मपालन वही पुरुष कर सकेगा जिसके चित्तमे यह समाया हो कि मृत्युने तो मेरा केश ही पकड रक्खा है, किसी भी मिनट यह मृत्यु मेरे केशोको झटक सकती है अर्थात् मृत्यु हो सकती है, ऐसा जिसका निर्णय हो वह पुरुष धर्मका पालन कर सकता है।

परपदार्थो की विनश्वरताके निर्णयसे धर्मकी ओर झुकाव—परकी बात भी ऐसी ही देखिए। ये बाह्य समागम अनित्य है, किसी भी क्षण किसी भी ढगसे विघट सकते है, ऐसी

श्रद्धा हो परवस्तुवोमे तो वह तो उनसे उपेक्षा करके धर्मपालनमे लग सकता है। अनेक घटनाएं ऐसी देखी जाती हैं—प्रभात समयमे तो खुशी मान रहे है और उस ही दिन वही पुरुष थोडी देर बाद अत्यन्त दुःखमे ग्रस्त हो जाते है, यह ससारकी बहुत बडी विचित्रता है।

अत्र जन्मनि निर्वृत्त ये शरीर तवाणुभि ।
प्राक्तनान्यत्र तैरेव खण्डितानि सहस्रश ॥८३॥

वर्तमान देहाणुवोकी पूर्वमे असकृद् बाधकता—हे आत्मन्! इस ससारमे इस समय जिन परमाणुवोसे तेरा यह शरीर बना है उन्ही परमाणुवोने इस शरीरसे पहिले पूर्व भवोमे तेरे हजारो बार शरीरके खण्ड-खण्ड किए है। आज इस पाये हुये शरीरमे इतना अनुराग बनाये हैं। जिन शरीर परमाणुवोसे, स्कधोसे तू इतना अनुराग कर रहा है ये स्कध किसी अन्य जीवके शरीर बन-बनकर तेरा हजारो बार घात कर चुके है अथवा ये ही परमाणु शरीर तेरे ही शरीरके घातक अग बन-बनकर तेरा हजारो बार घात कर चुके है। ये शरीर स्कध भी, शरीरके अग भी राग करने योग्य नही है। यह तो एक शरीरकी बात कही। सभी चीजोमे यही बात घटा लो।

धन परिजन आदि समागमोकी बाधकता—जिस धन, वैभवके लिए तू इतना अनुराग बनाये है यह धन, वैभव तेरे घातका अनेक बार कारण बन चुका है। ये परिजन मित्रजन जिनको तू अपना सुखकारी जान कर जिनसे तू प्रेम कर रहा है ये हो जीव अनेक भवोमे तेरे शरीरके प्राणोके घातक हुये हैं। कौनसा समाज यहा स्नेह किये जानेके योग्य है और यो भी देखिये—पुराने परमाणु तो इस शरीरमे से खिर जाते है और नये परमाणु वहाँ उस बन्धनमे आ जाते है। इस कारण वे ही परमाणु तो शरीरको रचते हैं और वे ही परमाणु इस शरीरको बिगाडते है। शरीरकी यह दशा है और पुराने भवकी बात देखो, इसी ही भवमे अपने ही शरीरके अग अपना ही घात करनेके कारण बनते है। शरीरका ही तो अग है। कोई फोडा हो जाय, या अन्य कोई कठिन रोग हो जाय तो अपना ही अग अपने इस आत्माका ही घात कर देने वाला हो जाता है। तुम किसमे विश्वास करते हो ? किसी परवस्तुका कुछ विश्वास भी किया जा सकता है क्या ? अरे स्वय ही स्वयके विश्वासमे आये तो यह विश्वास हितकर होगा। परपदार्थ चाहे हमे कितना ही अच्छा हो, पर उसका उपयोग होना या उसके प्रतिकूल बनना यह तो हमारे आधीन नही है। परममित्रसे भी मित्रका घात हो जाता है जब भाग्य प्रतिकूल होता है। तुम किस परपदार्थका विश्वास करते हो ? एक निज सहजस्वरूपके श्रद्धानमे ही स्वहित

का विश्वास करे। इस अनित्य समागमोमे मोह और प्रीति न करे।

शरीरत्वं न ये प्राप्ता आहारत्व न येऽणव.।
भ्रमतस्ते चिर भ्रातर्यन्न ते सन्ति तद्गृहे ॥८४॥

शरीराणु व आहाराणुवोकी उच्छिष्टता—हे भ्रातः! इस ससारमे बहुत कालसे भ्रमण करते आये हुये तेरे साथ शरीररूपसे और आहाररूप से अनन्त अणु प्राप्त होते आये हैं। सत्य समझ कि ससारमे ऐसा कोई परमाणु नही बचा जो तेरे शरीररूप न हुआ हो और तेरे आहारमे न आया हो। अर्थात् इस जीव ने अनन्त परिवर्तन किये है। अनादि कालसे यह जीव शरीरोको धारण करता हुआ चला आया है। तब ससारमे जितने परमाणु हैं, स्कध है, ग्रहण योग्य है, उन सबको यह जीव अनन्त बार शरीररूपसे परिणमा चुका और आहार करके ग्रहण कर चुका है।

पुद्गलोकी अनित्यता व उच्छिष्टताका प्रकाश—इस कथनसे दो बातो पर प्रकाश होता है—एक तो यह कि सब अनित्य है। सभी परमाणु तरे ग्रहणमे आये और अब नही रहे, ऐसे ही आज जो परमाणु तेरे शरीररूप है ये भी न रहेगे, विनश्वर है सब कुछ। दूसरी बात प्रकाशमे यह आती है कि तू किसमे ममत्व करता है? यह शरीर जो तुझे आज मिला है ऐसे ऐसे शरीर अनन्तबार तुझे मिले है और तेरे नही रहे, तू किनमे ममता करता है? कुछ दिन रहेगा यह शरीर। उतने दिन जो इसके प्रति ममताका परिणाम है वह परिणाम कितना कर्मोका बन्धन कर रहा है? शरीर तो न रहेगा साथ, पर चिरकाल तक ये कर्म बंधे रहेगे और इससे फिर परिणामोकी परम्परा बनी तो यो ही ससार परिभ्रमण करते रहना पड़ेगा। इस कारण हे भ्रात! तू सच जान कि इस लोकमे ऐसा परमाणु कोई भी नही बचा है जो परमाणु तेरे शरीररूप न हुआ हो और आहारपनेको प्राप्त न हुआ हो। भोगोमे भी मत दृष्टि दे। जो भोगा है आहाररूप या अन्य उपभोगरूप वह सब अनेक बार भोगा जा चुका है, उसमे सारकी बात लेश नही है।

सुरोरगनरैश्वर्यं शक्रकार्मुकसन्निभम्।
सद्य प्रध्वसमायाति दृश्यमानमपि स्वयम् ॥८५॥

ऐश्वर्यकी इन्द्रधनुषवत् क्षणविनश्वरता—इस जगत्मे देव, उरग, मनुष्य इनका ऐश्वर्य भी इन्द्रधनुषके समान अतिचचल है। केवल ये ऊपर से सुहावने दीख पडते हैं परन्तु देखते-देखते ही नष्ट हो जाते है। कभी थोडेसे बादलोमे इन्द्रधनुष दिखाई देता है। कितना वढिया आकारका होता है कि जरा भी लाइन नही बिगडती, कितना सुहावना लगता है? कितना सुन्दर मालूम होता है पर वहा जाकर कोई छूकर देखे क्या है? कुछ

भी नही है और देखते-देखते ही थोडी देरमे नष्ट हो जाता है, विलीन हो जाता है। है वहा कुछ भी नही। कुछ सूर्यका योग्य सन्निधान पाकर इन्द्रधनुषके रंग रूप परिणमनके योग्य बादलोका सद्भाव हो तो उस समय ये स्कध ही उस रगरूप हो जाते है। जो बादल जरासी देरमे बिखरने वाले है, वहा अन्य कुछ बात नही है। कैसा विचित्र परिणमन है ? जो बात किसी पुरुषके समझमे नही आती उसमे निमित्तनैमित्तिकपना कैसा है ? विज्ञानकी बात ध्यानमे नही आती तो लो अमुकने मेरा यो किया है यो कल्पना बना ली जाती है। तो जैसे इन्द्रधनुष देखनेमे ही सुहावना है, अतिचचल है, विलीन हो जाता है, ऐसे हो ये दृश्यमान् समस्त ऐश्वर्य स्वय विलयको प्राप्त हो जाते है।

तीनो लोकोके ऐश्वर्यकी विनश्वरताका निरूपण—इस श्लोकमे ऐश्वर्य बताते समय तीनके नाम लिए गए—देव, उरग और मनुष्य। उरग नाम है यद्यपि नागकुमार जातिके देव, फिर भी उपलक्षणसे सब भवनवासी देव और व्यन्तर देव भी ले लेना चाहिये और इस तरहसे अब इसका अर्थ यह हुआ कि ऊर्ध्वलोकके तो हुए सुरेन्द्र और मध्यलोकके हुए चक्रवर्ती और अधोलोकके हुए भवनवासी आदिक इन्द्र, ऐसे तीनो लोकोके इन्द्रोका भी ऐश्वर्य केवल देखनेमे रम्य किन्तु इन्द्रधनुषके समान चचल, शीघ्र विलयको प्राप्त हो जाता है।

समागत अचेतन पदार्थोकी असारता—अपने-अपने पाये हुए ऐश्वर्यकी भी बात निरखलो। अचेतन पदार्थोमे भी यही बात है। यह वैभव धन मकान ऐश्वर्य, ये सब केवल देखनेमे सुहावने लगते है। ठोस कुछ नही हैं। आत्माको शान्ति पहुँचाने वाले ये कुछ भी नही हैं। ये तो केवल देखनेमे सुहावने लगते हैं पर शान्ति प्राप्त करने लायक इनमे कोई बात नही है। प्राय. ऐसा भी होता कि अपना ऐश्वर्य इतना सुहावना नही लगता जितना कि दूसरेका ऐश्वर्य सुहावना लगता, क्योकि प्राप्त वस्तुमे तृष्णा नही जगती, अप्राप्त वस्तुको तृष्णा हुआ करती है। जो ऐश्वर्य दूसरोके पास जो वैभव अन्य लोगोके अधिकृत है उस पर चाह रहती है, ऐसा और मुझे हो। ये वैभव बाहरसे सुहावने लगते है, यदि वे ही अपने निकट आ जाये तो उतने सुहावने फिर नही रहते। मोहका कितना विचित्र परिणमन है कि प्राप्त और अप्राप्त सभी चीजे इसे सुन्दर जचती है, किन्तु वे सभी चीजे सारहीन हैं, क्षणभरमे ही विलय को प्राप्त हो जाती हैं।

चेतन पदार्थोकी विनश्वरता—चेतन पदार्थोमे देखो पुत्र, मित्र, स्त्री, बान्धव सभी लोग जब कुछ थोडी रागभरी कल्पनामे बढ जाते है तो ये बडे सुहावने लगते हैं। जब कुछ मूढता कम होती है तो उसे स्वयं प्रतीत होता है कि ये सब सारहीन है, इनमे कुछ तत्त्व

नही है । वहां दो ही तो बातें हैं जीव और शरीर । शरीर तो निःसार ही है, हाड, मास, खून, चाम, पसीना, मल मूत्र इन सभी अशुचि पदार्थोका पिण्ड है । रही चेतनकी बात । वे चेतन भी कषायोसे भरे, स्वार्थवासनासे सहित अपनी ही अपनी गरज चाहने वाले, इस प्रकार वे भी पाप मलीमस है । यो वहा भी कुछ सार नजर नही आता । ये सभी वैभव, सभी ऐश्वर्य इन्द्रधनुपकी तरह सारहीन है । वे देखते ही देखते विलयको प्राप्त हो जाते हैं ।

मेघवत् ऐश्वर्यकी क्षणभगुरता—पुराणोंमे आया है कि एक राजा छत पर बैठा हुआ बादलोकी शोभा देख रहा था, तो कुछ बादलोकी टुकडी बहुत बढिया मदिरके आकारकी बनी हुई थी । उसका बहुत ही सुन्दर आकार था । सोचा कि इस नक्शेका मैं एक मदिर बनवाऊंगा, मैं इसका चित्र उतारू । तो वह अकेला ही बैठा था । नीचे आया कागज पेन्सिल फुटा वगैरह चित्र बनानेके सामान लेने । ज्यो ही नीचसे सामान लेकर ऊपर गया देखा कि सारे बादल इधर उधर बिखरे हुए है । बादलो का बना हुआ मदिर विघट गया था । यह दृश्य देखकर उस राजाको वैराग्य हो गया । जैसे ये बादल देखते-देखते ही बिखर जाते है, ऐसे ही यह समस्त ऐश्वर्य देखते-देखते ही विलीन हो जाता है ।

जीवनके सुखका असारपना—भैया ! क्या है जीवनका सुख ? छोटे है, बच्चे हैं, तब उस स्थितिके योग्य कल्पनामे सुख मानते हैं । साथ ही साथ अनेक दुःख भी लगे रहते हैं । मा है, पिता है, दादी है, सब कुछ है, लो थोडे ही दिनो मे वे गुजर गए, अब रोना पडेगा, रो रहे है । इस जीवनमे कितनी ही बार रोना हुआ और कितनी ही बार इसने मौज माना । न यह मौज रहा, न रोना रहा । फिर मौज हुआ फिर रोना रहा । यो मौज मानने और रोनेका चक्र चलता रहता है । इसीके मायने जीवन है । जीवन और क्या वस्तु है ?

सारभूत जीवन—सारभूत जीवन तो वह है जहा ऐसा अटल विशुद्ध ज्ञान उत्पन्न हो जिस ज्ञानके होनेपर धैर्य रहे, गम्भीरता रहे ज्ञाताद्रष्टा रह सकें, क्षोभ न आये, यह हुआ लो यह ठीक, यह न हुआ लो यह भी जान लिया । जैसा जो कुछ है उनके मात्र जाननहार रहे । अपने स्वरूपपर इसका पूर्ण अधिकार रहे ऐसे प्रवर्तनका जो जीवन है धन्य जीवन तो वह है । इन ऐश्वर्यमे मौज मानने वाला जीवन क्या जीवन है ? यह सब शीघ्र ही विनाशको प्राप्त हो जाता है ।

घर देखने जाते है तो वहाँ केवल देखते ही है ना। किसी चीजको उठाते तो नही। यदि किसी चीजको उठाने लगें तो वहाँके कर्मचारी उसे गिरफ्तार करके दण्ड देंगे। ऐसे ही यह संसार पूरा अजायबघर है। इस छोटे से अजयावघरमे तो लोग टिकट लेकर देखने जाते है। अरे उस अजायबघरसे भी बड़ा अजायबघर यह सब ससार है जो आँखो भी दिखता है। आखिर अजायबघरमे यहाँके चित्र विचित्र जीवोको ही तो देखते है। क्या यहा विचित्र-विचित्र जीव देखने को नही मिलते ? वहाँ जो कुछ देखनेमे आता है वह सब है। किसी पर इस दृष्टाका अधिकार नही है। ऐसे ही यहाँ जो कुछ देखनेमे आता है वह सब अनधिकृत है। इन पर हम आपका कोई अधिकार नही है। इस अजायबघरमे हम किसी भी वस्तुको यदि ग्रहण करते है राग करके, ममता करके उसे अपनाते है तो उसका फल है कर्मवन्धनसे बंध जाना, गिरफ्तार होना और फिर दण्ड पाना। इस इन्द्र धनुषके समान अति चचल ऐश्वर्यको निरख कर हे आत्मन् ! तू प्रीति मत कर।

यान्त्येव न निवर्तन्ते सरिता यद्वदूर्मय.।
तथा शरीरिणां पूर्वा गता नायान्ति भूतय.॥८६॥

अतीत समयका पुन अमिलन—जिस प्रकार नदीकी लहरें जो निकल गयी सो निकल गयी, जो बह गयी सो बह गयी, वे फिर लौटकर नही आती, इसी प्रकार जीवकी विभूति जो नष्ट हुई सो हुई, वह नष्ट होनेके बाद फिर लौट कर नही आती। इष्ट-वियोगज आर्तध्यानमे और होता ही क्या है ? इष्टका वियोग होने पर उसके सयोगके लिए ध्यान बनाना यह इष्ट वियोगज आर्तध्यान है। इष्टका वियोग हो गया, हो गया, अब उसमे आर्तध्यान कब बनेगा ? जब कि विमुक्त इष्ट पदार्थका सयोग चाहा जाय। यह मिल जाय, फिर आ जाय, ऐसा ध्यान बनाये, इच्छा बनाये तब ही तो आर्तध्यान बनता है। कुछ लोग तो बाहर भी देखने लगते मरे हुए उस पुरुषके प्रति जिस गलीसे रोज आया करता था सामनेसे भोजन करनेके लिए, उस गलीकी ओर देखते है शायद आ जाय। यो आता था, यो क्यो न आ जाये ? यो आ जाना चाहिए आदिक कल्पनाएं बनाते है। अरे जो गुजर गया वह पुनः नही आता। उसके लिए खेद करनेकी ही बात नही बल्कि जब तक सयोग था तब तक उसका हर्ष करना भी व्यर्थ रहा।

विवेककी समझ—कभी तो घटना गुजरनेके बाद विवेक आता हैं। कहते है ना कि किसीमे बुद्धि २ मिनट बाद ही आ जाती है यथार्थ समझको। किसीके १५ मिनट बाद आती है, किसीकी १ घटे बाद अकल ठिकाने होती है। तो यह सब क्षयोपशमकी विभिन्नताको-बात है और मोहनीयके क्षयपशमकी विशेषताकी बात है। वियोग हो जाने

पर तो यह खूब समझमे आ जाता है कि सयोगके समय जो इसने हर्ष माना था, वह सब व्यर्थकी बात रही तत्त्वकी, सारकी बात वहाँ कुछ न थी। सोच लो अपने आपमे। जिसके प्रति आपका अधिक प्रेम था वह अब नही रहा तो उसके सम्बधमे आप यो स्पष्ट परख सकते है कि हमने जो उसके प्रति अनुराग किया था, बहुत राग रहता था हर्ष मानते थे, वे सब व्यर्थ की बाते थी। ध्यानमे वियोगके बाद यह बात समाती है। काहेका हर्ष करना और काहेका विशाद करना ?

अतीतके विषादकी व्यर्थता—भैया ! पर्वतसे गिरने वाली नदीका वेग जो निकल गया वह फिर लौटकर कभी नही आता ऐसे ही हमारे परिणमनमे जो वेग निकल आया है, तरग निकली है वह गुजर गयी, वह पुनः लौटकर नही आती। ऐसा समझकर इष्ट पदार्थोके वियोगमे विषाद मत करो। यह तो होती ही है, ऐसा तो जगत्मे हुआ ही करता है।

क्वचित्सरित्तरगाली गतापि विनिवर्तते ।
न रूपबललावण्य सौन्दर्य तु गतं नृणाम् ॥८७॥

अतीत रूपादिकके पुनः लाभकी असम्भवता—कदाचित् नदीकी लहर लौट भी आये यह भी सम्भव हो सकता है, परन्तु मनुष्यका गया हुआ रूप, बल और सौन्दर्य यह फिर नही आता। नदीमे लहर उठती है, वह तो गयी, कदाचित् वायुका वेग पुन. दूसरी ओरसे लौटकर आये, तो थोडा बहुत वह लहर खिसक भी सकती है, पर गया हुआ रूप, बल सुन्दरता ये फिर नही आते है।

रूपादिकी विनश्वरतापर एक पौराणिक उदाहरण—सनतकुमार चक्रवर्तीकी कथा बहुत प्रसिद्ध है। स्वर्गोमे चर्चा हुई कि सुन्दरतामे सनत कुमार चक्रवर्ती अद्वितीय है। देव देखने गए। उस समय वह सनतकुमार अखाडेमे लड भिडकर धूलसे धूसरित शरीरको नहानेके लिये बैठे हुए थे। देव देखकर खुश हुए। वाह जैसा सुनते थे वैसा ही सुन्दर शरीर है। तो कोई बोला—अभी क्या देखते हो चक्रवर्तीकी सुन्दरता ? जिस समय सजे सजाये सिहासन पर राजदरबारमे बैठ हो उस समय इनकी सुन्दरता देखो। अच्छा वहां भी हम देखने आयेगे। फिर क्या था दुगने तिगुने शृगारसे सनतकुमार चक्रवर्तीको सजाया गया। कभी आप बन ठनकर फोटो उतरवायेंगे तो फोटो अच्छी न आयेगी और सहज साधारणरूपसे फोटो उतरवावे तो वह ठीक आयेगी। तो जब सजे सजाये सनतकुमारको सिहासन पर बैठा हुआ देखा उस समय देवता लोग माथा धुनते है और कहते हैं—हाय ! वह रूप तो अब नही रहा। लोग कहने लगे कि यह क्या कह रहे हो ? तो उस समय

उन्होने दृष्टान्तके रूपमे पानीका भरा घडा मगवाया, फिर उसमे एक पतली सीक डुवोई और सीकमे अतिम एक बूंद लगी रही उसे जमीन पर गिरा दिया और लोगोसे कहा— बतलावो यह घडा कुछ रीता हुआ या नही ? तो लोग बोले—हाँ इसमे एक बूंद कम हो गयी है। तो ऐसे ही यह रूप भी, यह सुन्दरता भी प्रतिक्षण कम होती जाती है। बूढोको, बुढियोको देखो आज उनकी सुन्दरता चली गयी। क्या वे भी कभी आजके लडकी लडको जैसे सुन्दर न थे ? अरे आजके जो युवावस्था सम्पन्न लडका लडकी है ऐसे ही सुन्दर तो वे भी थे। तो जो रूप गया, सुन्दरता गयी, बल गया वह फिर नही आता।

रूपकी मायारूपता—भैया ! रूपमे क्या चीज है ? कुछ मिलने वाली बात है क्या ? किसीका रूप पकडकर मुट्ठीमे रख लीजिए अथवा जेबमे धर लीजिए खूब सुहावना लग रहा है ना, सो उसे बार-बार जेबसे निकालकर देख लीजिए। अरे यह रूप कुछ चीज नही है। जो रूप है उसे टटोलकर देखो, वहा कुछ भी चीज न मिलेगी। यह सब इन्द्रजालवत् है।

बलकी विनश्वरता—बलकी बात भी क्या है ? यह शरीरका बल। यद्यपि यह बल भी आत्माके कुछ बलका क्षयोपशम हुए बिना नही होता। लेकिन शरीरबलसे आत्मबलका अनुपात न निकालना। भैसा ८० मनका वजन खीच दे इतना बलिष्ट होता है। १० मनुष्योको खीचकर ले जाय उसके गलेमे रस्सी पडी हो तो इतना बलवान् भैसा होता है और ८ वर्ष का बालक उसे हाके, टिटकारे, मारे पीटे, जहाँ चाहे ले जाय। तो उस भैसेमे आत्मबल कहाँ है ? इस ८ वर्षके बालकमे आत्मबल है जो ऐसे बलिष्ट भैसेको भी जहाँ चाहे ले जाता है। यह बल भी क्या है, यह बल भी प्रतिक्षण विनश्वर है। जो व्यतीत हो गया वह पुनः लौटकर नही आता।

विनश्वरोकी प्रीतिसे हटकर—कान्ति और सुन्दरता ये दोनो भी विनाशीक है। आकार प्रकार सुहावना होना सो तो सुन्दरता है और वहाँ दीप्त होना सो लावण्य है। ये दोनो ही विनश्वर हैं। जो व्यतीत होता है वह पुनः लौटकर नही आता। यह प्राणी व्यर्थ ही इस विनश्वर वैभवकी आशा लगाये रहता है। हे आत्मन् ! तू इन सबको विनश्वर जानकर इनको आशा मत कर। इनमे अपेक्षा करके अविनाशी सहज निज अतस्ततत्त्वकी उपासना कर। मैं ज्ञानास्वरूपमात्र हूँ, इस भावनामे लीन रहा कर।

गलत्येवायुरव्यग्र हस्तन्यस्ताम्बुवत् क्षणे।
नलिनीदलसक्रान्त प्रालेयमिव यौवनम् ॥८८॥

आयुका गलन—जीवोको आयु तो अजुलीमे रक्खे हुए जलकी तरह क्षण-क्षणमे निरन्तर झरती है और जवानी कमलिनीके पत्र पर पडे हुए जलकणकी तरह तत्काल ढलक

उपयोग होता है और इतना तीव्रराग होता है कि वियोगके समय सारे गावको यह जगा देता है, हल्ला मचा देता है। विरोध भी किन्ही इष्टजनोमे। परिजनोमे, दो भाइयोमे हो जाय तो इतना कठिन विरोध हो जाता है कि जिसकी वजहसे अपनी सारी सम्पदाका भी विनाश कर देता है। ऐसा यह मानव उन एक जगह बसने वाले पक्षियोसे भी भयावह स्थितिमे अपने को बनाये रहा करता है।

विनश्वर समागमोंकी प्रीतिपात्रताका अभाव—भैया! इन समागमोमे प्रीति मत कर, ये थोडी देरको मिले है। जैसे मुसाफिरको सामने से आता हुआ कोई मुसाफिर मिल जाय तो वे रास्तेमे कितनी देर ठहरते हैं? थोडी राम-राम हो गयी या अधिक बात हुई तो थोडी बीडी सुलगा ली, चलते बने। जैसे इन मुसाफिरोका किसी चौहट्टेपर अथवा रास्ते पर मिलना अति अल्प समयका है, तुरन्त ही बिछुड जाते है ऐसे ही ये ससारके सब प्राणी एक जगह कभी थोडेसे मिल गए तो अल्पकालके ही बाद बिछुड़ जाते है। इन समागमोमे राग मत करो। अपने स्वरूपको सभालो, इससे ही शान्तिका मार्ग मिलेगा।

प्रातस्तरुं परित्यज्य यथैते यान्ति पत्रिण.।
स्वकर्मवशगा शश्वत्तथैते क्वापि देहिन.॥८०॥

सत्वर विछोह—शामके समय एक वृक्षपर बस जाने वाले पक्षी रात्रिभर उस वृक्ष पर विश्राम करते है और प्रात काल उस वृक्षको छोड़ कर अपने-अपने प्रयोजनसे नाना दिशावोमे चले जाते है इसही प्रकार ये प्राणी अपने-अपने कर्मोके वश होकर जिस किसी भी गतिमे चले जाते है। यहा इस जगतको यो अनित्य बताया जा रहा है कि यहाके ये पारिवारिक समागम मित्रजनोका समागम ऐसा अनित्य है जैसे कि रात्रि भर विश्राम करने के लिये पक्षी एक जगह आते हैं, सवेरा होते ही चले जाते है ऐसे ही यहा कोई किस गतिसे आया है कोई किस गतिसे। सभी समागमसे आये हुये लोग अपनी-अपनी आयुके अनुसार अपने-अपने कर्मोके अनुसार किसी भी गतिमे चले जाते है और भी दखिये अनित्यता की बात।

गीयते यत्र सानन्द पूर्वाह्णे ललित गृहे।
तस्मिन्नेव हि मध्याह्ने सदुःखमिह रुद्यते॥८१॥

एक दिनमे एक ही घरमे गान रुदनकी घटना—जिस घरमे प्रभातके समय आनन्द और उत्साहके साथ सुन्दर मगलगीत गाये जा रहे हैं कहो मध्याह्नके समयमे ही घरमे दुःख-के साथ रोना सुना जाता है ऐसी स्थितिया प्राय. उस समय बहुत घटित होती है, जब किसी घरमे कोई बालक पैदा हो तो बालकके उत्पन्न होने के समय बहुत खतरे रहते हैं।

कुछ बिगड जाय या कोई रोग हो जाय या किसीके पहिली ही बार बालक पैदा हो तो बडा खतरा माना जाता है। बालक तो पैदा हो गया। पडौसियोने, कुटुम्बियोने, मित्रोने बड़ी खुशी नायी प्रात काल और कुछ गडबडी होनेसे बच्चा गुजर गया अथवा मा गुजर जाय तो थोडी ही देर बादमे उसीही घरमे रोना ही रोना होने लगता है। ऐसी ही और भी घटनायें सोच लीजिये।

सासारिक सुखमे मग्नताका अनौचित्य—अनित्यताकी बात यहा कही जा रही है। यहा कौनसे सुखमे मग्न होना ? कोई सुख यहा सदा रहनेका नही है। बल्कि सुखके बाद दु ख ही आता है। ये सासारिक सुख ऐसे हैं कि सदा न रहेगे। जब सदा न रहेगे तो इसका अर्थ यह है कि इन सासारिक सुखोके मुकाबलेमे इनके बाद दु ख ही आयेगा और कोई स्थिति नही है। ऐसे इस अनित्य ससारमे हे कल्याणार्थी ! किसी भी सुख मे मग्न मत हो। सुख काहेका ? शान्ति तो वहा होती है जहा शान्तस्वरूप सबसे न्यारा केवल ज्ञानमात्र अपने आपका स्वरूप दृष्टिमे होता है। यहा स्थिति नही है तो बाहरी पदार्थोका कितना भी समागम हो उन बाहरी पदार्थोपर दृष्टि देकर यह आत्मा क्षोभ ही पायेगा, शान्ति नही पा सकता है। उदार बनो। उदार बननेका अर्थ यह है कि सासारिक सुखोमे मग्न मत हो और कोई विपदा आ जाय तो उसमे अपना धैर्य मत खोवो। सुख है तो वह भी औपाधिक भाव है, दु ख है तो वह भी औपाधिकभाव है। तू अपने आपमे अपने आपके सहजस्वरूपकी दृष्टि करके अत परमार्थ स्वाधीन बना रह।

सगसे विषादकी नौबत—एक राजाने जगलमे गर्मीके सतापसे सतप्त किसी साधुको देखा और उस साधुसे कहा तुम्हे हम एक छतरी देगे बडी धूप लग रही होगी। साधु बोला दे देना, मगर नीचेको गर्मीको क्या करेगे ? महाराज रेशमके जूते बनवा देगे। बनवा देना, पर खुला बदन रहेगा तो लू का क्या इलाज करोगे ? महाराज कपडे बनवा देगे। अच्छा बनवा देना, फिर यह तो बतावो कि तिष्ठ-तिष्ठ कौन कहेगा ? महाराज विवाह करा देगे, स्त्री खाना बनायेगी। फिर उसका पालन कैसे होगा ? महाराज १० गाव और लगा देगे। फिर बच्चे भी तो होगे उनका पालन कैसे होगा ? महाराज ५ गाव और लगा देगे। फिर उन बच्चोमे से कोई गुजर जायेगा तो रोवेगा कौन ? महाराज और सब कुछ तो हम कर सकते हैं पर यह काम हम नही कर सकते। रोना तो उसे ही पडेगा जिसके ममता होगी। तो साधु बोला कि हमे ऐसी छतरी न चाहिये जिसके कारण रोने तक की भी नौबत आ जाय।

संसारमे सुखका अभाव—ससारके सभी जीवोपर ये बातें बीत रही है। जिसके भी क्लेश है उसे मोह ममताके कारण क्लेश है। चाहे कोई समाजसे मोह करे, चाहे परिजनोसे, चाहे धन वैभवसे, चाहे अपने शरीरसे पर क्लेशका कारण मोह है। क्लेश बिना रागके, बिन मोहके हो ही नही सकता। शान्ति प्राप्त करनेके लिए हम आपका कर्तव्य यह है कि अपने भीतर गुप्त ही गुप्त अपने स्वरूपको सर्व परभावोसे न्यारा निरख निरखकर उस राग मोहकी रस्सीको तोड दे, इसके अतिरिक्त अन्य कोई शान्तिका शाश्वत उपाय नही मिल सकता। कोई भी मनुष्य चाहे धनी हो, नेता हो, किसीको भी लगातार दो चार घटे भी सुखी होते क्या देखा है? कोई सुखकी कल्पनाकी बात आयी तो सुखी हो रहे थे, इतनेमे ही कोई भाव ऐसा बन गया कि दुःखी होने लगा। लगातार कोई भी पुरुष एक घटा भी सुखी नही रह सकता।

संसारका अर्थ सुख दुःखका चक्र—करणानुयोगमे भी यह बताया है कि निरन्तर साताका उदय किसीके नही होता। १३वे गुणस्थानमे वहा निरन्तर साताका उदय बताया है, जबकि वहा सुख भोगनेका राग ही नही रहा। असाता भी सातारूप परिणम कर उदयक्षणमे आता है। सयोग-केवलीकी साता वेदनीयका उदय चलता है। यह सुविधा वहा है जहां कुछ इच्छा ही नही है। इच्छावान् जीवोके किसीके भी घंटा आधा घंटा भी लगातार सुख नही रह सकता। कोई बात तुरन्त ऐसी चित्तमे आयेगी कि कितने ही अशोमे वह दुःखरूप भाव वना देगी।

सांसारिक सुखोकी क्लेशगर्भितता—ससारके सुख दु खोसे व्याप्त है। मोटे रूपमे देखो किसीके बच्चेकी शादी होती है तो उस शादीकी खुशी मनाई जा रही है मगर यह बाप कोई आध घंटा भी अच्छी तरह सुखी रह सकता है क्या? उसे बीच-बीचमे कितने ही दु ख आते हैं? सब रिश्तेदारोको निमत्रण भेजे, कोई प्रतिकूल हो तो उसे मनाये, कितनी ही बातोमे क्रोध आ जाये, कितनी ही बातोमे आर्थिक परेशानी हो जाये, और पहिले जैसा जमाना हो तो पचोके हाथ जोड़-जोडकर ही परेशान हो जाये कितने क्लेश भोगने पडते है और इतना ही नही, विवाह हो चुकनेके बाद भी अनेक उलाहने आयेगे। कहा सुख मिला? केवल कल्पना मे सुख माना सो उसके बीच-बीच, कल्पनाओमे बीच-बीच मे अनेक दुःख भी भोगने पडते हैं। ये सासारिक सुख रमनेके योग्य नही है। वैभव और परिग्रहके संचय होनेसे कल्पनामे बसाये गए ये सुख भी एक ससारकी पद्धति हैं, व्यर्थकी बात है। संसारमे यदि सुख होता तो तीर्थंकर जैसे महापुरुष भी इसे त्यागते क्यो? एक अणु भी यहां राग करनेके योग्य कुछ नही है।

शरीर की अरम्यता—यह शरीर जिस बन्धनमे पडा है, जिसके बिना यहा सरता नही, खाये बिना काम न चले, इसमे फोडा फुसी, जुखाम बुखार कुछ भी हो जाये तो उसकी चिकित्सा किये बिना काम नही सरता, ऐसा अतिनिकिट सम्वध वाला यह देह भी रमनेके योग्य नही है। इसकी प्रीतिसे इस जीवको अलाभ ही है। हे आत्मन्! सासारिक सुखोमे आसक्त मत हो।

यस्य राज्याभिषेकश्री प्रत्यषत्र विलोक्यते।
तस्मिन्नहनि तस्यैव चिताधूमश्च दृश्यते ॥८२॥

एक ही पुरुषका एक ही दिनमे राज्याभिषेक व चिताधूम—प्रभातके समय जिसके राज्याभिषेक देखा जाता है उसी दिन उस राजाकी चिताका धुवा देखनेमे आ जाता है। कितनी हो बरातोमे तो सुना गया ऐसा कि बरात चल रही है, विवाह हो चुका या होनेको है उसी बीच दूल्हेका किसी कारणसे मरण हो गया, ऐसी बात कई जगह सुनी भी होगी। लो पहिले तो इतनी खुशी थी, बाजे बज रहे, गीत गाये जा रहे, सब खुश हो रहे लेकिन अचानक ही हार्ट फेल हो जाये, पति या पत्नी कोई गुजर जाये तो लो सारा वातावरण दु खरूपमे परिणत हो जाता है। हम आप आज तक जिन्दा बने हुये है, किसीकी ४० वर्षकी उमर है, किसीकी ५० वर्षकी उमर है, क्या हम आपकी यह हालत नही हो सकती है कि २० वर्षकी ही उमरमे गुजर गये होते या उससे भी पहिले गुजर गये होते? गुजर गये होते तो हम आपका यहा क्या था? कहा पैदा हुये होते, क्या बने होते? अब तक जीवित हैं लेकिन अब तक भी मोह और राग करनेमे कसर नही रखते। कुछ तो विवेक करना होगा अन्यथा इस अधाधुध दौडमे बहुत विपत्ति सहनी पडेगी।

दुर्लभ वर नरदेहके सदुपयोगमे विवेक—यह मनुष्य देह बडी दुर्लभतासे मिला है। ससारमे कितनी कुयोनिया हैं, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय आदिक कैसे-कैसे तुच्छ भव हैं, उन भवोसे निकल-निकलकर और इस आत्माके ज्ञानका आवरण करने वाले कर्मोसे कुछ छूट-छूटकर आज पचेन्द्रिय और मनुष्य है। पशु, पक्षियोसे हम आप लोगोमे कितनी श्रेष्ठता है? जहा इतना उत्कृष्ट मन होता है कि श्रुतकेवली इस मनुष्यभवसे ही होते है। जितना केवलीका ज्ञान है श्रुतकेवलीका भी उतना ही ज्ञान कहा है। अन्तर यह है कि केवली भगवान् प्रत्यक्ष रूपसे जानते है और श्रुतकेवली परोक्षरूपसे जानते हैं। ऐसा महान् मन वाला भव है यह मनुष्यका। मनुष्यभव पाया, उत्तम देश, उत्तम जाति, उत्तम कुल, बुद्धि उत्तम, धर्मश्रवणकी योग्यता, समझनेकी योग्यता इतना सब कुछ दुर्लभ समागम पा कर भी इस यथार्थ धर्मके धारणकी तीव्र उत्सुकता न जगे तो इससे अधिक

किनारे पर इकट्ठा हो जाता है उस फेनपुञ्जमें क्या सार बात है ? कुछ नही। कदाचित् फेनपुञ्जमे भी कुछ सार निकल सकता है, किन्तु इस शरीरमे कुछ भी सार नही है। फेनपुञ्ज तो बाजारमे बिकता भी है, वजनमे बडा हल्का होता है, वह औषधिके काम आता है, तो फेनमे चाहे कुछ सार मिल जाय, लेकिन मनुष्यके शरीरमे तो कही भी कुछ भी सार नही है। चाम, पसीना, खून, हड्डी और ऐसा बन गया ढांचा जिसमे ज्ञानी पुरुष तो मुग्ध नही होते, पर अज्ञानीको ऐसा लगता कि यह बहुत सारभूत और सुन्दर वस्तु है। कदाचित् सोनेकी भी कोई मूर्ति बना दी जाय मनुष्यके बराबर, किन्तु इस विषयव्यामुग्ध प्राणीको इस स्वर्णमूर्तिसे अधिक सारवान सुन्दर दिखाई देने वाली चीज यह देह प्रतीत होगी कैसा व्यामोह है ?

रम्भास्तम्भवत् शरीरकी असारता—लोग कहते है, कुछ देखा भी जाता है कि केले के पेडमे सार कुछ नही है, पत्तो पत्तोका जो समूह है वही केलेका तना है। उन पत्तोको छीलते जाइये तो वहाँ अन्तमे कुछ न मिलेगा। अथवा उस केलेके थम्भमे भी कुछ पतलासा डडा मिल जाय अथवा वहाँ भी कुछ सार नजर आये, सूख जाय, राख बन जाय, पापडो के काम आये उसमे भी कुछ बात बनेगी, कुछ सार की बात निकल सकती है जो कि नि सार है, पत्तोको अलग करते जाइये फिर वहाँ रहता कुछ नही है। ऐसे असार केलेके थम्भमे भी कुछ सारभूत बात प्रतीत होगी, पर इस मनुष्यशरीरमे तो कुछ भी सारभूत बात नही है। लेकिन यह व्यामोही जीव इस शरीरको ही सर्वस्व सारभूत मानता है। न जीते हुएमे सार है और मरनेके बाद तो इसमे कुछ सार ही नही नजर आता। सारा खून पानी हो जाता है, कैसा ढांचा रह जाता है। यह शरीर भस्म कर दिया जाता है, वहाँ फिर शेष कुछ नही रहता, ऐसा है यह नि सार शरीर।

शरीरमे भारपने, असारपने व रम्यपनेकी प्रतीति—करीब-करीब सभी लोग अपने-अपने शरीरको कुछ भार जैसा प्रतीत करते होगे, लेकिन व्यामोह इतना है कि इसे परशरीर सार और रम्य जंचने लगते है। यह मोही प्राणी इस शरीर को वृथा ही सारभूत मानता है। शिक्षा यहाँ यह दी गयी कि यह देह रमण करने के योग्य नही है। हे आत्मन् ! तू इस शरीरसे अत्यन्त न्यारा अमूर्त ज्ञान और आनन्दका पुञ्ज अपने स्वरूपमे अवस्थित सनातन तू अछेद्य, अभेद्य, अजेय है, अविनाशी है, तू अपने इस स्वरूपकी दृष्टि कर जिसकी दृष्टिके प्रतापसे तू अनाकूल रहेगा सदा के लिए पर उपाधियोका विछोह होगा और तू अकेले का ही अकेला रह कर अनन्त आनन्दका भोक्ता होगा। जो जीव केवल नही है, अकेवल है, परपदार्थोके सम्बन्धमे बंधे हैं वे ही जीव दुखी

हुआ करते है। केवल तो सिद्ध भगवान है, अब काहेका दुःख ? हे मुमुक्षु आत्मन् ! तू इस शरीरमे मुग्ध मत हो। शरीरसे न्यारा केवल तेरा जो निजस्वरूप है उस स्वरूपमे ही रत रह, सन्तुष्ट रह और अपना सहज वास्तविक जो आनन्द है उसका भोगने वाला रह। तेरी निधि तो अमूल्य है, तू अपनी निधिका सदुपयोग कर। इस प्रकार इन विषयोको नि सार और क्षणिक बताकर इस जीवको सारभूत अविनाशी निजस्वरूपकी दृष्टिमे लगाया गया है।

यातायातानि कुर्वन्ति ग्रहचन्द्रार्कतारका ।
ऋतवश्च शरीराणि न हि स्वप्नेऽपि देहिनाम् ॥६२॥

शरीरका पुनर्यानका अभाव—इस लोकमे ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, तारे और ऋतुये ये सब तो जाते है और आते हैं अर्थात् ये निरन्तर गमनागमन करते है। आये है तो जायेंगे, गये हैं तो आयेगे, परन्तु जीवका गया हुआ शरीर स्वप्नमे भी कभी लौटकर नही आता। उदाहरण इसमे लौकिक दिया गया है। वैसे तो ये ऋतुयें भी जो व्यतीत हो चुकी वही नही आती पर ऋतुमे ऋतु सामान्य लिया है। बसत गया है तो अगले साल फिर बसत आयेगा और ये चन्द्र, सूर्य वगैरह रोज आते हैं, जाते है, लेकिन शरीर जो गया वह पुन. नही आता। यह प्राणी उन शरीरोके लिए वृथा ही प्रीति करता है। अनित्य भावनाके इस प्रकरणमे शरीरकी अनित्यता दिखा रहे है।

शरीरकी परता, क्षणिकता व असारता—इस मोही जीवका जिस शरीरमे प्रेम है वह शरीर प्रथम तो पर है, आत्मासे अत्यन्त भिन्न है। शरीरका लक्षण पौद्गलिकताके लिए हुए है और आत्माका लक्षण चैतन्य स्वरूपके लिए हुए है। पहिली बात तो यह है कि यह शरीर भिन्न है, पर द्रव्य है। दूसरी बात यह है कि यह अत्यन्त क्षणिक है। इसमे क्षण क्षणमे परिवर्तन होते रहते है। बडा परिवर्तन तो कुछ समय व्यतीत होने पर विदित होता है किन्तु उसके भीतर क्षण क्षणमे परिणमन हो रहा है और की तो बात जाने दो, यह शरीर दिन रातमे कई रग बदलता है और ऋतुवोमे तो रग बदलता ही है। गर्मीके दिनोमे शरीरमे निखार होता है, जाडेके दिनोमे देखो तो मुर्दनीसी छाई रहती है। दिनमे देखो रग कुछ है, दोपहरको रग कुछ है और शामको रग कुछ है। कालके भेदसे इसमे रग बदलते रहते हैं। चिंता शोक आदिके भेदसे भी यह शरीर रग बदलता रहता है। यह देह कितना दुर्बल है, कितना बलिष्ट है और फिर आयुके क्षय होने पर तो यह शरीर सदाके लिए अलग हो जाता है। यो यह शरीर क्षणिक है। तीसरी बात यह है कि शरीर जहाँसे निर्मित है वहाँसे ऊपर तक देख लो, कही सार न मिलेगा।

शरीरमे हितांशका भी अभाव—भैया ! जीवको हितरूप अश क्या है इस शरीर

मे ? वही मास, लोहू, चाम, मलमूत्र इत्यादि अपवित्र चीजें भरी हैं। इस शरीरमे कोई भो सारभूत बात नही है। इस मनुष्यके शरीरमे, लोकमे भी, काममे अपने योग्य कोई बात नही है। लौकिक दृष्टि से पशुवोके शरीरमे व्यवहारके योग्य कुछ बाते मिल जाती है, हाथोके दात, पशुवोके चाम, हड्डी इत्यादि लोक व्यवहार मे काम आते हैं, लेकिन इस मनुष्यके शरीरमे कोई भी चीज लोकव्यवहारमे भी काममे नही आती है। उल्टा मरनेके बाद यह शरीर यदि कही पडा रहे तो वहा बीमारी फैलनेका भय रहता है, सारी दुर्गन्ध वहा भर जाती है। यो इस शरीरसे उपद्रव ही आते है, लाभ कुछ नही होता। तीसरी बात यह है कि यह शरीर निःसार हैं, ऐसे इस क्षणिक अत्यन्त भिन्न शरीरमे यह जीव वृथा ही प्रीति कर रहा है।

ये जाताः सातरूपेण पुद्गलाः प्राङ्मनः प्रियाः।
पश्य पुंसा समापन्ना दुःखरूपेण तेऽधुना ॥९३॥

सातरूप शरीरवर्गणाओंका दुःखरूपसे सम्पन्नता—हे आत्मन्! इस जगतमे जो पुद्गल स्कध पहिले जिन प्राणियोके मनको प्यारे और सुख उपजाने वाले थे वे हो पुद्गल स्कध अब दुःखके देने वाले हो गये। ऐसी बात अनेक परिस्थितियोमे हो जाती है। जो पुद्गल वर्गणायें हृष्ट पुष्ट शरीरके रूपमे आकर इस जीवको सुख देनेके कारण बनो थी वे हो पुद्गल स्कध अब किसी रूपमे, फोडा फुसियोमे और भी भीतर अनेक रोगोके रूपमे आकर इस ही भवमे दुःखके कारण बन जाती हैं अथवा यह हृष्टपुष्ट शरीर बालपनमे किशोर अवस्थामे तो पुष्ट था और धीरे-धोरे पेट बढ गया तो दुःख देने वाला बन गया अथवा जो पुद्गल स्कध किसी भवमे सुन्दर शरीरके रूपमे आकर इतना मन प्रिय थे, वे ही पुद्गल स्कध आज दुर्गन्धित बनकर मन प्रिय नही रहे। कितनी घटनाएँ ऐसी है अथवा अन्यका कोई शरीर जो मित्र और परिवारके रूपमे आकर मन प्रिय बना हुआ था वह ही पुद्गल स्कध अब किसी अन्य शरीर रूप शत्रुके रूप होकर वह ही इस मनको अप्रिय हो गया है अथवा इस ही भवमे जिन जिन शरीरोसे स्नेह था वे कितना अधिक प्रिय लगते थे, लेकिन आज मन बिगडने पर, शत्रुता होने पर वे ही शरीर मनको अप्रिय लगने लगे हैं।

अचेतन वैभवोंका भी दुःख हेतुरूपमे परिवर्तन—यहाँ इन शरीरो की अनित्यताका वर्णन चल रहा है। जगत्‌मे ऐसा कोई भी पुद्गल स्कध नहीं है जो शाश्वत सुखरूप ही रहता हो। यह तो जीवग्राह्य शरीरकी बात कही गई है। अब धन, वैभवकी बात ले लो। जो वैभव पहिले मनको प्रिय लगता था, कुछ कारणसे या डाकुवोकी उस पर दृष्टि

लग जानेसे वह ही वैभव अब दु खरूप जचने लगा है । इस वैभवको किसी क्षण छोड भी नही जा सकता और रखा तो डाकुवोके द्वारा सताये जानेकी शका बनी रहती है लो अब वह वैभव मनःप्रिय नही रहा अथवा कभी-कभी यह वैभव ही विपदाका, प्राणघातका कारण बन जाता है । जब यह स्थिति आती है इस धनके पीछे, डाकू धन भी ले जाय और साथ ही इस धनसे यह भय रहता कि कही डाकू लोग आकर पकड़ न ले जायें । कहो वे डाकू साराका सारा धन भी ले ल और प्राणघात भी कर दे तो ऐसी स्थिति आ जाने पर वही धन, वैभव जो पहिले बहुत प्रिय था, अब अप्रिय लगने लगा ।

बनी और अनबनका अविश्वास—भैया ! इन पुद्गल स्कधोसे क्या प्रीति करना, ये थोडी देरको भले लग रहे हैं, थोडी देर बादमे ये अमगल जंचने लगेंगे । अरे किससे तू द्वेष करता है ? इस समय जो तुझे अप्रिय लग रहे हैं कहो कुछ समय बाद वे ही प्रिय बन जावे । जिस बिरादरीसे जिस परिवारसे आपकी कुछ अनबनसी रहती हो, कोई संयोग ऐसा हो जाय कहो कि उस ही परिवारके लोग खूब भले जचने लगे अथवा जिस परिवारसे आपकी खूब बनी थी, उस बनी-बनी हालतमे ही कुछ बात पड जाय तो कहो अनबन हो जाय । लो जिस परिवारके लोगोसे पहिले बडा प्रेम था वही परिवार अब अप्रिय लगने लगा । तो यहा कौनसे पुद्गल स्कध विश्वासके योग्य है ? न यह जीवित शरीर और न यह पुद्गल स्कध कोई भी विश्वासके योग्य नही है और न ये रमण करनेके योग्य है । उनसे प्रीति हटा और अपने शाश्वत सहजस्वरूपकी ओर दृष्टि दे । यह ही अविनाशी है, सारभूत है और तेरा सहजरूप है ।

अनित्यभावनामे साध्य प्रयोजन—अनित्य भावना बतानेका प्रयोजन है अपने नित्यस्वरूप पर अधिकार जमा लेनेका । यदि लक्ष्यकी पूर्ति न करे और परिश्रम बहुत करे तो उसका परिश्रम व्यर्थ है । रसोई बनाये और यो ही सिगडी जला जलाकर सारा खाना बनाकर धर दे तो उस खाना बनानेसे लाभ ही क्या है ? उसमे तो कोई बुद्धिमानीकी बात नही है । क्या ऐसा करते हुए किसीको देखा है कि कोई खाना तो बहुत बना डाले और फिर उसे फेंक दे ? ऐसा तो शायद न देखा होगा । कोई भी काम हो यह जीव अपने अभीष्ट प्रयोजनकी सिद्धिके लिये किया करता है । यो ही कोई सबको अनित्य-अनित्य कहता रहे, यह मर गया, वह मर गया, यह नष्ट हो गया, वह नष्ट हो गया, कुछ भी यहा नही रहनेका है यो बकता जाय और जो कुछ मैं हू उसकी दृष्टि ही न बने तो वह तो उन्मत्त वाणी है । मुकाबलेसे देखो ये पौद्गलिक स्कध भिन्न हैं, विनाशीक हैं, नि सार हैं और यह आत्माका सहज चैतन्यस्वरूप स्व है, अभिन्न है

अविनाशी है और सारभूत है। तू इस अनित्यसे उपेक्षा करके निज नित्यमे उपयोग दे, इसकी दृष्टि करके प्रसन्न रहा कर।

वैभव पानेकी क्या खुशी—हे आत्मन् ! वैभव पानेकी खुशी मत बना। उसका तो ज्ञाताद्रष्टा रह। उदय था लो यह आ गया। यह भिन्न वस्तु रखी है, ठीक है, वैभव पानेमे खुशी जितनी मानता है यह जीव उससे भी कई गुणी खुशी होनी चाहिये अपने आत्माके स्वरूपका दर्शन होने पर। ओह ! यह अलौकिक तत्त्व, यह अलौकिक दर्शन सहज आनन्दघन इस अतस्तत्त्वका स्पर्श कितनी अलौकिक विभूति है, इसे न पाकर यह जीव अब तक नाना कुयोनियोमे भ्रमण करता चला आया है। इस अविनाशी सहज-स्वरूपकी दृष्टिमे अपने जीवनके लक्ष्यकी पूर्ति मान।

मोहाञ्जनमिवाक्षाणामिन्द्रजालोपम जगत् ।
मुह्यत्यस्मिन्नय लोको न विद्म. केन हेतुना ॥६४॥

जगत्की इन्द्रजालोपमता—यह जगत् इन्द्रजालकी तरह है। इन्द्रजाल और अलग चीज क्या होती होगी ? वर्णन चला आया है। कोई मायावी पुरुष किन्ही न हुई चीजोको भी हुई जैसी दिखा दे तो उसे कहते है इन्द्रजाल। जैसे बाजीगर लोग होते है, वे न हुई चीजको भी हुई जैसी दिखा देते है। क्या करते हैं, क्या उनका ढग है कुछ पता नही। किसी दर्शककी टोपी उठाई और खन-खन करके रुपये गिराने लगते हैं। किसी दर्शकका दुपट्टा ले लिया और उसे हिलाया तो उससे खन-खन करते हुये रुपये गिरने लगते है। ऐसा लोगोको दीखता है। तो कितने ही रुपये खन-खन करके गेर दिये और बादमे खेल दिखानेके पश्चात् वह बाजीगर सबसे एक-एक, दो-दो पैसा मागता है। अरे अब वह पैसे क्यो मागता है ? जो खन-खन करके गिरते हुए दिखाये वे क्या रुपये पैसे नही थ ? यद्यपि लोगोके देखनेमे आया, सुननेमे आया, पर वे पैसे नही थे। तो जो है, नही है, है जैसा दिखा दे, वही तो इन्द्रजाल है। है कुछ भी नही और यहा दिखता है कि यह सब कुछ है, यही तो इन्द्रजाल है।

इन्द्रजालका स्वरूप—इन्द्रका अर्थ है आत्मा। इस आत्माके मायारूप परिणमनसे, औपाधिक परिणमनसे जो यह भव मिला है, शकलसूरते बनी हैं, यह पिण्ड बना है यह सब इन्द्रजाल है। अब तो समझ लीजिए कि यह इन्द्रजाल, इन्द्रजालकी तरह है अर्थात् विनाशीक है, कुछ नही है तत्त्वभूत, फिर दिखनेमे लगता है कि यह तत्त्वभूत है। शरीरको ही निरख लो, क्या भरा है इसमे ? शरीरमें हाड़, खून, मास मज्जा, चाम, नाक, थूक, खकार, मलमूत्र इत्यादि सारीकी सारी अपवित्र चीजे भरी पडी हुई हैं और

ऊपरसे नीचे तक जो चमड़ी है मढ़ी हुई, जिसमे कुछ काति नजर आती है, इसमे भी कोई सारभूत बात नही है, यह इन्द्रजालकी तरह है, ऐसे ही यह सारा जगत् इन्द्रजालकी तरह है।

मोहनी अञ्जनमे धूल—जैसे किसी पुरुषके नेत्रमे मोहनी अजन लग जाय तो वह भुलावेमे आ जाता है, अनेक चीजे ऐसी है। एक मोहनी धूल ऐसी होती है कि थालमे भोजन सजा दीजिए और उस मोहनी धूलको उस थार के नीचे रख दीजिये तो खाने वाला उस भाजनका अटपट ढगसे खायेगा। क्या करेगा कि कोई चीज नही उठाकर रक्खेगा, कोई चीज कही रखेगा, कोई चीज मुंहसे खानेके बजाय कानसे ही खाने लगेगा। जैसे अनेक अटपट बातें हुआ करती है। बिल्लीलोटन आदिक अनेक उदाहरण दिए हैं तो जैसे नेत्रमे मोहनी अजन लग जाय तो वह भुला देता है, इसी प्रकारसे इस जीवमे मोहका अजन लगा है जिसके कारण यह अपनेको भूला हुआ है। सुखके लिए न जाने क्या क्या प्रवृत्तिया यह करता है। जिस दिन अपने आपके आत्माके अन्त.स्वरूप का किसी प्रकार परिचय पा ले उस दिन अनन्तकालमे आजका यह पाया हुआ जीवन धन्य है।

वैभवमे अनुरज्यताकी अपात्रता—भैया! जो अपूर्व बात अभी तक कभी नही पायी ऐसी अपूर्व आत्मस्वरूपके स्पर्शकी बात उत्पन्न हो जाय तो इससे भी बढकर कुछ वैभव है क्या? वैभवके पीछे आज लोग न जाने कितने शकित है? जब इन बाहरी बातो पर दृष्टि दी जाय तो शका करना उचित और योग्य मालूम होता है, किन्तु जब एक इस आत्मा के सहजस्वरूपपर दृष्टि देते है तो ये सब शकाएं नि सार मालूम देती है। उसका कोई क्या कर लेगा? न उसे कोई छेद सकता, न भद सकता, न वह पकडा जा सकता। यह तो यही है, कदाचित् प्राणात भी हो जाय तो बिगाड क्या हुआ? किसी अन्य जगह इससे भी बहुत विशिष्ट धर्मके और वैभवके वातावरणमे पहुँच जायेंगे। यहाका पाया हुआ वैभव है कितनासा? विशुद्ध भाव होगा, पुण्यभाव होगा, धमप्रेम होगा, शान्ति रहेगी, तो आजके पाये हुये वैभवसे लाखो गुना वैभव मरनेके बाद ही तो अधिकृत होगा। कितनी स्वर्ग रचनाएं है, कितनी राज रचनाएं है, कितना बडा द्वीप है, कितना मध्यलोक है? सारी रचनावो पर दृष्टि डालो, जरा सी बातमे यहा क्यो मुग्ध हो?

साधु और गृहस्थके दो दो ठौर—गृहस्थ जीवनमे दो बातोकी सभाल रखनी है। एक तो गृहस्थोके योग्य लौकिक कार्योंकी सभाल रखनी है और दूसरे अपने आत्मधर्मके कार्योंकी सभाल रखनी है। इन दोनो कार्योंका चलते रहना यही गृहस्थ जीवन है। जैसे कि गुणस्थानोमे बताया गया है—प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानमे वह झूलता रहता है, किसी

एक जगह वह नही टिक पाता। अप्रमत्तविरत भी नही रहता। जैसे क्षण-क्षण मे अन्तर्मुहूर्त अन्तर्मुहूर्तमे प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान बदलते रहते है इसी प्रकार सद्गृहस्थके उपयोगमे लोकव्यवस्था व आत्मधर्मकी सभाल ये दोनो उपयोग बदलते रहते है। इसी कारण इस गृहस्थकी प्रवृत्ति आदर्शरूप बनती है। जो जीव ज्ञानी है उस ज्ञानी जीवके विषयोकी प्रवृत्तिके समय भी जब सवर निर्जरा करने योग्य प्रवृत्ति रह सकती है तब समझिये इसका कोई भी स्थान हो, निद्राकी भी स्थिति हो। वह विषय प्रवृत्तिसे तो कम खतरनाक प्रवृत्ति है। वहा भी यह अपने संस्कारोके अनुसार अपनी सभाल रखा करना है।

ज्ञानकी अनिर्वचनीय महिमा—ज्ञानकी महिमा ज्ञानियोके अनुभवमे तो आ सकती है पर वह वचनोद्वारा प्रतिपादित नही हो सकती है। एक सम्यक्त्व पा लिया जाय तो आपने सब कुछ पाया, एक समीचीन दृष्टि ही न मिली और एक लौकिक वैभव इकट्ठा हो गया तो उससे क्या हुआ ? अरे वे ढेर पहिले अलग-अलग थे अब इस शरीरसे चिपक गए, इतना ही तो हुआ। धन सचयमे वैभवसग्रहमे इससे अधिक और क्या हुआ ? किन्तु स्वयका जो स्वरूप है उस स्वरूपका सभालरूप आत्मरुचि बने, सहज आनन्दका अनुभव हो तो उस विभूतिसे बढकर कोई विभूति प्राप्त हो सकती है क्या ? यह सब एक अनुभवकी चीज है। जैसे खाई हुई मिठाईका स्वाद अनुभवमे तो आ जाता है पर उसे शब्दोसे क्या बताए ? दूसरोके चित्तमे कैसे उतारा जा सके ? उसके लिये कोई वचन नही है। इसही तरह अपने उस विशुद्ध आनन्दकी बात अनुभवमे तो आ जाती है किन्तु उसे बतानेके लिये कोई शब्द नही है। और शब्द भी हैं तो वे शब्द उन ही को बतानेमे समर्थ है जिन्होने इस आनन्दका अनुभव किया है। जैसे मिश्री मिठाईके सम्बन्धमे यह कहा जाय कि यह बहुत मीठी है, सुहावनी है, किन्ही भी शब्दोसे कहा जाय तो इसका भाव वही समझ पायेगा जिसने उस मिठाईको चखा है। दूसरा नही जान सकता है। तो यह सब प्रयोगसाध्य बात है।

आत्मानुभवके यत्नका अनुरोध—हम इस बातका यत्न करे कि उस तत्त्वकी जिसकी महिमा ऋषिसतोने बहुत बहुत गायी है हम उस रूप अपना श्रद्धान, ज्ञान और आचरण बनाकर उस अंतस्तत्त्वरूप अपना परिणमन बनाकर खुद अनुभव कर ले कि वह आत्मविश्रामका धाम कैसा है ? कितना आनन्दमय है ? उस आनन्दके अनुभव होने पर सारे सकट इसके दूर हो जाते हैं। सारी बात भीतरके साहसकी है। जैसे किसी कार्य को करते हुयेमे कभी शिथिलता आये तो भीतरमे साहस जगे तो फिर उसकी पूर्ति कर सकते हैं। सब

साहसकी बात है। निजकी ओर उपयोग जगे तो ऐसा साहस प्रकट होता है कि फिर वहा ससारके कोई सकट नही सता सकते हैं। हे आत्मन्! तू असार भिन्न, विनाशीक इन पुद्‌गलस्कंधो से प्रीति हटाकर सारभूत अभिन्न अविनाशी ज्ञानस्वरूपमे प्रतीति कर।

ये चात्र जगतीमध्ये पदार्थाश्चेतनेतरा।
ते ते मुनिभिरुद्दिष्टा प्रतिक्षणविनश्वरा ॥९५॥

समागत पदार्थोंकी प्रतिक्षण विनश्वरता—इस ससारमे जो जो भी चेतन और अचेतन पदार्थ हैं वे सब प्रतिक्षण विनाशीक है, ऐसा मुनिराजने ताया है। स्वय भी सामने देख रहे है कि ये दृश्यमान् सभी पदार्थ प्रतिक्षण क्षीण होते जाते है। कभी उनका रूपान्तर हो जाता है कभी उनकी हानिवृद्धिया होती हैं। एक रूप तो कुछ रहता ही नही। अनित्य भावनाके इस प्रसगमे इन पदार्थोंको अनित्य बताकर उनसे उपेक्षा करायी गयी है। तू इन अनित्य पदार्थोंकी प्रीतिमे लीन मत हो, अन्यथा इसका फल कुछ ही समय बाद बहुत बडा भुगतना पडेगा। जिसके सयोगमे अधिक प्रीति है उसके वियोगके समय अधिक क्लेश भुगतना पडता है, अत हे शान्तिके इच्छुक पुरुष! न तो किसी चेतन पदार्थमे और न किसी अचेतन पदार्थमे तू राग द्वेष कर। इनमे रागद्वेष करना युक्त नही है। यद्यपि जितना जो कुछ व्यवहारमे आ रहा है और दृश्यमान् है वह सब अचेतन ही है, किन्तु जो चेतन सत् है, शरीरो है उनको चेतन समझियेगा। वास्तविक परमार्थभूत चेतन तत्त्वसे कौन रागद्वेष करता है? वह चैतन्यस्वरूप जिसकी दृष्टिमे आ जाता है वह तो विशुद्ध ज्ञाताद्रष्टा रहता है। प्रतिक्षण विनाशीक इन भवोमे और इन अचेतन पदार्थोमे हे मुमुक्षु! तू मोह और रागद्वेष मत कर।

गगननगरकल्प सङ्गम वल्लभानाम्, जलदपटलतुल्य यौवन वा धन वा।
सुजनसुतशरीरादीनि विद्युच्चलानि क्षणिकमिति समस्त विद्धि ससारवृत्तम् ॥९६॥

प्रियजनोके समागमकी आकाशनगरवत् क्षण भगुरता—ससार का यह वृत्त क्षणिक है। देखो प्रिय स्त्रीजनोका अथवा परिजनोका समागम कोई इन्द्रादिक मायासे आकाशमे बने हुए नगरकी तरह है। जैसे आकाश मे कोई मायामयी नगर बना हो तो उसकी सता क्या, एक थोडी ही देर की अथवा दिखावामात्र है वह नष्ट ही होगा, ठहरेगा नही। इसी प्रकार यह परिजनोका समागम ठहरनेका नही है। यह तो नष्ट ही होगा। जैसे रास्तागीर लोग चलते-चलते किसी चौहट्टे पर इकट्ठे हो जाये अथवा किसी रास्तेमे मिल जायें तो वे कितनी देर तक ठहरते है? थोडी देरको। जितनी देर वे जुहार भेंट करे अथवा कोई बीड़ी, चिलम पीने लगे या कोई अपने इष्ट स्थानका रास्ता पूछने लगे,

तो इतनेमे जितना समय लगता है उतने समय तकका वह मिलाप है । फिर बिछुड जाते है, ऐसे ही अनेक गतियोसे आए हुये ये परिजन कुछ लोग किसी एक जगह मिल गए है तो यह कितने क्षणका मिलाप है ? इस अनन्तकालके समक्ष ५०-६० वर्ष क्या गिनती रखते हैं ? इस वर्तमान जीवनमे कुछ कल्पनाएँ कर डाले और कुछ अपनेको वैभववान्, ऐश्वर्यवान्, महान् समझकर एक मौज माने तो यह कितने दिनोका खेल है ? यह सब नष्ट होगा ।

वैभवकी विद्युतकी तरह क्षणस्थायिता—यह समस्त समागम आकाशनगरकी तरह शीघ्र ही विनष्ट हो जाने वाला है । यह यौवन और यह धन मेघ बिजलीकी तरह विलीन हो जाने वाला है । धनका तो यह काम ही है । वह एक जगह तो रहता ही नही है, यहासे वहा गया, वहासे यहा गया, चलता फिरता रहता है । इसका नाम है चचला । जो अतिशय से चलता ही रहे उसे चचला कहते है । यह यौवन भी चचल है, कुछ शरीर पुष्ट हुआ, कुछ शक्तिमान् हुआ तो यह स्थिति कितनी देरके लिये है ? भले ही जब जवानी है तो उन जवानोको इस ओर ख्याल नही आता कि यह कितने दिनोका जीवन है ? यदि उन्हे ख्याल रहे कि यह यौवन अवस्था भी शीघ्र विलीन होगी तो उनके मनमे यह स्वच्छन्दता न रहेगी । जैसे जवानीके जोशमे जो मनमे आता है स्वच्छन्द होकर पापकार्य कर डालते हैं, फिर इससे ऐसी स्वच्छन्द वृत्ति नही हो सकती ।

यौवनकी मेघपटलवत् क्षणनश्वरता—यह जवानी मेघपटलके समान है । जैसे छत पर बैठा हुआ कोई बादलोके सौन्दर्यको देख रहा हो, देखा कि यह तो बादलोका सुन्दर दृश्य है, इसका चित्र खीचना चाहिये । चित्र खीचनेके लिये कागज पेन्सिल लेने नीचे आया और कागज, पेसिल लेकर ऊपर पहुँचा, इतनेमे देखता है कि बादलोका वह सारा समूह विलीन हो गया है । तो जैसे वे बादल देखते-देखते ही विलीन हो जाते है ऐसी ही यह जवानी देखते देखते ही बिलीन हो जाती है । जब वृद्ध अवस्था आती है तब तो खूब समझमे बैठ जाता है कि यह जवानी अति चचल है, क्षणमे ही नष्ट हो जाती है । जवानीके समय भी जवानीकी अनित्यता ध्यानमे रहे यह है पुष्पज्ञानीकी धारणा ।

क्षणस्थायित्वका तात्पर्य—यह यौवन और धन मेघ व बिजलीकी तरह लुप्त हो जाने वाले है । परिजन, मित्रजन, पुत्र, स्त्री आदिक ये बिजलीकी तरह चंचल हैं । बिजली कितनी देर ठहरती है ? कुछ भी समय नही । ऐसे ही इस अत्यन्त कालके सामने यह कितना सा समय है जितने वर्ष ठहर जाय । बल्कि इतनी जिन्दगीके इन ६०-७०-८० वर्षोके सामने जो एक सेकेन्डको बिजली चमकी वह समय तो नापमे गिनतीमे आ जायेगा,

जाय । इसका निवारण कोई नही कर सकता ।

कलियुगका प्रभाव—मनुष्यको चाहिए तो यह कि ऐसी सद्‌बुद्धि लाये जिसमे दया हो, न्याय हो, क्षमा हो, उदारता हो, इन हो बातोसे इस का उद्धार है और कुछ समय पहिले या बहुत कुछ पूर्व समयमे ऐसे अनेक उदाहरण मिलते थे, पर यह एक कलियुगका प्रताप है कि ऐसी विचारधारा के लोग कदाचित् पाये जाते है और बहुतसे देशप्रसिद्ध लोग इन भावोसे दूर रहा करते हैं, जिनके कारण सभी समाज पर आपत्ति छा जाती है। इसका नाम है कलयुग, कलियुग, करयुग कुछ भी शब्द कह लो। करयुगका तो अर्थ यह है कि अपने हाथो कमाओ तो खाओ, नही तो कुछ नही है। करयुगका दूसरा अर्थ यह है कि कर पर कर लगाना अर्थात् टैक्स पर टैक्स लगना, उसका यह युग है। कलियुगका अर्थ यह है—कलि मायने पाप उसका युग अर्थात् कलियुग मायने पापोका युग। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, छल, विश्वासघात सभीका बोलबाला है। इस समय इसका नाम है कलियुग और कलयुगका अर्थ यह है कि कल मायने मशीन उसका युग। कलयुग मायने मशीनोका युग। बड़े-बड़े मशीनोके आविष्कार जिस समय हो उसे कहते हैं कलयुग। ये सबकी सब बातें आजके युगमे घट रही हैं।

कुबुद्धि—भैया। कहां तो वातावरण ऐसा चाहिए था कि मनुष्यो की प्राय. प्रवृत्ति धर्ममे होती, दयामे, दानमें, शीलमे, भक्तिमे, सयम तपस्यामे इनमे वृत्ति होती और इस दुर्लभ नरजीवनको इस संयमसे साध कर इसका अपूर्व फल पाते परलोक सुधरता, वहा भी धर्मका वातावरण मिलता और कभी तो शरीरसे, कर्मबन्धनसे वह छुटकारा पा लेता, किन्तु बजाय इस सद्‌बुद्धिके दुर्बुद्धियोका प्रसार होता है। शास्त्रोमे बताया है कि दूसरेके प्राणहारी शस्त्रोके, हथियारोके निर्माण करनेमे बुद्धि चलना यह सब कुश्रुत ज्ञान है। लोगोका विध्वस हो, लोगोमे आकुलता बढे, क्षोभ हो, सक्लेश हो ऐसे साधनोके बनानेमे बुद्धिके चलनेका नाम है कुश्रुतज्ञान। इस अशरण ससारमे कहां तो लगना चाहिए था और कहां लग गये हैं, यही तो एक जगत्का असार प्रसारा है। जब यह काल अपना जाल लेकर सामने आता है तब उसका निवारण करनेमे बडे-बड़े नायक भी समर्थ नहीं हैं।

आत्महितका विवेक—इस अनित्य भवमें अचानक ही जब कभी मृत्यु आ सके ऐसे इस जीवनको परवस्तुवोका मोह हटाकर अपने आपके सहजस्वरूपकी दृष्टिमे उपयोग जाय ऐसा यत्न करने वाला ही बुद्धिमान् है, अन्यथा जो जन्मा है वह तो मरता ही है। जो जन्मे थे वे मरे है, जो अब हैं वे अवश्य मरेंगे। न जीवन रहेगा, न देह रहेगा, न वैभव

रहेगा, न गाव, नगर इस गतिके विकल्प ये कुछ न रहेंगे। फिर एक नई बात सामने आयेगी। जो अनेक बार पुरानी होकर भी नई-नईके रूपमे आती रहती है, आयेगी फिर वहाके चक्रमे वैसा दु ख भोगना होगा। कहा लगाव रखना, कौन सारभूत है, कौन शरण है, किससे प्रीति निभानेका निर्णय करना, हठ करना, ये सब अज्ञानभरी कल्पनाएं हैं। इस अशरण विभावोका सम्बन्ध त्यागकर अब हे मुमुक्षु ! अपने आपके शरणभूत इस अतस्तत्त्वकी ओर आवो।

जगत्त्रयजयी वीर एक एवान्तकः क्षणे।
इच्छामात्रेण यस्यैते पतन्ति त्रिदशेश्वराः ॥१००॥

अन्तककी उद्धता—तीनो लोकोका जीतने वाला यह काल एक अद्वितीय सुभट है जिसकी इच्छा मात्रसे ही ये बडे-बडे त्रिदशेश्वर अर्थात् देवेन्द्र भी गिर जाते है, मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं। देवोका नाम त्रिदश है। त्रिदशका अर्थ है तिस्र. दशा समानाः यस्य स त्रिदश । जिसकी तीनो दशाएं बराबर हो उसे त्रिदश कहते है। बचपन, जवानी, बुढापा, वहा सब रंगा चगा रहता है। अन्तर्मुहूर्तमे ही जवानी बन जाना और अन्त तक भी उनको बुढापा न आना। बुढापेकी शकलकी भी कल्पना करो तो अधिक से अधिक इतनी कल्पना कर सकते हो कि किन्ही देवोके ६ महीने आयु शेष रहने पर शरीर पर वक्षस्थल पर फूलमाला जैसा उनका आकार हो तो वह मुरझा जाता है। अधिकसे अधिक इतनी बात सम्भव है, वह भी घबडाये हुए अज्ञानी देवकी बात है। शरीर तब भी उनका पूर्ण यौवन सम्पन्न रहता है। जिसकी तीनो दशाएं बराबर पुष्ट है, समान है ऐसे देव भी तो मृत्युके समय गिर जाते है, उनका भी वश नही चलता है।

त्रिदशोंकी अन्यदशा—देवोमे से अनेक देव उन ६ माहके प्रकरण मे इतना सक्लेश करते है जब उन्हे यह दिख रहा है कि अब मेरा मरण होगा, स्वर्ग जैसा ठाटबाट छूट जायेगा. रगा चंगा दिव्य देह यह मिट जायेगा और मरकर नीचे जायेगा। मनुष्य बने या तिर्यञ्च बने, लेकिन जो भी घबडाहट रख रहा हो ऐसा देव तो तिर्यञ्च होगा ऐसा अनुमान है और सम्भव है तिर्यञ्चोमे भी एकेन्द्रिय जीव बन जाय। उनके दु'खका कोई अदाजा लगा सकता है क्या ? यहा मरने वाले मनुष्यसे कितने गुना दु ख उस मरने वाले देवके होता होगा। कहा वह जाय जो कि मृत्यु से बच जाय ?

मरणकी दुर्निवारता—एक किम्बदन्ती है कि भगवानकी सवारी का राजहस कभी-कभी उडकर एक तालाबसे निकला करता था। उस तालाबमे एक कछुवा था। उसका वह मित्र था। तो कभी-कभी वहासे यमराज निकलता था। (यह सब

प्रसन्न होते है उस मनुष्यके प्रति देवका कितना अधिक राग रहता होगा ? पुराणोमे यह कथानक बहुत आया है, अनेक महापुरुषोकी सेवामे देवगण रहते थे। अनेको महापुरुषो की सेवा देवता लोग स्वय किया करते थे और अनेक देवता उनके चक्रके स्वामी होते थे, उनकी आयुधशालाकी रक्षा करना आदिक नाना रूपोमे सेवा किया करते थे। उन महापुरुषोका भी जब अन्त समय आया तब देवता भी उनकी रक्षा नही कर सके। रक्षा कर ही नही सकते। ये देव स्वय अरक्षित हैं। इनकी आयु असख्यातो वर्षकी होती है, इस कारण इन्हे लोग अमर कहा करते है। इनका आहार कठसे ही जो अमृतसा या कहिये थूक जैसा झडता है वही होने के कारण इन्हे अमृतका पीने वाला कहा करते हैं। पर न तो ये अमृतके पीने वाले हैं और न अमर है, असख्यातो वर्ष गुजर जानेके बाद जब इनका भी काल क्षय होता है तो ये बच नही पाते। माताको बच्चा कितना प्रिय होता है ? छोटा बालक है, रोगी है, हड्डी निकली हैं, कुछ देखने योग्य भी नही है फिर भी मोह कितना रहता है ? गोदमे लिए रहती है, किन्तु गोदमे भी बैठे-बैठे बालकका मरण हो जाता है। उसे कौन बचा सकता है ?

बाह्यमे शरणलाभका अभाव—मृत्युके आक्रमणसे आक्रान्त होकर यह जीव शरण ढूंढता है किसीका, पर कही इसे शरण मिलती नही है। वैद्योकी सेवा करके भी शरण खोजता है। अपने हितुवोसे प्रीतिकी याचना करके भी शरण खोजता है। अनेको शरण ढूंढता है यह लेकिन इसे शरण कही नही मिलती। ऐसा यह जगत् अशरण है। सच तो यह है कि जो चीज स्वय विनाशीक है उसका शरण गहना चाहता है तो शरण मिल कैसे सकेगा ? कोई पुरुष परिजनकी शरण समझता है, कोई वैभवकी शरण समझता है, कोई इज्जत और यशकी शरण समझता है। किसी न किसी विनश्वर पदार्थकी शरण लेना चाहता है। बताओ फिर कैसे शरणकी सिद्धि हो सकती है ? शरण केवल अपने आपमे सहज अनादि अनन्त विराजमान् एक चैतन्यस्वभावका दर्शन है। वह दृष्टिमे न आये तो कही भी उपयोग भ्रमावे से शरण न मिलेगी।

परमार्थशरणके परिचयकी आवश्यकता—भैया ! केवल अशरण अशरणकी रटन लगाकर अपने को दु.खी करना ठीक नही है। हाय ! मेरा कही कोई शरण नही। यद्यपि यह भी एक धर्मध्यानका अग है। न मुझे घर शरण है, न कुटुम्ब शरण है, न मित्र शरण है, न ये विषयभोग शरण हैं, न ये सासारिक सुख शरण हैं, सोचते जाइए, अच्छी बात है, लेकिन शरण असलमे है क्या ? इसका पता नही है, तो उसके हर जगह रोना ही रोना है। अशरण भावना उसकी नही बन सकती जिसे अपने शरणका परिचय नही है। बाहरमे

प्रत्येक पदार्थका नाम लेकर कोई अशरण अशरण कहता जाय। उसकी अशरणभावना नही है, वह तो एक खिसियाहट है। दुखी हो गए चैन न मिला, लो कहने लगा कि यहा कौन किसका है, बाह्यमे कुछ भी शरण नही है। इस चिन्तवनमे बल तब आता है जब अन्तरमे यह बल पडा हुआ हो कि मै स्वय सशरण हूँ, मै स्वरूपसे अमिट हूँ, मुझे कहा क्या अधूरापन है, मैं पूर्ण सत् हूँ और स्वभावसे ज्ञानानन्दघन हू—ऐसा अपनी शरणका जिसे बल मिला हो वह बाह्यपदार्थों का नाम ले लेकर यह अशरण है, यह अशरण है—इस प्रकारकी भावना करता है। सेना हो, परिजन हो, देवीदेवता हो, माता पिता हो, बड़े प्रेमी रिश्तेदार हो, मरते समय इस जीवका कोई राखनहार नही हो सकता ऐसी भावना यहा अशरण भावनामे भायी जा रही है।

सुरासुरनराहीन्द्रनायकैरपि दुर्धरा ।
जीवलोक क्षणार्द्धेन बध्नाति यमवागुरा ॥६६॥

यमका फन्दा—इस कालका ऐसा विकट फदा है कि यह क्षणमात्र मे जीवोको फास लेता है। इस कालके फदेका निवारण सुरेन्द्र, असुरेन्द्र, नागेन्द्र बड़े-बड़े नायक कोई भी निवारण नही कर सकते। एक कल्पनासे विचार करो। मृत्युका, आयुक्षयका नाम यमराज है। यह यमराज शब्द बहुत प्रसिद्ध शब्द है। काल कहो, यमराज कहो, ये सब आयु क्षयके नाम है। किसी भी भावका मूर्तिमान् रूप रखना, पुरुषवत् उसमे व्यवहार करना यह एक अलकारकी पद्धति है और उस ही पद्धतिमे नाना देवी देवताओ के भी रूप बन गए। यो ही यमराज एक शब्द है जो बहुत प्रसिद्ध है।

यमकी समान दृष्टि—यह यमराज इतनी समान दृष्टि वाला है, इतना पक्षपात रहित है कि इसकी निगाहमे सब ससारी जीव एक समान हैं। वह न तो यह पक्ष रखता कि यह छोटा बालक है, बडा रगा चगा है, बडा सुन्दर लगता है इसे न खावे और यह बूढा है, बेकार है, गरीब है इसे खा ले—ऐसा रागद्वेष, ऐसा पक्षपात यमराजके नही है। उसकी दृष्टिमे सब एक समान हैं। गर्भमे रहने वाला बालक हो, जवान हो, बूढा हो सब पर उसका एक समान बर्ताव है। जिस किसीको भी खा ले अर्थात् किसी भी जीवकी कभी भी मृत्यु हो जाय। यह एक अलकारमे समझिए। इसके फदेका, आयुक्षय हो जाने पर मरणका निवारण करनेमे कोई समर्थ नही है। हा मृत्युको भी जिसने जीता है, मृत्युकी भी जिसने मृत्यु कर डाली है ऐसा कोई है तो वह परमात्मा है। जिसकी अब कभी भी मृत्यु न होगी। जब जन्म ही नही है तो मरण कहासे होगा ? जितने जन्म वाले जीव है चाहे वे बडे इन्द्र हो, चक्री हो, इस कालका फदा ऐसा है कि जिस किसी पर जब चाहे पड

केवलज्ञानी, वीतराग, अनन्त, आनन्दमय, जो कुछ भी गुणरूप स्वरूप है उस दृष्टिसे तो अरहत और सिद्धमे समानता है, किन्तु वे और नटखट जो इस प्रभुकी प्रभुतासे पहिले थे वे नटखट, शरीरके बन्धन, कर्मोंके बन्धन अब बने हुये हैं, वे भी दूर हो जाये तो उन्हे सिद्ध भगवान कहते है अर्थात् वीतराग व सर्वज्ञ तो वे अरहत पदमे ही थे, अब बाह्यमल-रहितता, निर्लेपता भी सिद्ध भगवानके हो जाती है, फिर भी यद्यपि सिद्धका उत्कृष्ट स्वरूप है, किन्तु अरहतके बाद सिद्धके शरणकी बात यो कही गई है कि आखिर सिद्धका पता भी हमे अरहतो की परम्परासे चला है। उपदेश देने वाले मूलमे अरहंत भगवान हैं, उनके प्रणीत आगमसे हमे सिद्धका परिचय मिला है। खैर यह दृष्टि भी न करें तो भी चूकि अरहत सिद्ध एक ही स्वरूप है, कुछ भी कह दो प्रभुके शरणको प्राप्त होता हूँ, इस भावनामे भव्यने एक वीतराग ज्ञायकस्वरूपकी उपासना की है।

साधु शरण—इसके पश्चात् यह भव्य पुरुष कहता है कि 'साहूसरण पव्वज्जामि, मैं साधुवोकी शरणको प्राप्त होता हू।' मुमुक्षु पुरुषोका साधुवोके साथ एक अनूठा सम्बन्ध हुआ करता है, जिस सम्बधकी होड जिस सम्बन्धकी दशा, जिस सम्बन्धकी उपमा किसी भी सम्बन्धमे नही मिलती है। मोक्षमार्गका नाता रखकर साधुवोका और उपासकका जो सम्बन्ध होता है उस सम्बन्धसे बढकर सम्बन्ध इस दुनियामे और कुछ नही है। कैसा निष्कपट, मोक्षमार्ग लिये सदाको सकट दूर हो जायें, इस भावनाको लिये हुये गुरुवोका सम्बन्ध होता है। अरहत वीतराग हैं पूर्ण रूपसे। वे हमसे बोलते भी नही है, यद्यपि उनका विहार है, तो भी वे निरीह हैं। उनका उत्कृष्ट शरण है लेकिन सीधा तुरन्त जिसमे इतना काम चले वह तो साधु पुरुष हैं।

सुगम लब्ध व्यवहारशरण—जैसे इस गृहस्थावस्थामे यद्यपि व्यापारके सम्बन्धमे कोई एक बडा पुरुष जो बहुत दूर रहता हो और सब के लिये एकसी दृष्टि रखता हो यद्यपि वह बडा है लेकिन रोज-रोज काम जिससे पडे उसके लिये तो वह ही महत्त्वके लिये है। साधुजन प्राय करके मिलते ही रहते हैं और हम ही जैसे वे हैं और विरक्ति पाकर ज्ञान पाकर जो इतना शान्त और ज्ञानी हैं, आनन्दरत हैं तो उनकी इस प्रवृत्तिको छोडकर हम पर ज्यादा असर पहुँचता है। जैसे कि पुराणोमे अनेक उदाहरण हैं। सुकुमालने यो त्यागा, सुकौशलने यो त्यागा, ऋषभदेवने यो त्याग किया, ठीक हैं वे सब लोग। आपके ही नगरमे यदि कोई ज्ञानी गृहस्थ ऐसा दीखे कि जो बहुत उदार हो, वैभवमे अनासक्त हो, जराजरा से प्रसगोमे मुक्तहस्तसे दान दे और अपने सदाचार की पूर्तिमे विषयोका त्याग कर दे, ऐसा विरक्त ज्ञानी गृहस्थ हो तो तत्काल उसका प्रभाव पडने

लगता है। ऐसे ही अरहत और सिद्ध भगवानका यद्यपि उत्कृष्ट स्वरूप है और अन्तमे उनका ही ध्यान योगीजन भी करते है, हमे भी करना होता है लेकिन हमे तुरन्त कोई शरण मिले, समागम मिले, कुछ अपने दिलकी बात कह सके, कुछ उनसे सुन सकें ऐसा सुगम उपाय मोक्षमार्गका विधान बन सके ऐसा तो साधुवोमे सम्भव है। तब यह भव्यपुरुष साधुवोका शरणवाद करता है—'साहू शरण पव्वज्जामि, मैं साधुवोकी शरणको प्राप्त होता हूं।

धर्म शरण—यहा तक देव और गुरुके शरण पानेकी भावना और कोशिश करके अब यह भव्य जीव तब भी अपने आपमे हो रहे परिणमनकी शरण ही पा रहा था, अब व्यक्तरूपसे माना कि ये सब पर ही है। परमार्थसे मैं किसकी शरणको प्राप्त होऊं? जो सुगम हो, स्वाधीन हो, अपने आपमे हो—ऐसी शरण है क्या? उसको चतुर्थ नम्बरपर कह रहे है। केवलिपण्णत्त धम्म सरण पव्वज्जामि। केवली भगवानके द्वारा निर्देश किया गया जो धर्म है उसकी शरणको मै प्राप्त होता हूँ। धर्म कही व्यक्तिरूप स्वरूप सत्ता वाला कोई पदार्थ नही है, किन्तु जितने भी आत्मा है उन आत्मावोमे जो उनका स्वभाव पाया जाता है वही स्वभाव धर्म है। मेरा स्वभाव है प्रतिभास चैतन्य। उसका प्रयोग है ज्ञातादृष्टा रहना। हम केवल जाननहार रहे, यह है, यह यो है, समस्त वैभव परिजन मित्रजन अन्य अन्य जन जो जो कुछ भी प्रयोगमे आये उनका जैसा स्वरूप है, ढग है, उसका मात्र जाननहार रहे, ऐसी ज्ञाताद्रष्टापनकी स्थितिका नाम है धर्म। मैं इस ज्ञायकस्वभावरूप, शुद्ध ज्ञानविकासरूप धर्मकी शरणको प्राप्त होता हूँ।

सुगम स्वाधीन स्वय वास्तविक शरण—तो देखो भैया! वास्तविक शरण अपना अपने आपमें मिला और व्यवहारसे जो धर्ममूर्ति है वह देव और गुरु शरण है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई तो शरण कभी हो ही नही सकता है। ये ससारीजन स्वय घबड़ाये हुए हैं, स्वय अशरण है, इनका मैं क्या शरण ढूढू। हे मुमुक्षु! सभी ससारी जीव कालके मुखमे हैं ऐसा जानकर किसी भी जीवका तू शरण मत ढूंढ। अपने आपमें ही अपने शरणकी प्राप्ति कर।

समापतति दुर्वारे यमकण्ठीरवक्रमे।
त्रायते तु न हि प्राणी सोद्योगैस्त्रिदशैरपि॥९८॥

मरणकालमे देवों द्वारा भी अरक्षितता—जब यह प्राणी दुर्निवार कालरूपी सिंहके पजे तले आ जाता है तब बडे-बडे उद्योगशील देवतावोके द्वारा भी इस प्राणीकी रक्षा नही हो सकती। अन्य मनुष्यादिक की तो सामर्थ्य ही क्या है? जिस मनुष्यपर देव

पर अनन्तकालके सामने ये १०० वर्ष भी क्या, करोड वर्ष भी गिनतीमे न आयेगे। यहाके ये सर्व समागम कितनी देरको हैं, इन सबको क्षणिक समझिये। ऐसी अनित्य अवस्था जानकर इनसे अनुराग मत करो। इनमे नित्यताकी बुद्धि मत रक्खो।

पर्यायदृष्टिसे अनित्य देखनेका प्रयोजन द्रव्यदृष्टिसे नित्यत्वका अवलोकन—इस ग्रन्थमे यहा अनित्यभावना समाप्त हो रही है। अनित्य भावनाके इस प्रसगमे सारभूत तात्पर्य इतना जानना कि यह लोक षट्द्रव्यमय है। ६ प्रकारके द्रव्य, चेतन अचतन पदार्थोंका समूह यह लोक है। इसको द्रव्यदृष्टिसे देखा जाय तो यह नित्य है परन्तु पर्यायदृष्टिसे देखा जाय तो वह उत्पन्न होता है और नष्ट होता है। अनित्य भावनामे इस बात पर दृष्टि दिलायी गयी है कि तुम इन सब पदार्थोंको पर्यायदृष्टिसे अनित्य देखो। मोहीजन पर्यायदृष्टि ही तो रखते है पर उस ही दृष्टिसे रखते हुये वे नित्य मान रहे है। मोहियोको यह पता नही कि हम पर्यायदृष्टिसे देख रहे है, वे तो पर्यायको ही सर्वस्व मानते हैं और इस ही पर्यायको नित्य श्रद्धामे लाये हुये है। इन ससारी जीवोको द्रव्यके शाश्वत वास्तविक स्वरूपका तो ज्ञान है ही नही, वे तो पर्यायको ही वस्तुस्वरूप मानकर उसमे नित्यपनेकी बुद्धि रखते हैं और इसी अज्ञानवश ममता राग और द्वेष किया करते हैं। उन रागद्वेषोसे आकुलताएं होती हैं। उन आकुलतावोको दूर करना चाहिये, इस ही भावको यहा बताते हैं कि भाई पर्यायबुद्धि एकान्त त्यागकर द्रव्यदृष्टिसे अपने स्वरूपको नित्य मानकर और इस अविनाशी चैतन्यस्वरूपका ध्यान करके इस ही स्वरूप मे लय होनेका यत्न करो और वीतराग विज्ञानकी दशाको प्राप्त होवो।

② अशरण भावना ●

न सो कोऽप्यस्ति दुर्बुद्धे शरीरी भुवनत्रये।
यस्य कण्ठे कृतान्तस्य न पाश प्रसरिष्यति ॥९७॥

संसारी जीवोकी अशरणता—अनित्य भावनाके बाद अशरण भावनाका वर्णन आता है। हे मूढ दुर्बुद्धे ! तू किसकी शरण चाहता है ? इन तीनो लोकोमे कोई भी जीव ऐसे नही है जिनके गलेमे कालकी फासी न पडी हो। तू जिसको शरण समझकर उस शरणमे जा रहा है वह खुद का अशरण है। खूब छान लो, जगत्में जितने भी जीव हैं ये सब कालके गलेमे पडे हुए हैं, कालके मुखमे पड़े हुए है। जो स्वय अरक्षित हैं उनसे रक्षाकी कोई आशा की जा सकती है क्या ? जो स्वय अशरण है उनसे अपने शरणकी कोई आशा न रखनी चाहिये। जो स्वयको शरणभूत है वे भी अन्यको शरणभूत नही हो सकते। बाह्यमे कही भी शरण मत ढूढो। अपने आपमे अपने आपका ही सहजस्वरूप

शरण है, उस स्वरूपके शरण को प्राप्त हो।

अरंहत शरण—चत्तारिदण्डकमे पढते है, चत्तारि शरण पव्वज्जामि। मैं चारकी शरणको प्राप्त होता हूँ। वे चार शरण कौन है, जिन को यह भक्त प्राप्त करना चाहता है? प्रथम कहा गया है अरहते शरण पव्वज्जामि। मै अरहतोकी शरणको प्राप्त होता हूँ। अरहत परमात्मा वोतराग सर्वज्ञदेव है। वे देह सहित हैं। परमौदारिक पावन उनका देह है, उनकी दिव्य ध्वनि होती है, लोगोको उनका दर्शन मिलता है। जो सर्वश्रेष्ठ समागम भव्य जीवोको प्राप्त हो सके वह सर्वश्रेष्ठ समागम अरहत भगवानका दर्शन है। सिद्धभगवानका तो समागम होता नहो, वे लोक के अन्तमे विराजे है और शरीररहित है, योगरहित है। ये अरहतदेव विहार भी करते है उनकी दिव्यध्वनि भी होती है, उनकी शान्तमुद्राके दर्शन होते है। जो वीतराग है केवलज्ञानी है ऐसा आत्मा जिस देहमे विराजमान् है उस भगवान्‌के साक्षात् दर्शन हो सकते है। तो बाह्य शरणो मे उत्कृष्ट शरण जो हमे प्राप्त हो सके, वह है अरहत भगवानका शरण। उस अरहत भगवानकी शरणको मैं प्राप्त होता हूँ।

प्रभुस्मरणका प्रभाव—कैसे ही कोई उपद्रवसे ग्रस्त हो, यदि वास्तविक दृष्टिसे अरहतके स्वरूपमे अपना उपयोग लगाया तो उस स्वरूपके उपयोगसे ये सैकडो बाधायें दूर हो जाती है। अरहत भगवान् परद्रव्य है और परके शरणकी बात यहा कही जा रही है। यद्यपि इस जीवको परमार्थ दृष्टिसे कोई भी परमार्थ शरण नही होता, लेकिन अरहत भगवानका स्वरूप, इस आराधना करने वाले जीवका स्वरूप स्वभावदृष्टिसे दोनो समान है और उपासक जब अरहत भगवानके स्वरूपपर दृष्टि देता है तो इसे अपने आपके स्वरूपका स्पर्श होता है। भगवान्‌के स्वरूपपर दृष्टि दे कौन सकता है? किसी भी परपदार्थके स्वरूपपर दृष्टि कौन दे सकता है? प्रत्येक प्राणी जो कुछ परिणमन करता है वह अपने ही प्रदेशोमे परिणमन करता है। अपने आपके प्रदेशोमे ही रहकर जो हमारी ज्ञानवृत्ति बनी उस ज्ञानवृत्तिका आश्रय अर्थात् विषय हुआ अरहतका स्वरूप। अतः यो कहा जाता है कि हमनें अरहतके स्वरूप पर दृष्टि दी। वस्तुतः वहा भी हमने अपने आपके स्वरूपमे ही ऐसा कोई परिणमन किया है, वही शरण बन रहा है, उस शरणमे परपदार्थ विषय है अतएव परके शरणकी बात कही गई है।

सिद्ध शरण—अरहतोके शरणकी भावनाके पश्चात् फिर कहते हैं सिद्धे शरणं पव्वज्जामि। मैं सिद्ध भगवान्‌के शरणको प्राप्त होता हूँ, यद्यपि सिद्ध भगवान अरहत भगवानसे भी उत्कृष्ट पदमे है, अतरङ्ग दृष्टिसे तो अरहत और सिद्ध दोनो समान है,

जाय। इसका निवारण कोई नही कर सकता।

कलियुगका प्रभाव—मनुष्यको चाहिए तो यह कि ऐसी सद्‌बुद्धि लाये जिसमे दया हो, न्याय हो, क्षमा हो, उदारता हो, इन ही बातोसे इस का उद्धार है और कुछ समय पहिले या बहुत कुछ पूर्व समयमे ऐसे अनेक उदाहरण मिलते थे, पर यह एक कलियुगका प्रताप है कि ऐसी विचारधारा के लोग कदाचित् पाये जाते है और बहुतसे देशप्रसिद्ध लोग इन भावोसे दूर रहा करते हैं, जिनके कारण सभी समाज पर आपत्ति छा जाती है। इसका नाम है कलयुग, कलियुग, करयुग कुछ भी शब्द कह लो। करयुगका तो अर्थ यह है कि अपने हाथो कमाओ तो खाओ, नही तो कुछ नही है। करयुगका दूसरा अर्थ यह है कि कर पर कर लगाना अर्थात् टैक्स पर टैक्स लगना, उसका यह युग है। कलियुगका अर्थ यह है—कलि मायने पाप उसका युग अर्थात् कलियुग मायने पापोका युग। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, छल, विश्वासघात सभीका बोलबाला है। इस समय इसका नाम है कलियुग और कलयुगका अर्थ यह है कि कल मायने मशीन उसका युग। कलयुग मायने मशीनोका युग। बडे-बडे मशीनोके आविष्कार जिस समय हो उसे कहते हैं कलयुग। ये सबकी सब बातें आजके युगमे घट रही है।

कुबुद्धि—भैया। कहां तो वातावरण ऐसा चाहिए था कि मनुष्यो की प्राय प्रवृत्ति धर्ममे होती, दयामे, दानमें, शीलमे, भक्तिमे, सयम तपस्यामे इनमे वृत्ति होती और इस दुर्लभ नरजीवनको इस संयमसे साध कर इसका अपूर्व फल पाते परलोक सुधरता, वहा भी धर्मका वातावरण मिलता और कभी तो शरीरसे, कर्मबन्धनसे वह छुटकारा पा लेता, किन्तु बजाय इस सद्‌बुद्धिके दुर्बुद्धियोका प्रसार होता है। शास्त्रोंमे बताया है कि दूसरेके प्राणहारी शस्त्रोके, हथियारोके निर्माण करनेमे बुद्धि चलना यह सब कुश्रुत ज्ञान है। लोगोका विध्वस हो, लोगोमे आकुलता बढे, क्षोभ हो, सक्लेश हो ऐसे साधनोके बनानेमे बुद्धिके चलनेका नाम है कुश्रुतज्ञान। इस अशरण ससारमे कहां तो लगना चाहिए था और कहां लग गये हैं, यही तो एक जगत्का असार प्रसारा है। जब यह काल अपना जाल लेकर सामने आता है तब उसका निवारण करनेमे बडे-बडे नायक भी समर्थ नही हैं।

आत्महितका विवेक—इस अनित्य भवमें अचानक ही जब कभी मृत्यु आ सके ऐसे इस जीवनको परवस्तुवोका मोह हटाकर अपने आपके सहजस्वरूपकी दृष्टिमे उपयोग जाय ऐसा यत्न करने वाला ही बुद्धिमान् है, अन्यथा जो जन्मा है वह तो मरता ही है। जो जन्मे थे वे मरे हैं, जो अब हैं वे अवश्य मरेंगे। न जीवन रहेगा, न देह रहेगा, न वैभव

रहेगा, न गाव, नगर इस गतिके विकल्प ये कुछ न रहेगे। फिर एक नई बात सामने आयेगी। जो अनेक बार पुरानी होकर भी नई-नईके रूपमे आती रहती है, आयेगी फिर वहाके चक्रमे वैसा दु ख भोगना होगा। कहा लगाव रखना, कौन सारभूत है, कौन शरण है, किससे प्रीति निभानेका निर्णय करना, हठ करना, ये सब अज्ञानभरी कल्पनाएं है। इस अशरण विभावोका सम्बन्ध त्यागकर अब हे मुमुक्षु ! अपने आपके शरणभूत इस अतस्तत्त्वकी ओर आवो।

जगत्त्रयजयी वीर एक एवान्तक/ क्षणे।
इच्छामात्रेण यस्यैते पतन्ति त्रिदशेश्वराः ॥१००॥

अन्तककी उद्धता—तीनो लोकोका जीतने वाला यह काल एक अद्वितीय सुभट है जिसकी इच्छा मात्रसे ही ये बडे-बडे त्रिदशेश्वर अर्थात् देवेन्द्र भी गिर जाते है, मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं। देवोका नाम त्रिदश है। त्रिदशका अर्थ है तिस्रः दशा. समाना. यस्य स त्रिदश । जिसकी तीनो दशाएं बराबर हो उसे त्रिदश कहते हैं। बचपन, जवानी, बुढापा, वहा सब रंगा चगा रहता है। अन्तर्मुहूर्तमे ही जवानी बन जाना और अन्त तक भी उनको बुढापा न आना। बुढापेकी शकलकी भी कल्पना करो तो अधिक से अधिक इतनी कल्पना कर सकते हो कि किन्ही देवोके ६ महीने आयु शेष रहने पर शरीर पर वक्षस्थल पर फूलमाला जैसा उनका आकार हो तो वह मुरझा जाता है। अधिकसे अधिक इतनी बात सम्भव है, वह भी घबडाये हुए अज्ञानी देवकी बात है। शरीर तब भी उनका पूर्ण यौवन सम्पन्न रहता है। जिसकी तीनो दशाएं बराबर पुष्ट हैं, समान है ऐसे देव भी तो मृत्युके समय गिर जाते है, उनका भी वश नही चलता है।

त्रिदशोंकी अन्यदशा—देवोमे से अनेक देव उन ६ माहके प्रकरण मे इतना सक्लेश करते हैं जब उन्हे यह दिख रहा है कि अब मेरा मरण होगा, स्वर्ग जैसा ठाटबाट छूट जायेगा रगा चंगा दिव्य देह यह मिट जायेगा और मरकर नीचे जायेगा। मनुष्य बने या तिर्यञ्च बने, लेकिन जो भी घबडाहट रख रहा हो ऐसा देव तो तिर्यञ्च होगा ऐसा अनुमान है और सम्भव है तिर्यञ्चोमे भी एकेन्द्रिय जीव बन जाय। उनके दुःखका कोई अदाजा लगा सकता है क्या ? यहा मरने वाले मनुष्यसे कितने गुना दु ख उस मरने वाले देवके होता होगा। कहा वह जाय जो कि मृत्यु से बच जाय ?

मरणकी दुर्निवारता—एक किम्बदन्ती है कि भगवानकी सवारी का राजहस कभी-कभी उडकर एक तालाबसे निकला करता था। उस तालाबमे एक कछुवा था। उसका वह मित्र था। तो कभी-कभी वहासे यमराज निकलता था। (यह सब

किम्वदन्ती और अलकारके रूपमे सुनना) तो कभी किसीको मारने जाता था, कभी किसीको। रास्ता वही था। एक दिन यमराज बोला कि अब दो दिनके बाद इस कछुवेका भी मारनेका नम्बर आयेगा। यह कहकर यमराज चला गया। तो कछुवा राजहसले बोला—अरे मित्र ! तुम तो भगवान्के दरबारके खास सेवक हो, परसो हमारी मृत्यु होगी। यमराज न छोडेगा, वह देख गया है और कह गया है। राजहस बोला—मित्र तुम कुछ फिकर मत करो। तुम्हारी मृत्यु नही हो सकती। ऐसा उपाय हम रचेगे। तो उसने उपाय क्या रचा ? उस कछुवेको चोचमे दबाकर ले गया एक जगलमे और एक गुफामे उसको रख दिया और गुफाके दरवाजे पर पत्थर जोड दिया। देखे कैसे मारता है, इस जगह ही न रहने देगे इस कछुवेको। हुआ क्या परसोके दिन कि उस जगह एक रीछ आया और उस रीछने अपने मुखसे, थूथरेसे उन पत्थरोको हटाया और भीतर घुसा। तो बडा पुष्ट कछुवा दीखा, उसे वही चबा डाला। अब वहाँ दरवारमे सभी लोग बैठ थे तो वह हस अपनी चतुराईकी डीग हाक रहा था। यह यम जिस किसीको यो ही मार डालता है और हमने देखो अपने मित्र कछुवे को यो बचाया, यमकी आखोमे भी धूल झोक दिया। तो एक यम बोला—तुम जावो और अपने मित्र कछुवे को देख तो आवो कि कैसा है ? वह राजहस उसे देखने गया तो देखा कि वहा हड्डिया पडी हुई थी। इस कथनीसे हम इतना सार लें कि मृत्युसे बचनेके लिए चाहे किसी जगह चले जाये, कही छिप जाये, तालाबमे, पर्वतमे, मदिरमे, किन्तु जब समय आता है तो उसको कोई बचा नही सकता। और दूसरी बात यह देखिये मित्र ही मित्रतावश उसकी मृत्युका कारण बन जाता है।

निरापद स्थानका अभाव—अहो कहा जाये कि तेरी रक्षा हो जाय ? और किसीकी क्यो सोचे अपने आप ही हम आप लोग ऐसी रक्षा वाली जगहमे बैठे हैं, कैसे ? ऊपर तो देवोकी छत्रछाया है हम मनुष्यो पर याने ऊपर रहते हैं देव, उनके नीचे हम आप हैं तो उनकी छत्रछाया हम आपपर है, और इस जगत्मे बडे दुष्ट जीव होते है नारकी, सो इनको भी जमीनके नीचे ढकेल दिया कि उन दुष्टोसे अपना कुछ बिगाड न हो जाय। और देखो—अनगिनते खाइया और अनगिनते कोट हम आपको घेरे हुए पडे है—असख्याते द्वीप और असख्याते समुद्र ऐसे महान् अभेद्य समुद्र और कोटोसे घिरे हुए रक्षित स्थानमे हम आप बैठे हुए है, फिर भी हम आप बच कहा पाते है ? जगतमे कौनसा स्थान ऐसा है, कौनसा पद ऐसा है, कौनसा जीव ऐसा है जहा हम आपको ऐसी शरण मिले कि मृत्युसे भी हम आप छूट सके ? कही कुछ न मिलेगा। अपनी शरण अपने सहज स्वभावका दर्शन ही है। उससे ही नाता जोडो, प्रीति करो, झुको, उसे ही अपना

सर्वस्व जानकर इतना ही मात्र मैं हूँ, ऐसा निर्णय रखो तो अपना शरण अपने मे मिलेगा और इन समस्त बाह्य विपत्तियोसे भी छुटकारा होगा।

शोच्यन्ते स्वजन मूर्खा: स्वकर्मफलभोगिनम्।
नात्मानं बुद्धिविध्वंसा यमदष्ट्रान्तरस्थितम् ॥१०१॥

मूर्खोंका विचित्र शोक - अपने-अपने कर्मोंके अनुसार कर्मफल भोगने वाले इन कुटुम्बीजनोका तो मूर्ख लोग शोक करते हैं। ये कुटुम्बीजन कोई गुजर जाये, किसीको कठिन बीमारी हो जाय तो ऐसी स्थितिमे ये मोही लोग अपने कुटुम्बका शोक करते हैं, परन्तु यमके दाढोके बीच बैठे हुए है उसको इन्हे रच भी चिन्ता नही है। खुद मरणके सम्मुख है इसकी ओर तो ध्यान नही, किन्तु बाहरमे इष्टके सयोग वियोग होने से जो कुछ स्थिति आ पडती है उसका ये लोग शोक करते है, यह बहुत वडी मूर्खता है। एक कवि ने लिखा है—करिष्यामि करिष्यामि करिष्यामीति चिन्तित। मरिष्यामि मरिष्यामि मरिष्यामीति विस्मृत॥ मैं करूंगा, मैं करूंगा, मै करूंगा इसका तो बहुत ध्यान रक्खा, पर मै मरूंगा, मे मरूंगा, मै मरूंगा यह बात बिलकुल भूल गए। ससारके दृश्यमान् सभी मनुष्योको देख लो, सभीको क्या खुदको भी देखलो। अपने आपके सम्बन्धमे यह मै भी अचानक किसी समय मर जाऊंगा ऐसा स्पष्ट निर्णय नही है। कहते है, सुनते है पर जैसे औरोके सम्बन्धमे यह निर्णय बना हुआ है कि ये लोग तो किसी न किसी दिन मरेंगे ऐसा अपने बारेमे इन मोही जीवोका स्पष्ट निर्णय नही है। कुछ-कुछ ख्याल तो होता है और उस मरनेका ख्याल भी बहुत करता है, किन्तु वहा स्पष्ट निर्णय अपनी मृत्युके सम्बन्धमे नही है।

धर्मपालनके पात्रकी चिन्तकता— भैया! धर्मपालन तभी हो सकता है जब अपने आपको ऐसा माना हो कि मृत्यु तो मेरे सिरपर आ ही चुकी है हिलाने भरकी देर है, जिस किसी भी क्षण हिला दे उसी क्षण मरना पडेगा, ऐसी सिर पर आ पडी हुई मृत्युका जिसे ख्याल हो वही धर्मपालन कर सकेगा। जैसे कहावतमे कहते है—आज करे सो काल कर, कल करना सो परसो। जल्दी-जल्दी क्या पडी है अभी तो जीना बरसो॥ जिसे अपनी मृत्युका ख्याल नहीं, सम्भावना नही उसका धर्मपालनमे चित्त नही लग सकता। मनुष्यभवमे अनेक प्रसग बड़े अनिष्ट है, जैसे कुटुम्बीजनोका बिछुड जाना, शरीरमे अनेक प्रकारके रोग आ जाना, लक्ष्मी का वैभवका नष्ट हो जाना, इज्जतमे जब चाहे कुछ फर्क आ जाना, यो बहुत सी अनिष्ट बाते इस मनुष्यभवमे हैं। देवभवमे इतनी अनिष्टता नही है चिरकाल तक देवोको जितनी आयु है, उससे पहिले उनका मरण नही होता। खाने पीनेकी चिन्ता

नही, सामर्थ्य और ऋद्धिया अनेक है। जहा क्लेश नही है, देवोके शरीरमे रोग नही होता, भूख प्यासकी बाधा नही इष्टवियोगका भी खासा दु ख नही है। देवागना मर गयी तो एवज मे कुछ ही समय बाद फिर दूसरी आ गयी। कोई देव गुजर गया तो देवागनाको कुछ ही समय बाद दूसरा देव मिल गया। तो जहा इतनी मौज है वहा कल्याणका अवसर भी नही है।

आत्मीय विशुद्ध आनन्दका स्रोत—एक जगह आचार्यदेवने कहा है कि हमारे क्लेशोका होना, शरीरका गन्दा रूग्ण मिलना, इष्टवियोग होना, ये सारी वेदनाएं हमे आत्महितमे प्रेरणा कराती है। कहते है ना लोग कि-दु खमे सब सुमिरन करें, सुखमे करे न कोय। जो सुखमे सुमरन करे तो दुःख काहेको होय॥ प्रभुस्मरणके समयका जो आनन्द है वह आनन्द बहुत-बहुत विषयोके भोगनेमे नही है। उसकी जाति ही न्यारी है। जब जगत्से न्यारे निर्लेप शुद्ध निर्दोष प्रभुके स्वरूपका ध्यान होता है और उस स्वरूपके स्मरणके साथ अपने आपके स्वभावका भी स्पर्श होता है उस समय जो सहज निराकुलता जैसी स्थिति और उसका आनन्द प्राप्त होता है, दोनो आनन्दोमे आप तुलना कर लीजिए। सासारिक सुख याने विषयसुख एक तो क्षोभसे भरा हुआ है अर्थात् इन्द्रियसुखमे तो प्रारम्भमे क्षोभ, भोगते समय क्षोभ, बिछुड़ते समय क्षोभ, मिले तो क्षोभ और विषयोकी आशा हो, मिले नही तो क्षोभ, किन्तु आत्माके सहज अतस्तत्त्व के स्मरणमे अनुभवमे जो आनन्द होता है वह क्षोभरहित समताको फैलाता हुआ विशुद्ध आनन्द प्रकट होता है। उस आनन्दकी जिन्हे सुध नही है अतएव जो बुद्धिहीन हो गए हैं वे बाहरी बातोके सयोग वियोगका तो लेखा जोखा लगाते रहते है, किन्तु अपने आपके सम्बन्धमे इतना भी ध्यान नही है कि हम तो यमके दातोके बीच फँसे हुए हैं, न जाने कब दबोच दे। अशरण भावनामे अनेक पद्धतियोसे यह बात दिखा रहे है कि इस जीवके लिए बाहरमे कुछ भी दूसरा पदार्थ शरण नही है।

अस्मिन् ससारकान्तारे यमभोगीन्द्रसेविते।
पुराणपुरुषा पूर्वमनन्ता प्रलय गता ॥१०२॥

इष्टवियोगके क्लेशकी व्यर्थता—कालरूपी सर्पोसे भरे हुए इस ससाररूपी बनमे पहिले भी अनेक अनन्तपुरुष, पुराणपुरुष प्रलयको प्राप्त हो गए, तब निकट भूतकालमे जो कुटुम्बमे अनेक लोग मृत्युको प्राप्त हो गए उनकी शका करना वृथा है। कोई इष्टवियोग हो जाय तो शोक तो होता है पर करीब-करीब जैसे-जैसे दिन व्यतीत होते जाते है वैसे ही वैसे शोकमे अन्तर भी दिखता है। कोई ही विचित्र व्यामोही ऐसा होगा जो बीसो वर्ष

गुजर गए इष्टके वियोगमे फिर भी आज भी जैसे पहिले शोक किया था वैसा ही बन रहा है। करीब-करीब ऐसा होता है कि जैसे जैसे दिन गुजरते जाते है, शोक भी कम होता जाता है और ज्ञानी जोवो को तो उस काल भी शोकमग्नता नही हुआ करती है।

निर्मोहपर इष्टवियोगकी प्रतिक्रयाका अभाव—किसी सभामे रोज-रोज एक सेठ जी आया करते थे शास्त्र सुनने। एक दिन आध घटा लेट आये तो वक्ताने पूछा कि सेठ जी आज आपको आध घटा देर कैसे हो गयी ? सेठ धर्मात्मा था, ज्ञानी था, सम्यग्दृष्टि था, उसने कहा महाराज ! आज एक महिमान गया है सो उसकी बिदाईमे आधघटा देर हो गयी है। सभो लोग सुनकर हैरान हुए यह तो कभी किसी महिमानके आने जानेमे शास्त्रसभामे देर करके नही आते थे, आज कैसे एक महिमानके बिदा करनेमे देर करके आये ? लोगोने कहा सेठ जी से कि उस महिमानकी बिदाई का टाइम बदल देते। तो सेठ बोला कि अन्य महिमानोकी बिदाईका टाइम बदला जा सकता है, पर उस महिमान की विदाईका समय नही बदला जा सकता था। आखिर सब लोगोको पता पड गया कि इसका इकलौता बेटा था वह गुजर गया है। तो देखो ऐसी बात थी पर उसके मुखपर विषादकी रेखा न थी। ऐसी बात मे मोहीजन तो विषाद मानेगे और यही विश्वास करेगे कि ऐसा हो नही सकता कि पुत्रके गुजर जाने पर विषाद पैदा न करे। पर यह सब सभव है। जिसे केवल अपना ही स्वरूप, अपना ही शरण नजर आ रहा है और इस पर ही मेरा अधिकार है, यह मैं मझसे कभी अलग नही हो सकता, प्रत्येक स्थितिमें यह मैं ही उन अनेक परिस्थितियोको भोगा करता हूँ—ऐसा जिसे अपने एकत्वस्वरूपका भान हुआ है, उस पुरुषको ये सयोग वियोग ये न कुछ बाते मालूम होती है।

ज्ञाताद्रष्टा रहनेमे बुद्धिमानी—हे आत्मन् ! इस ससारवनमे अनेक पुराण पुरुष बडे-बडे, जिनका बडा ऐश्वर्य था वे भी बिछुड गए, गुजर गए तो उस ही पद्धतिके अनुसार यहा भी कोई इष्ट गुजर गया, उस का शोक करना व्यर्थ है। 'या घर या ही रीति है, इक आवत, एक जात।' सब अपना-अपना हिसाब लगा लो। ये नये आये, पुराने चले गए। जिस बात पर अपना वश नही है, हो रहा है, परका परिणमन है उसके ज्ञाताद्रष्टा रह सकें, ऐसा ज्ञान बनाये, साहस बनाये, यह तो बुद्धिमानीका काम, पर किसी प्रसगमे रो देना, यह तो कोई बुद्धिमानी नही है।

प्रतीकारशतेनापि त्रिदशैर्न निवार्यते।
यत्रायमन्तकः पापी नृकीटैस्तत्रका कथा ॥१०३॥

आनन्दकी अनिवार्यता—इस मरणका निवारण तो देव भी नही कर सकते। चाहे वे सैंकडो उपाय कर ले फिर इस मनुष्य कीटकी तो कहानी ही क्या है? मनुष्य अपनी रक्षाके लिए वहुत सुदृढ मकान बनाते है, मजबूत दीवाल, कोट, खाईके बीचमे बहुत अच्छा भवन जिसमे सर्दी गर्मी ऋतुके अनुकूल सारी सुख सामग्री रखते हैं, ताकि किसी भी प्रकार यह देह मिटे नही। डाक्टर भी लगा रक्खा है, बडे उपचार भी किये जा रहे हैं, वहुत-बहुत प्रयत्न करने पर भी किसीको पता नही कि किस समय यह मनुष्यकीट ससारसे विदा हो जाता है? एकका मित्र बीमार था, वह अपने बीमार मित्रसे मिलनेके लिये शामके समय गया। बीमार मित्रसे पूछा—कहो भाई अब कैसी तबियत है? बोला—क्या बतायें, बिस्तरसे उठा ही नही जाता, करवट भी नही बदल पाता, बहुत कठिन बीमारी है, हिला डुला भी नही जाता। कुछ बाते होनेके बाद वह मित्र अपने घर चला गया। सुबह ९ बजे फिर अपने मित्रकी खबर लेने आया, घरके लोगोसे पूछा कि अब हमारे मित्रकी कैसी हालत है? तो घरके लोगोने बताया कि वह तो चला गया। कहा चला गया? वह तो दुनियासे चला गया। तो वह झुझलाकर कहता है कि कल तक तो यो कहता था कि बिस्तरसे उठा जाता नही, आज उसमे दुनियासे भी जानेकी ताकत आगयी। वह बडा धोखेबाज निकला। तो यहा किसकी शरण गहते हो यहा कौन शरण हो सकता है, सभी तो अशरण हैं। जो स्वय अशरण हो उनसे शरण मिलनेकी आशा क्या? जो स्वय शरणभूत हो गए हैं वे हैं परमात्मप्रभु। वे भी परद्रव्य है, वे हमारा हाथ पकडकर तार न दग। जो शरण हुए है, समर्थ हुए है उन जैसा स्वभाव मुझमे है। मैं खुद खुद की ही शरण गहू तो मेरे लिए मैं ही शरण हूँ।

अज्ञानमे ही सर्वत्र क्लेश—भैया? घर पकड़ कर रहते हैं तो वहाँ भी कष्ट है। घर पकड़मे नही रहता। कुटुम्ब पकड़कर चलत हैं तो वहाँ भी कष्ट है। कुटुम्ब रहता नही सदा। इस शरीर की पकड करत है तो इसमे भी कष्ट है। यह शरीर भी रहता नही है और एक अपने आपके स्वरूपकी पकड करें तो यह तो कही जाता नही। हम इसका ग्रहण न करें तब भी मेरे ही पास है और जो शाश्वत है उसको ग्रहण करें तो इस स्वरूपकी ओरसे धोखा इसका नही है। हम ही छोड दे यह बात अलग है जैसे हम परपदार्थोंका ग्रहण करते हैं तो वहाँ परकी तरफसे धोखा रहता है। कभी भी उसका वियोग हो सकता है। हम अपने स्वरूपका ग्रहण करे तो स्वरूपकी ओरसे तो धोखा है ही नही। हम ही ग्रहण न करें यहहमारी बात है। तो ऐसे निजस्वरूपका जिसके ग्रहण है उसके लिए मृत्यु नही है। उसके ध्यानमे ही नही कि मै मरा। मै तो यहाँ हूँ, यहाँ न रहा,

दूसरी जगह चल दिया।

ज्ञानमे सर्वत्र आनन्ददृष्टि—जिस नगरमे, देशमे किसीसे अपना परिचय न हो और वहा कोई यह कह दे, स्टेशन पर हो या किसी जगह हो, भाई साहब ! आप यहा न वैठिये, वहा चले जाइये। तो उसको उस स्थानको छोडकर चले जानेमे कष्ट नही होता, विकल्प नही होता, विवाद नही होता, और जिस देशमे, नगरमे परिचय हो गया हो और वहा कोई कह दे—साहब आप यहा न बैठिये, वहा बैठ जाइये, तो वह बुरा मान लेता है। जिस जगह कोई अपना परिचय वाला न हो वहा गालियाँ भी सहन हो जाती है और जिस जगह परिचय हो वहाँ एक साधारण बात भी सहन करना कठिन है। मेरे जानने वाले लोग मुझे क्या समझ रहे होगे कि यह न कुछ चीज है। यो विकल्प बढ गये। तो अब समझिये कि इस ज्ञानी सम्यग्दृष्टि पुरुषने इन मायामय चीजोसे कोई परिचय नही करा रखा है, सबको अपरिचित जान रहा है। ये दृश्यमान् शरीर, ये मायामयी मूर्तियां हमे जानती ही नही।

अज्ञानका कारण बाह्य परिचयकी कल्पना—कही कहुतसे काठ पत्थर ढेलोके बीचमे से कोई जा रहा हो और कोई ढेला लग जाय तो उस समय वह अपना अपमान तो नही महसूस करता, क्योकि वह जानता है कि ये ढेले पत्थर तो अचेतन है। लग गये मुझपर तो लग गये, अपना अपमान महसूस नही करता कि यह ढेला मुझ पर गिर क्यो पडा ? इसने मेरा बडा अपमान किया। कही परिचय हो और वहाँ कोई पत्थर गेर दे सिर पर तो अपना अपमान महसूस करता है। पत्थरके सम्बधमे वह खूब जानता है कि इस पत्थरसे मेरा कुछ परिचय नही है, ये पत्थर भी कुछ अपमान महसूस नही करते, पर वह परिचित लोगोके बीच अपना अपमान महसूस करता है। ज्ञानी पुरुष इन दृश्यमान् सभी परपदार्थोके प्रति यह समझ रहा है कि ये मुझे जानते ही नही, इनमे जाननेका स्वभाव ही नही पडा हुआ है। ये दृश्यमान् सभी मुझे जानते ही नही हैं और जो जानने वाला खास है वह अत्यन्त गुप्त है, वह व्यवहारमे आता नही, मुकाबलेमे खडा होता नही, वह तो निर्विकल्प है। यो इस जगत्के अपरिचित समझने वाला सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष क्षोभको प्राप्त नही होता है, लोगो के किसी प्रकारके व्यवहारके कारण।

मरण समयमे ज्ञानी पुरुषके खेदके अभावका कारण—ज्ञानी पुरुष आयुका क्षय हो जाय तो वह कहाँ क्लेश मानता है ? जैसे अपरिचित स्थानमे किसीने कह दिया, बाबू जी आप यहाँ न बैठिये, वहाँ बैठ जाइये तो वह उठकर चला जाता है, उसका

खेद नही मानता ऐसे ही अब नवीन आयुकर्मका उदय आनेको है तो उसने पहिलेसे ही कह दिया कि अब महाराज यहाँसे जाइये और उस जगह चले जाइये, जो दूसरे भवमे जन्म स्थान है । तो यह तैयार रहता है, अच्छी बात है लो अब वहाँ चलो और जिस जीवने यहाके समागममे, वैभवमे, परिजनमे परिचय बनाया है और उनके इस व्यवहारके कारण अपने यश और नामकी कल्पना की है उसे अब यहाँसे उठकर अन्यत्र जानेमे क्लेश होता है क्योकि इसकी दृष्टि इस परिचित समागममे लगी है कि ये सब छूटे जा रहे है। बडा परिश्रम करके तो हमने इतना कमाया, इतना वैभव इकट्ठा किया, ऐसी पोजीशन बनायी, इतने आरामके साधन इकट्ठे किये, लेकिन अब यो जाना पड रहा है।

दु.ख दूर होनेका यत्न—भैया! दु खसे दूर होनेके लिये यह उपाय नही करना है कि बहुतसे परिग्रहोका सचय करलो, यश बढा लो, नायक बनलो। यह तो होता है इस पुण्योदयके अनुसार। यह भी कर्मफल है। पर करनेका प्रयत्न तो अपनेको अपना परिचय बनाया और इन दृश्यमान् जालोसे अपरिचित बनाना, यह अन्त' एक ज्ञानमय कार्य करनेको पडा हुआ है। यह बात समाई तो मृत्युका भी दु ख नही है और अपने स्वरूप की बात न समाई तो इन्द्र भी हो, चक्री भी हों ये सबके सब इस यमके पञ्जेके वशीभूत होकर दु.खी हुआ करते हैं यह मरण बडे-बडे देवोके द्वारा भी निवारण नही किया जा सकता तब फिर यह नरकीट जो देवोके समक्ष ऋद्धि बल आदिकमे कीटकी तरह है इसकी तो कहानी ही क्या है ? तात्पर्य यह है कि काल दुर्निवार है। तब कभी भी अपना अचानक मरण सम्भव है। जब तक मरण न आये तब तक आत्मकल्याण कर लो और जब एक दम समय आ ही पडेगा तो करते भी कुछ न बनेगा और सक्लेश मरण होनेसे अगले भवमे भी पीडा होगी, ऐसा एक निर्णय बना लें। इससे जगत्को असार जानकर अपने स्वरूपकी शरण गहे और अपने आपके बर्तावसे अपने आपमे प्रसन्न रहनेका यत्न करे।

गर्भादारभ्य नीयन्ते प्रतिक्षणमखण्डितै ।
प्रयाणैः प्राणिनो मूढ कर्मणा यममन्दिरम् ॥१०४॥

संसारी जीवोका जन्मके अनन्तर ही यममन्दिरकी ओर प्रयाण—हे पर्यायबुद्धि प्राणी! देख यह आयु नामका कर्म गर्भसे लेकर ही निरन्तर प्रतिक्षण अपने प्रयाणो द्वारा यमकी मूर्तिकी तरह इस प्राणीको लिये जा रहा है, इसका तो विचार कर। यह जीव जबसे गर्भमे आता है अर्थात् जन्म स्थान पर पहुचता है तबसे ही यह निरन्तर प्रति समय मृत्युकी ओर जा रहा है। मरण दो प्रकारके होते है—एक आवीचि मरण और एक तद्भव मरण। जबसे यह जीव नवीन भवमे आया है तबसे लो दो मिनट निकल गए तो

इसका अर्थ है कि दो मिनटका मरण हो गया। प्रति समय यह जीव मरता जा रहा है। आयुके क्षय होनेका नाम मरण है। आयुका प्रति समय उदय चलता है। तो जितने निषेकोका उदय आ रहा है उतने निषेक तो नष्ट ही हुए अर्थात् प्रति समय जो आयुका समय निकल रहा है, यह है आवोचिमरण और जब इस भवसबन्धी आयुके समस्त विपाक निकल जायें तो उसे कहते है तद्भवमरण। तद्भवमरण तो लोग जानते है कि यह जीव अब मर गया, पर आवीचिमरणकी तरफ बिरले ही ज्ञानी पुरुषोका ध्यान रहता है। तो प्रति समय मरण हो रहा है। जिस नवीन भवकी आयु मिली उस ही का नाम पूर्वभवका मरण है।

प्रतिक्षण मरण और हमारा कर्तव्य—जन्म और मरण इन दोनो का एक ही समय है। इसही प्रकार इस जीवनमे प्रतिक्षण जो जीवन चल रहा है वह प्रतिक्षणका जीवन ही मरण है। जब जैसे यह उपदेश दिया जाय कि मरणके समयमे समतापरिणाम करो, समाधिमरण करो, विषय कषाय मूर्छाका परिहार करो तो उसका भी तो यही अर्थ लो कि हम प्रति समय समतापरिणाम रखनेका यत्न करे। क्योकि हमारा मरण प्रति समय हो रहा है तब हम समाधि मरण भी प्रति समय बनाये रहे अर्थात् समतापूर्वक अपना जीवन बिताये। इस ही कल्याणकी बातका ध्यान दिलाने के लिए इन शब्दोमे कहा जा रहा है कि देख हे मूढ ! जबसे तू गर्भमे आया है तबसे तू निरन्तर यमराजके महलकी ओर जा रहा है अर्थात् मृत्युके निकट पहुच रहा है। पर सोचते तो यह है कि हम बड़े हैं, हमारी उमर इनसे बडी है, पर इसका ख्याल नही रखते कि इस प्रकार का काल्पनिक बडा-बडा बनाकर यह काल, यह व्यतीत हुई आयु हमे एक दिन बहुत ही निकट कालमे इस भवसे बिदा कर देगी, हमारा मरण हो जायेगा, यह काल हमे खा लेगा—इसका ध्यान नही है और बडा बडा मानकर मोहमे भूला फिरता है। अब हम इतने बड़े हो गये। यह जीव गर्भसे लेकर प्रतिक्षण यम अर्थात् मृत्यु क्षयकी ओर ही जा रहा है, फिर तू यहा किसकी शरण ढूंढता है ?

यदि दृष्ट. श्रुतो वास्ति यम ज्ञावञ्चको बली।
तमाराध्य भज स्वास्थ्य नैव चेत्कि वृथ श्रमः ॥१०५॥

दुर्निवार यमाज्ञा—यदि तू ने इस यमसे भी बलवान् कोई पुरुष देखा हो जो यमकी आज्ञाको भी भग करदे ऐसा देखा हो अथवा सुना हो तो हे प्राणी ! तू जा, उसकी ही शरणमे रह, उसकी ही आराधना कर, क्योकि अब यमराजसे भी कोई बली पुरुष तुम्हे मिल गया है। लेकिन मिलता भी है कोई क्या ? ससारमे कोई जीव ऐसा है क्या कि जो मृत्यु से बाहर हो ?

नही है। हो कोई यदि इस लोकमे ऐसा जीव तो उसकी सेवा करो। है कोई क्या ऐसा? हा है। जिसका अब कभी जन्म न होगा ऐसे जो सिद्ध भगवंत हैं, वे हैं यमसे भी ज्यादा वली। उन्हे कहते हैं कृतान्तान्तक। जिसने कृतान्तका भी अन्त कर दिया है, मृत्युसे भी, जन्म से भी जो परे हैं उनकी सेवा करो।

यमाज्ञाके लोपका यत्न—हे आत्मन्! तू अपने ही स्वरूपमे तो देख, तेरा सत्त्व मृत्युसे बली है। मृत्यु तेरे सत्त्वको समाप्त नही कर सकती तब अपने आपमें सहज विराजमान् जो यह चैतन्यस्वरूप है इस चैतन्य-स्वरूपकी उपासना कर। एक अपने आपके शरणको त्यागकर बाहरमें कही भी शरण ढूंढा तो ये तेरे परिश्रम व्यर्थ हैं। कोई शरण नही मिलने का है। अशरणको शरण मान मानकर अपने आपको धोखेमे बनाये रखना, इससे तो बुरी दुर्गति होगी। बाहरमे तू किसी को भी शरण मत समझ। एक अपने आप को यदि निर्विकल्प बना सकता है, मूर्छासे परे रख सकता है तो तेरे लिये तू ही शरण है। तू शरण मिल जायेगा? अन्यथा बाह्यदृष्टिसे तो केवल दौड धूप हीं है, श्रम ही है, वेदना ही है क्षोभ ही क्षोभ है, खूब परख लो।

आत्महितका तन्त्र—भैया! इतना ही तो एक तत्त्व है। जहा अन्य पदार्थोंकी ओर आकर्षण हुआ तो क्षोभ होने लगेगा। जहा अन्य पदार्थोंकी ओर आकर्षण न करके अपने सहजस्वरूपकी निरख अथवा इसही मे घुलमिलकर अपने उपयोगको बनाया तो सारे झझट समाप्त हो जाते है। किसी समय अपने आपकी ऐसी परिस्थिति बने तो सही, मिनट दो मिनटको भी। यदि सबको तू भूलकर अपने आपके इस ब्रह्मस्वरूपमे निवास करता है, ऋषी सतोकी आज्ञा मानता है तो कही इन दो चार मिनटोमे ही घर न उजड जायेगा, परिजन भाग न जायेंगे। यदि तुझे इस मे शान्ति न मालूम पडे तो घर तो पडा ही हुआ है। दिन रात उसही मे बसा रहे, पर एक बार इस उपायका जैसा कि ऋषि सत बार-बार कह रहे हैं झलक तो लो, यत्न तो करो और कुछ अपने आपमे विश्राम पानेकी परिणति तो बने। बाहरमें कोई भी पुरुष ऐसा बलवान न मिलेगा जो यमराजकी आज्ञा का भी भग करने वाला हो।

परस्येव न जानाति विपत्तिं स्वस्य मूढधीः।
वने सत्त्वसमाकीर्णे दह्यमाने तरुस्थवत् ॥१०६॥

मूढको स्वविपदाका अपरिचय—ये मोही प्राणी दूसरोकी आपत्ति को तो खूब जानते है, लिखते हैं, देखते हैं, दूसरा मरे तो उसका बड़ा प्रत्यय रखते हैं, मरा ही करते हैं लोग, पर दूसरोकी आपत्तिकी तरह अपने आपकी आपत्तिका यह मूढ जीव ख्याल नही

करता है। जैसे कोई मूर्ख जंगलमे गया और एक वृक्षपर चढ़ गया, वृक्ष पर चढा हुआ वह देख रहा है कि जगलमे चारो ओर आग लगी हुई है और उस आग लगी की स्थितिमे यह भी दीख रहा है कि देखो यह खरगोश जला जा रहा है, यह साप, यह हिरण, यह सिह देखो ये कैसे जले जा रहे है ? वृक्षपर चढा हुआ वह मूर्ख कौतूहल देख रहा है और यह ख्याल नही होता कि अभी कुछ ही देरमे यह पेड भी तो जल जायेगा जिस पेड़पर हम खड़े हुये है, हम कहा जायेंगे ? क्या होगा ? हम बचेंगे या न बचेंगे ? इसका कुछ भी ख्याल नही होता।

उपदेशकी सुकरता व पालनकी दुष्करता—यह प्राणी दूसरोकी आपत्तिको तो देख रहा है कि इन पर यह आपत्ति आया करती है पर खुदकी आपत्ति को नही देख रहा है। कुछ अनहोनी हो जाय दूसरोकी तो उसका यह बडा ज्ञाता द्रष्टा बन जाता है। यह हो गया, होता ही है। दुनियाकी रीति है। जो आया है वह जाता है। उसे उपदेश देनेके लिये भी बडा पडित बन जाता है, समझाता है। अरे तुम मूर्खता कर रहे हो तुम मोह कर रहे हो, अज्ञानी बन रहे हो। तुम्हे कही ऐसा शोक करना चाहिये, यो उपदेश दे डालता है, पर खुद पर उससे चौथाई भी आपदा आ जाय तो वह विह्वल हो जाता है। यह चतुर मनुष्य कथनी करता है खुद जब चैनमे है। दूसरोके विषयमे बड़े उपदेश झाडता है, समझाता है पर स्वयमे यह साहस बनाया ही नही कि ऐसी विपदा मुझपर आये तो उस विपदाको समतासे सहन कर लूँगा, उसमे खेदखिन्न न होऊ गा।

पर उपदेश कुशल बहुतेरे—हिन्दी उपदेशमे कहा करते हैं—पर उपदेश कुशल बहुतेरे। दूसरोके उपदेश देनेमे कुशल बहुतसे लोग है। किसीको सर्दी हो जाय, जुखाम हो जाय। कुछ बात हो जाय तो आपको सभी लोग वैद्य ही वैद्य दीखेंगे। कोई कहेगा कि काली मिर्चका काढा पीलो, कोई कहेगा एनासीनकी गोली खा लो, कोई कुछ बतायेगा कोई कुछ, पर ऐसा शार्यद ही कोई मिलेगा जो उसे न समझाये या उसकी दवा न जानता हो, ऐसे ही दूसरे जीवो पर किसी प्रकारकी विपदा आ जाय तो उस विपदामे धैर्य देनेके लिये भी सभी अपनी कुशलता बताते है पर उन वचनोका स्वय पर कोई असर डाले दृष्टि दे तो शून्य निकलता है करीब-करीब। सभी नही होते ऐसे। ज्ञानी ही, विवेकी ही ऐसे हुआ करते हैं।

उपदिष्ट नियमके पालनकी दुष्करता पर एक दृष्टान्त—दूसरोको समझाना दूसरोका कौतूहल देखना यह सब सुगम रहता है और अपने आप पर ज्ञान प्रयोग करना यह कठिन रहता है। इसी प्रयोगके लिये ज्ञानबलकी अधिक जरूरत रहती है। एक

कहावत ऐसी प्रसिद्ध है कि एक सभामे एक पडित जी उपदेश दे रहे थे। बैंगन न खान चाहिये, उसकी अनेक मोटी पर्त होती हैं, इससे उसमे कीडे छिपे रहते है, बैंगन ना इसीसे है कि वे बे गुन हैं अर्थात् उनमे कोई गुण नही है, इस प्रकार का उपदेश पडित ज सभामे दे रहे थे। उनकी स्त्री भी यह उपदेश सुन रही थी। तो उपदेश समाप्त होने बाद स्तुति पढी जा रही थी तब उन पडित जी की स्त्री जल्दीसे घर गई और जो भटे क साग बनाया था उसे फेंक दिया नालीमे, सोचा कि कही पडित जी नाराज न हो पंडित जं जब घर आये और खानेके लिये चौकेमे बैठे तो देखा कि कोई साग नही है। स्त्रीसे पूछ कि कोई साग नही बनाया ? तो स्त्री बोली कि बैंगनका साग बनाया था। आपका उपदेश सुनकर मैंने उसे नालीमे फेंक दिया, सोचा कही आप नाराज न हो। तो पडित जी बोले अरे वह उपदेश तो सभामे बोलनेके लिये था, वह तो दूसरोके लिये था, जा नालीसे साग ऊपर ऊपरसे बटोर ला। यह प्राणी दूसरोंको तो खूब उपदेश दे लेता है, पर खुदपर नही घटित करता तो जैसे जगलमे पेड पर चढा हुआ वह मुसाफिर कौतूहल देख रहा है पर खुदकी कुछ खबर नही है, ऐसे ही ये ससारके प्राणी दूसरोके मरण को तो देख रहे है, पर खुदका भी किसी दिन मरण होगा, इसका कुछ विचार नही करते। यही तो पर्यायबुद्धि का दोष है।

यथा बाल तथा वृद्ध यथाढ्य दुर्विध तथा।
यथा शूर तथा भीरु साम्येन ग्रसतेन्तकः ॥१०७॥

अन्तककी यमवर्तिता—यह मरण, आयुक्षय, यमराज देखो बडी समतासे जिसे खा लेता है। जैसे बालकको ग्रसता है वैसे ही वृद्धको ग्रसता है। कोई मृतकोकी सख्या करे तो करीब-करीब यही बात दीखेगी कि मरने वालोमे जितनी सख्या वृद्ध लोगोकी है उतनी ही सख्या जवान और बालको की भी है। सभीको यह यम समतासे ग्रस लेता है। यह अलकारमे कह रहे हैं, कही यम नामका कुछ रहता नही है। आयुके क्षयका नाम यम है। प्रकरणमे यह बता रहे हैं कि यह मरण सब पर अचानक आ जाता है। यह विश्वास नही किया जा सकता कि ये तो बच्चे हैं, ये तो ५० वर्ष जीवेंगे—यह दम भरकर कोई नही कह सकता कि किसकी कब अचानक मृत्यु आ जाय ? जैसे यह यम अचानक ही बालक को ग्रस लेता है वैसे ही वृद्धको ग्रस लेता है। इसके पक्षपात नही है कि बूढ़ेको ग्रस ले और बालकको न ग्रसे। यह यमराज जैसे धनिकको ग्रस लेता है ऐसे ही दरिद्रको ग्रस लेता है। वहा यह पक्षपात नही है कि यह गरीब है इसे ग्रस लो और इस धनिकको न ग्रसे। यममे (मरणमे) किसी प्रकारकी विसमता नही। जैसे ही शूरवीरको ग्रसता है वैसे ही यह

कायरको ग्रसता है। यो सभी मरते जा रहे है। जब सभी जीव एक इस पञ्चत्वको, मरण को ही प्राप्त होते है तब इनमे से हम किसका शरण ढूंढे ? इस यमराजका नाम समवर्ती भी है, परेतराट् भी है। मरण मृत्यु यह श्मशानका राजा है। इसका नाम समवर्ती भी है। ये मृत्यु सब प्राणियोमे समान है।

स्वय समता धारणकी शिक्षा—यहा यह भी शिक्षा लेना कि ऐसे दुष्ट यममे तो समता बनी है और हम लोग जो इतने धर्मके प्रसगमे हैं, धर्म पालनके लिये यत्न करते है उनके समता न जगे, यह खेदकी बात है। भीतरमे हम आप सबके ऐसी श्रद्धा रहनी चाहिये कि जो उदारताका बीज बने, कुछ भी विगड गया हो उसको झट क्षमा कर सके। क्या है ? ससार है, प्रवृत्तिया है और प्रथम तो यह बात है कि दूसरे लोग अपराध नही करते है। यह खुद कषायोसे भरा हुआ है सो कल्पनाये बनाता है और अपने अपराधसे अपने आपको दलित करता रहता है।

ज्ञानका आचरण—भैया ! ऐसा ज्ञान बसावो जो उदारताका बीज हो। कोई धन वैभव क्षीण हो गया, हो गया, पर चीज है। रहा तो रहा, न रहा तो न सही। दोनो स्थितियोमे इस विभक्त चैतन्यस्वरूपमात्र आत्माका कौनसा विगाड है ? उदारता बन सके ऐसा ज्ञानप्रकाश जगे। मोह, मूर्छा, पक्षपात, आसक्तिमे कुछ भी हित नही है। अनुदार वृत्तिमे अपना समय ही गमाया जा रहा है, ऐसा निर्णय रखिये और है क्या ? क्षमा कर दिया किसीको तो पुण्य ही बना। और इससे भी अधिक वैभव, यश, विश्रामके साधन, शान्तिके समागम और भी कई गुने प्राप्त होगे। नम्रता वर्तो तो इससे भी अधिक लौकिक सम्मान मिलेगा और पारलौकिक सम्मान मिलेगा, क्यो व्यर्थमे यहां वहाकी बातोमे उपयोग डालकर अपनेको बरबाद किया जाय ? सदा साफ सीधी बात कहे तो इसे अपने दिमागमे कुछ चिन्तन न करना पड़ेगा, स्पष्ट रहेगा। क्यो किसी पदार्थ की तृष्णा बनाये, तृष्णासे लाभ क्या है ? केवल क्लेश ही प्राप्त होगा तृष्णा करने से। समता जैसे बने, उदारता जैसे जगे, ऐसा ज्ञान बनानेका अपनेको यत्न करना चाहिये।

गजाश्वरथसैन्यानि मन्त्रौषधबलानि च।
व्यर्थीभवन्ति सर्वाणि विपक्षे देहिना यमे ॥१०८॥

अन्तकालमें उपायोंकी व्यर्थता—जब यह काल इस प्राणीके विरुद्ध हो जाता है उस समय हाथी, घोडे, रथ, सेना, मत्र, औषधि—ये सब बल व्यर्थ हो जाते हैं। किसी वैद्यसे रोगीको दिखायें तो वैद्य दम भरता है कि मेरी ऐसी अचूक औषधि है कि रोगीका

रोग नह रही सकता, पर साथ ही यह भी कहना पडता है कि यदि इसका अन्तकाल नही आया हो तो रोग तो ठहर नही सकता। उनका दम भरना भी ठीक है। वैद्यका रोगीसे हाथ लग जाय तो उस रोगीका रोग ठहर ही न सके, यह बात उनकी दृष्टिसे बिल्कुल सच है। या तो वह ठीक हो जायेगा इसलिये रोग न ठहरेगा या मरण हो जायेगा तो फिर रोग ठहरेगा कहा ? वैद्य लोग दम भरकर कहते है। उनकी बातमे कुछ कसर नही है।

खाली हाथ जाना—लोग अपनी रक्षाके लिये हाथी, घोडाका वैभव रखते हैं, सेना साज दल बल रखते है, कोई शत्रु मेरे पर न आ जाय, मेरा बिगाड न कर सके तो ये सब सामान रखते है किन्तु सुना होगा सिकन्दर ऐक बहुत बडा बलिष्ट राजा हो गया है। उसने इस भूमि पर बहुत अधिक दूर तक अपना राज्य फैला लिया था, किन्तु जब वह गुजरने लगा, इतने बड़े विस्तृत राज्यका अधिकारी सम्राट् सिकन्दर मरते समय यह सोचने लगा कि इस समय मेरा को; साथो नही हैं। इतनी बडी सेना बडा वैभव, राजा लोग जो चरणमे नतमस्तक होते हैं ये कोई भी मेरे साथी नही हो रहे हैं। मैं इतना पराक्रमी एक इस आयुक्षयसे ही हार गया। मरते समय उसके वैराग्यसा हुआ और लोगोसे यह कह गया—ऐ मन्त्रियो ! देखो मरने के बाद जब लाशको तुम ठटरी पर धरकर बाजारोमे से ले जावोगे तब मेरे दोनो हाथोको बाहर निकाल कर ले जाना, ताकि दुनियाके लोग यह जान जाये कि इतना बडा वैभववान् यह सिकन्दर आज खाली हाथ जा रहा है।

वैभवसे अलाभ—कुछ भी वैभव हो, इस वर्तमान वैभवसे इस जीव को अज्ञानी पुरुषको कुछ लाभ है क्या ? जब तक वैभवका सयोग है तब तक मूर्छा ममता विकल्प चिन्ता अनेक छल बल करके अपने आपके इस चैतन्यप्राणका घात कर रहे है और जब इस वैभवका वियोग होता है इस वैभवको छोडकर मर जाता है उस समय तो यह महान् सक्लेश करता है। अहो ! बडे छल बलसे बडी कलाकुशलतासे अनेक श्रम करके यह वैभव सचित किया था, आज यह सारा का सारा छूट रहा है। यो सोचकर मरते समय यह जीव बहुत दुःखी होता है और मरणके समयमे जैसा परिणाम होता है उसके अनुसार अगले भवकी जिन्दगी भी चला करती है। दुःखपूर्वक मरे, सक्लेश सहित मरण हो तो अगले भवमे भी इस जीवको ऐसे साधन जुटते हैं कि वहा भी सक्लेश करेगा।

मरणसे बचानेका अतिप्रेमीका भी अनधिकार—जब यह काल इस प्राणीके विरुद्ध हो जाता है तब ये सारे ठाटबाट यो ही पडे रह जाते है, कोई भी वश नही चलता। मा आखें फाड-फाडकर देखती रहती है, यह मेरा पुत्र मेरे ही सामने जा रहा

है। अरे इसके एवजमे मैं न मर गयी। कितना तीव्र मोहसे व्याकुल होकर उन तडफती हुई आखोसे निहारती रहती है लेकिन वश कुछ नही चलता। परिजन मित्रजन बडा बल लगाते है, भाव बनाते है और यह कहता है कि सारी सम्पदा भी खर्च हो जाय पर मेरा यह इष्ट बच जाय और खर्च भी कर डाले सब सम्पदा तो भी आयुक्षय किसीसे बचायी जा सकती है क्या ? हे आत्मन् ! अपनेको ऐसा तो निरखो कि यह जिन्दगी सदा न रहेगी। किसी दिन तो समाप्त होगी ना। तो इस थोडी सी जिन्दगीमे अपना शुद्धभाव रखना चाहिये।

कषायोको दूर करनेका सन्देश—क्रोध कम हो, लोगोको क्षमा कर दीजिये। यह अभिमान किस पर बगराना है ? कौनसी चीज हमारा बडप्पन बनाने वाली है ? सब कुछ असार है, भिन्न है, पर है। नमताका भाव रहे। किससे छल करना, किसके लिये विश्वासघात कपट समाचार करना ? अरे इस मायाचारके परिणामसे यह जीव अनेक पापोके वध करता है और करीब-करीब मायाचारी पुरुष पर इस भवमे भी बुद्धि दोष की आपत्ति आती है, चित्त ठिकाने नही रहता, दिमाग बिगड जाता है। यहा किस बात पर लोभ करना, धन सचय करके रखना ? कोई चीज अपने रखाये रहती भी है क्या ? कितना भी उदारचित्त होकर परोपकार मे लगा दिया जाय वैभव, फिर भी जितना पुण्य है उससे भी और बढता है और उसके अनुसार पता नही है कि किस प्रकारसे वैभव और आ जायेगा। न आये तो परोपकारमे व्यय करके यह सन्तोष तो किया जा सकता है ना जो कि बात भी सत्य है कि यह धन परोपकारमे न लगता तो न जाने किन अन्य उपायोसे नष्ट हो जाता ? रखायेसे वैभव रहता नही है।

धर्ममे अग्रसर होनेकी प्रेरणा—भैया ! कषायोको मद करके अपने आपको आत्मश्रद्धान, आत्मज्ञान और आत्म-आचरणमे लगाना चाहिये। मोक्षमार्गका आदर करो, वैभवका आदर मत करो। यह वैभव रहकर भी दु खी करेगा और जाकरभी दु खी करेगा। वैभवका सयोग भी कष्ट देगा और वियोग भी कष्ट देगा। यह तो पुण्यानुसार जो कुछ आता है आने दो, उसके समझदार बनो। उसमे गुजारेकी व्यवस्था बनाओ और अपने आपके जीवनको 'धर्मके लिये ही यह मिला है' ऐसा जानकर धर्ममे अतीव अग्रसर होवो।

विक्रमैकरसस्तावज्जनः सर्वोपि वल्गति।
न शृणोत्यदय यावत्कृतान्तहरिगर्जितम् ॥१०६॥

मरणकाल न आने तक प्राणियोकी वल्गना—बडा बलवान् भी पुरुष हो, जिसके पराक्रमका ही एक प्रधान रूप हो, वीर पुरुष ऐसा मनुष्य भी तव तक ही उद्धत होकर दौडता

है, कूदता है, स्वच्छन्द होकर जो कुछ चाहे वह दुनिया पर ढाता है—कब तक ? जब तक कि कालरूपी सिंहकी गर्जनको यह नही सुनता है अर्थात् जब तक कल्पनामे यह बात नही आती कि मेरी मौत आयेगी, तब तक यह पराक्रमी बलवान् पुरुष उद्धत होकर दौडता और कूदता है। जैसे सिंहकी गर्जनाका शब्द हिरन सुन ले तो हिरनकी सिट्टी भूल जाती और मूर्खसा होकर व्याकुल हो जाता है। ऐसे ही ये देहके बलवान, वैभवके समृद्धिशाली अन्य प्रकारसे ऐश्वर्यके अधिकारी ये पुरुष भी तब तक ही गडबड करते हैं जब तक कि कालका शब्द सुननेमे न आये। लो यह मेरी मौत आ गयी, ऐसा चित्तमे आता है तो सारे होशहवास उड जाते है।

मृत्युका प्राणीपर प्रभाव—भैया ! अपने आपकी ही बात देख लो जब उपद्रव शिर पर आ जाता है, लडाई हो रही है, गोले बम जहा चाहे गिर पडते हैं, ऐसी स्थिति आसपास सुननेको मिल जाय तो ऐसी स्थिति में इसके होशहवास कैसे ढीले ढाले पड जाते है और जब सुखके दिन हैं, उपद्रव कुछ नही है और एक परिग्रह सचय या अन्य अन्य धुनमे मौज मानी जा रही है उस समय वैभव हो तो वैभवका घमड, देहमे बल हो तो बलका घमड, जिसके आगे किसी दूसरेका कुछ भी ख्याल न किया जा सके, ऐसी उद्धता इस जीवमे आ जाती है और जहा यह बात गुजरती है कठिन रोग हो जाय तो अथवा भयकर उपद्रव हो तो किसी प्रकार चित्तमे यह बात आती है कि लो अब तो मौत आने वाली है तो लो यह मौत ही आ गयी, ऐसा ख्याल होते ही यह सब अपने होश खो देता है।

संसारी प्राणियोके मरणभयकी मुख्यता—अशरण भावनाके इस प्रकरणमे मुख्यता यह बताया जा रहा है कि जब इस जीवका तद्भवमरण होता है तो इसका कोई शरण नही, यद्यपि हमारी प्रत्येक घटनामे भी कोई शरण नही है, चिन्ता करे तो अकेले चिन्ता करके रह जायें। कोई दूसरा भी पुरुष इस चिन्तासे बचाकर हमे हल्का भी कर सकता है क्या ? कभी नही। हा यदि कोई मेरा बडा प्रेमी मित्र हो तो प्रेममे आकर वह अपनी एक चिन्ता खुदकी बढा लेगा पर दूसरेकी घटाकर वह चिन्ता न बढा पायेगा। प्रत्येक घटनामे मैं अशरण हूँ, किन्तु इस अशरण भावनामे मरण-मरणकी ही बात शुरूसे अब तक चली आ रही है। इस जीवको सबसे अधिक भय है मरणका। धन आता हो, कोई कुटुम्बीजन जाते हो ऐसी स्थिति आये तो धनका लुटना पसद करेगे और परिवारके बचानेका यत्न करेंगे और कही परिजानोकी जान जाती हो और खुदकी जान बच जाती हो तो प्राय करके यह अपनी जान बचानेका यत्न करेगा।

मरणभयका एक दृष्टान्त-- बदरियोंको अपने बच्चेसे बहुत बड़ा प्रेम होता है और सुनते है ऐसा कि बदरियाका बच्चा मर भी जाय तो मरे हुए बच्चेको वह छातीसे चिपकाये रहती है, इतना प्रेम होता है। किन्तु देखा होगा, कोई चीज खाने की पड़ी हो तो अपने उस बच्चे के हाथसे हटाकर खुद खाने लगेगी बदरिया और बड़े भयकी स्थितिके समयकी बात देखो तो कदाचित् पानी बहुत बढ जाये, नदीका किनारा हो तो अपने पैरो को ऐंठाकर ऊँची उठ जायेगी बदरिया। ज्यादा पानी आजाये तो दो पैरोंके बल खडी होकर अपने बच्चे की रक्षा करेगी और ज्यादा पानी आजाये तो यह भी कर सकती है कि बच्चे को नीचे पटक कर बच्चे पर खडी होकर अपनी जान बचाये।

ज्ञानका उपयोग ही एकमात्र शरण-- जगत्के प्राणी सुख चाहते हैं, पर क्या चाहने चाहनेसे सुख मिल जाता है? जिस योग्य उपादान हो, निमित्त हो, जब जैसी स्थितिमे जो बात होनेकी हो उस प्रकार होती है। यह जगत्का प्राणी मृत्युसे डरता है पर क्या डरने से मृत्यु टल जाती है? वह भी जब जिस प्रकार जिस ढग से होना है होता है। यह प्राणी व्यर्थ ही भय करके अपने आपको विह्वल बनाये रहता है। सम्यग्ज्ञानमे अद्भुत सामर्थ्य है। इस जीवको शान्ति उत्पन्न करने वाला यह एक ज्ञानप्रकाश है। जीवनका और धन है ही क्या? अभिन्न धन वास्तविक धन एक ज्ञान ही है। सच्चा ज्ञान जगे, भेदविज्ञानको प्रकट करता हुआ ज्ञान जगे तो अब वह ज्ञान भी इसका रक्षक बन सकता है, अन्य कोई जगत् मे शरण नही है।

अकृताभीष्टकल्याणमसिद्ध रब्धवाञ्छितम्।
प्रागेवागत्य निस्त्रिंशो हन्ति लोकं यमः क्षणे ॥११०॥

मरणकालमें अज्ञानियो की दृष्टि--जो प्राणी ऐसे है जिन्होने अपने अभीष्ट कल्याण का कार्य नही किया और न अपने आरम्भ किये हुए इष्ट कार्योंको पूर्ण कर पाया ऐसे लोगों को तो यह काल सबसे पहिले मार डालता है। इसमें यह बात दिखाई है कि प्रायः सब लोग ऐसा महसूस करते है कि लो अधूराका ही अधूरा सब पड़ा रह गया और यह चल बसा। अच्छा बताओ कौनसी स्थिति ऐसी है जिसको यह पूरा मान ले और फिर मरने के लिए तैयार हो जाये? हमारे काम तो सब पूरे हो चुके। अब मुझे कुछ डर नही, अब मर जाऊँ तो कोई परवाह नही। अरे काम तो किसी के पूर्ण होते ही नही।

कृतकृत्यताका अभ्युदय--ज्ञान जगा हो और ज्ञानबलसे यह अपना विश्वास ठीक बनाये रहे कि जगत्के इन पदार्थोमें मुझे करने को कुछ बाकी ही नही--ऐसा श्रद्धान नही बनाये रहे कि मेरे तो सब कार्य पूर्ण हो गये, कुछ करने को मन में ही नाही। मैं क्या कर

सकता हूँ किसी परपदार्थोंमे ? जो कुछ करता भी था किसी परपदार्थके विषय मे तो वहाँ भी उस परका कुछ नही करता था, केवल अपनी परिणति ही बनाता रहता था और अभी मैं क्या कर रहा हूँ किसीका कुछ ? भविष्य मे भी मैं किसी परपदार्थ का कुछ भी कर न सकूँगा। लो इस सम्यग्ज्ञान के प्रकाश मे हमने सारे कार्य पूर्ण कर लिये । कृतकृत्य किसे कहते है ? कृतकृत्यका शब्दार्थ है—कृत कृत्य येन स· कृतकृत्य:। जिसने करने योग्य सब काम कर लिये हो उसे कृतकृत्य कहते है । करने योग्य काम क्या है ? मुझे किसी पदार्थ मे कुछ करने को पडा ही नही है, इस प्रकार का ज्ञानप्रकाश जगना प्रथम तो यही एक करने योग्य काम है । जिसने यह कर लिया वह कृतकृत्य कहलाता है; वह कृतकृत्य हो जाता है।

अधूरो परिस्थितिकी पूर्तिका अभाव--लोग यह महसूस करते है कि हमारे सब कार्य अधूरे रह गये और देखो वह बीच मे चल बसा। कोई १०-१५ वर्ष का बालक हो तो उसके कार्य अधूरे हैं या नही ? हा-हा सारे काम अधूरे पडे है। अभी विवाह होना है, घर बसाना है, ये सब काम तो पडे हुए हैं। यदि यह बालक अभी गुजर गया तो उसका अर्थ यह है कि सारे अधूरे काम छोड़ कर यह चल बसा। लोगो की ऐसी दृष्टि रहती ना। लो चलो विवाह हो चुका अब तो अधूरे काम नही रहे । अरे विवाह हो चुका तो अभी बहुत काम पडे हुए हैं। सन्तान हो तब तो परिवार चलेगा। बच्चे हो गये, अब तो अधूरा नही रहा अरे इन छोटे-छोटे बच्चोको छोड़कर कहा जाये ? इससे अच्छा तो यह था कि पहिले ही हम मर जाते। अब तो और भी अधूरे बन गये । ज्यो-ज्यो उमर बढती है, त्यो-त्यो काम और अधूरे होते जाते हैं। अच्छा बतावो यह कब मरे कि पूरे काम हो चुकने पर मरा कहा जाय ? बूढा हो गया तो सारे काम पूरे हो गये ना। उस मरने वालेसे कोई पूछे—बाबा अब तो तुम्हारे काम पूरे हो चुके ना। अब मरण आये तो कोई परवाह तो नही है ? अरे अभी पोतोका सुख तो देखा ही नही है। फिर पोतोका विवाह हो, ये काम काजमें लग जायें, अभी ये सारे काम तो अधूरे पड़े है। तो कौनसी स्थिति ऐसी है जिसमे अधूरापन न रहे ? यह अधूरेपनकी बात कही जा रही है मोहियोकी दृष्टिसे ।

जीवकी सर्वदा परिपूर्णता—अपने ज्ञानप्रकाशकी दृष्टिसे देखो—यह जीव सदा पूरा है। कभी गुजर जाये, क्या हुआ, यह तो यही है। अपने आपकी दृष्टि हो, अपनी सभाल हो तो यह मिलेटरीके जवानकी तरह सदा मृत्युके सम्मुख जानेको तैयार बना रहता है ? लो उठो यहासे अच्छा साहब। कहाँ बैठें ? यहाँ बैठो। लो बैठ गया। उसका कहाँ बिगाड है ? जावो इस भवसे। अच्छा लो चले। कहाँ जाये ? इस ठौर पर। पहुँच गये। कहाँ बिगाड़ हुआ ? यहाँ भी अपने ज्ञानसे श्रद्धान आचरणसे अपने आपके आत्माको

प्रसन्न रख रहे थे और दूसरे भवमे जाकर वहाँ भी अपने रत्नत्रयकी उपासना से अपनेको प्रसन्न रख रहे हैं। मौत तो कुमौत उनकी है जिन्होंने धर्मकी आराधना नही की, धर्मका पालन नही किया।

उदारताका प्रताप—स्वामी कार्तिकेय अनुप्रेक्षामे बताया है कि धनकी तीन गतिया होती है, दान कर लो या भोग करलो या नष्ट हो जायेगा। तो उस प्रकरणमे कहते हैं कि जिस पुरुषने न दान किया, न भोग किया, उसके धनविनाशके समय अतीव सक्लेश परिणाम होता है और जिसने दान और भोग किया उसके सक्लेश नही होता। यह तो ठीक है, पर जिसने दान नही किया, किन्तु खूब खाया पिया, मौज किया, भोग उपभोग किया उसके भी वियोग समयमे उतना खेद न होगा जितना कि न दान किया, न भोग किया ऐसे कृपणको खेद होता है। स्पष्टरूपसे इस बातको समझाया है तो मरणके समय अज्ञानी जीवोको ही खेद होता है। ज्ञानी पुरुष तो किसी भी समय मरणको तैयार है, घबड़ाते नही है।

धर्माराधनकी शीघ्र कर्तव्यता—इस श्लोकमे यह भाव दर्शाया है कि करने योग्य काम, धर्मआराधनाका काम झट सभाल लो। अचानक कभो मृत्यु होगी उस समय यह क्लेश मानेगा कि हाय! जीवन मैंने यो ही खोया। मैं कुछ धर्म नही कर पाया। सच जानो मरण समयमे खेद होगा कि मैंने धर्म नही अपनाया। तब आगामी क्लेशसे बचना हो तो इस धर्मभावको, ज्ञानभावको अपनावो और सम्यग्ज्ञानी बनकर अपने अन्तरङ्गमे प्रसन्न रहो।

> भ्रूभङ्गारम्भभीत स्खलति जगदिद ब्रह्मलोकावसानम्।
> सद्यस्त्रुट्यन्ति शैलाश्चरणगुरुभराक्रान्त धात्रीवशेन।
> येषा तेपि प्रवीरा कतिपयदिवसैः कालराजेन सर्वे।
> नीता वार्ताविशेष तदपि हतधिया जीवितेऽप्युद्धताशा ॥१११॥

पुराण पुरुषोके चरित्रका कथा शेष—ऐसे-ऐसे वीर पुरुष जिनकी भौहके कटाक्षके होने मात्रसे ही यह ब्रह्मलोक पर्यन्त जगत भयभीत हो जाता है। ऐसे-ऐसे वीर पुरुष जिनके चरणोके भारके कारण पर्वत तत्काल खण्डित हो जाते है ऐसे वीर पुरुषोकी अब कहानी मात्र सुननेमे आती है। वे अब रहे कहां? रावण बहुत विद्यावोका धारी था। उसने एक बार कैलाश पर्वतको भी हिलानेकी कोशिश की थी। वहाँ तो एक साधुराजकी तपस्याके प्रतापसे वह नही ढाया जा सका, किन्तु ऐसे ऐसे कितने ही अन्य पर्वतोको ढाने की उसमे सामर्थ्य थी और उपद्रव भी किया होगा लेकिन आज केवल कहानी भर सुननें

को रह गयी है। कितने ही लोग तो अब भी राम रावणको उपन्यासके ढगसे देखते है। किसीका कहना है कि वे हुए ही नही हैं। कुछ लोग तो यो भी कहते हैं कि ऐसे उपन्यासोसे शिक्षाकी बात जल्दी समझमें आ जाती है, इसलिये ऐसी शिक्षा देनेके लिये ये उपन्यास बनाए हैं। मतलब यह है कि हमारे पुराण पुरुष इतने वीर उदार और सुभट हुए हैं कि उनके चरित्र बलका आज कल लोग अदाजा भी नही कर पाते। वे अब यहाँ नही हैं, उनकी कहानी मात्र शेष है। चला आया है आगममे वर्णन। हम कहते है यह अयोध्या नगरी है, यहाँ इतने टीले पडे हैं। ये सब प्राचीन महल थे, सोचते जाते हैं। होंगे भी, लेकिन आज ये कोई नही हैं। यो ही समझो कि यहाके लोग हम आप किसी वैभव, किसी अभिमान, किसी अहकारके कारण कितने ही जो वाचालपना करते है करलें किन्तु रहेगा कुछ नही। यह जीव इस ससारमे अशरण है, इसे कोई दूसरा शरण नही है। ऐसे-ऐसे महापुरुष भी जब कालके वशीभूत हो गए, फिर यह पर्यायबुद्धि जीव अपने जीवनकी बडी आशा रख रहा है। यही तो एक बड़ी भूल है।

परमार्थ शरणके परिचयसे अशरणभावनाकी सफलता—अशरण भावनामे यह तो भा रहे हैं कि मेरा कोई शरण नही है, पर ऐसा ख्याल करनेसे तो क्लेश कई गुना और बढता जायेगा। भावनासे फायदा क्या हुआ? मुझे कोई शरण नही, मेरा कोई रक्षक नही। ऐसा सोचनेसे तो भय बढेगा और खुदको कष्ट बहुत पहुँचेगा। फिर यह भावना धर्मरूप कैसे? समाधान यह है कि परपदार्थ कोई शरण नही है। ऐसा कहनेमे यह बात अन्तरमे छिपी हुई है कि मेरे लिये मेरा यह ध्रुव आत्मा शरण है। निजके शरणका परिचय जिसने किया है उस ज्ञानीके यह अशरण भावना धर्मरूप है, किन्तु जिसने अपने शरणका परिचय नही पाया है उस अज्ञानी जीवको तो मेरा कोई रक्षक नही, मेरा कोई शरण नही, ऐसी बातें सोचना उसका केवल रोना ही रोना रूप है।

निजस्वरूपके आदरमे शान्तिलाभ—हम अपने आपके शरणभूत इस निजस्वरूपका आदर करे। मेरा इस जगतमे मेरे सिवाय अन्य कुछ नही है। मेरा इस जगतमे रच मात्र भी कुछ नही है। दुःख और किस बातका लग रहा है इस जीवको? इस ही बातका तो क्लेश है कि हैं तो ये सब बाह्य पदार्थ और उन्हे अपने मन माफिक करना चाहते हैं। बाह्य पदार्थोंमे जैसी उनकी योग्यता है उसके अनुसार ही तो वे परिणमेंगे। दुःख मिटाना हो तो अपने आपके स्वरूपका आदर करो। मैं अपने उस ऐश्वर्यको देखू जो मेरा सहज है। इस ज्ञानानन्दस्वरूपको तकूं, इसमे ही रत रहूँ, इसमे ही सतुष्ट होऊं, ऐसी भावना बनाएँ, ऐसा अन्तरङ्गका झुकाव करें यह तो है सारभूत बात और बाह्यपदार्थोंके प्रति,

अन्य जीवोके प्रति अपनी आसक्ति और कल्पनाएं बढाना, यह है केवल कष्टकी बात।

रुद्राशागजदेवदैत्यखचरग्राहग्रहव्यन्तरा. !
दिक्पाला प्रतिशत्रवो हरिबला व्यालेन्द्रचक्रेश्वरः।
ये चान्ये मरुदर्यमादिबलिनः सभूय सर्वे स्वयम्।
नारब्ध यमकिङ्करैः क्षणमपि त्रातु क्षमा देहिनम् ॥११२॥

कालगृहीत प्राणीकी अरक्ष्यता—जिस प्राणी पर यह मृत्यु मंडरा जाती है, मरणकाल आता है, यह काल अपनी कलासे जिस प्राणीको पकड लेता है उसकी रक्षा करनेमे ये कोई भी समर्थ नही है। चाहे रुद्र भी हो कोई। रुद्र एक बहुत कुछ पहुंचे हुए अनेक विद्यावोके धनी होते हैं जिनको देवी देवता बहुतसे किकर होनेके लिये प्रार्थना कर चुके है और इस प्रलोभनमे थोडी चूक खाई है। इससे लोककार्योंमे प्रवेश किया है ऐसे कोई रुद्र महापुरुष, आखिर विद्यावोके धनी तो वे है ही, उनमे भी यह सामर्थ्य नही है कि किसी मरते हुये जीवकी रक्षा कर दे। बड़े दिग्गज देव और दैत्य जिनके दिव्य शरीर है, भूख प्यासकी वेदनाओसे रहित हैं, ऐसे बडे देवता भी इस मरणहार जीवको बचानेमे समर्थ नही है।

ससार संकट—यह ससार संयोग वियोगका पिण्ड है। इसमे वेदना और है ही क्या ? जिस किसी भी बाह्यपदार्थको इष्ट मान लिया, इन इन्द्रियविषयोके साधनमे सहायक होनेसे, किसीको अनिष्ट मान लिया इन इन्द्रियविषयोके साधनमे बाधक होनेसे तो फिर इष्टके सयोगको तरसता है, अनिष्टके वियोगको तरसता है, इष्टके वियोगसे भयभीत है। बस यह ही तो केवल दुःख है जीवोके। ये सारे दुख एक अपने स्वरूपकी सभालमे जरासे बाह्यपदार्थोंकी उपेक्षासे, ललकारसे ये सब सकट समाप्त हो जाते हैं। जैसे बडे बलवान भी चोर चोरी करनेको घरमे घुसे हो तो बुढिया यदि घरमे जरासा खास दे तो वे सारे चोर उल्टे पैर भाग जाते है, ऐसे ही ये सब सकट चोर विपदा उपसर्ग वेदनाएं सभी इस आत्मगृहमे घुस आये है, किन्तु यह आत्मा जरा भी ललकार करे, अपने स्वरूपको सभाले तो ये सब संकट भी यथाशीघ्र विदा हो जाते है।

स्वरूप संभाल—सुखी होनेकी कला हम आप सबमे पडी हुई है, परन्तु उस कालका उपयोग नही करते और दुखी हो रहे हैं। वह कला क्या है ? अपने स्वरूपका यथार्थ दर्शन कर ले, इतनी भर कला है। समस्त परपदार्थोंसे निराले देहसे भी विलक्षण केवल ज्ञानानन्द स्वरूपमात्र मैं हू, यह मैं अमूर्त हूँ। ऐसे इस अमूर्त जीवास्तिकायकी पहिचान हो तो वहाँ सकटोका क्या काम है ? गोले भी बरस रहे हो, बम भी पड़ रहे हो और बन

जाय कदाचित् ऐसी सभाल किसी ज्ञानी जीवके कि मै तो अमूर्त आत्मतत्त्व हूँ। यद्यपि ऐसी स्थितिमें हम आपके दिमागके अनुसार कठिनसी बात लग रही है कि वहां हम अपना स्वरूप संभाले बैठ सकेंगे क्या ? लेकिन स्वरूप सभाल सकने वाले भी ज्ञानी पुरुष मिलते ही है, होते ही है। उस समय इस अमूर्त ज्ञानानन्द स्वरूपमात्र अपने आपकी सभाल करे तो वहाँ कौनसा कष्ट है ? जहां इस संभालसे चिगे और केवल अपने प्राणोकी ही बात नही, बाह्यमे भी परिजन वैभवका वियोग हुआ कि यह जीव भयभीत हो जाता है, हाय ! क्या हुआ ? कितने भी सकट हो, समस्त सकटोको समाप्त करनेका अमोघ साधन अपने शुद्धस्वरूपकी संभाल है।

कालगृहीत प्राणीकी रक्षामें विद्यासमृद्धिवन्तोंकी भी अक्षमता—जब यह जीव कालके गालसे गृहीत हो जाता है तो इसे बडा विद्याधर भी रक्षा करनेमे समर्थ नही है। जो आकाशमे विमानो पर चले, स्मरणमात्रसे देव आकर एक सशस्त्र विरोधीसे युद्ध कर दे, अनेक विद्याएं भी जिन्हे सिद्ध हैं, ऐसे विद्याधर भी इस मरते हुए जीवकी रक्षा करनेमे समर्थ नही हैं। देवता गृहव्यतर दिग्पाल आदि ये सब मिलकर भी इस जीवको बचाने मे समर्थ नही हैं। कभी तो ऐसा भी हो जाता कि कोई मित्र बचानेकी कोशिश करता है और उस मित्रकी उस कोशिशके निमित्तसे ही मरण हो जाता है। हितैषी परिजन रोगी को अच्छीसे अच्छी औषधि खिलानेका यत्न करते हैं, कभी उसकी ही इस चेष्टासे उसके ही द्वारा दी हुई औषधिसे उसकी मृत्यु हो जाती है। कौन रक्षक है इस जीवका ? महापुरुषोमे नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र ये भी इस मरणहार जीवको बचा नही सकते।

नारायण, प्रतिनारायण व बलभद्रकी भी कालग्रस्त प्राणीकी रक्षामे अक्षमता— नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र ये तीन पदविया है, नाम नही हैं। नारायणपद, प्रतिनारायणपद और बलभद्र। नारायण और बलभद्र भिन्न-भिन्न होते है, किन्तु प्रतिनारायण और नारायणसे पहिले नारायण जैसा ही वैभव भोगते हुए और नारायणके अभ्युदयके समय ये प्रतिनारायण प्रतिपक्षी बनकर नारायणके द्वारा घाता जाता हो वह प्रतिनारायण है। जैसे कृष्णजी के समय श्रीकृष्ण नारायण बलदेव बलभद्र और जरासिंध प्रतिनारायण थे। श्रीरामके समय लक्ष्मण नारायण श्रीराम बलभद्र और रावण प्रतिनारायण था ? इन जीवोके उनके समयमे कितना बड़ा वैभव ऐश्वर्य था, कितना प्रताप था। वह सब प्रताप केवल एक उनके पुण्यके अनुकूल फैल सका था, किन्तु यह बल किसी मे न था कि किसी मरणहार पुरुषको बचा सकें। यह सब इसलिये कह रहे है कि तुम

अपनी कल्पनाएं जिस किसीको शरण मानकर उसको अपना आत्मसमर्पण मत करो अर्थात् यह प्रत्यय मत करो कि मेरे ये शरण है। अपने आपके शाश्वत स्वरूपकी खबर मत तजे।

कालग्रस्त प्राणीकी रक्षामे देवोंकी भी अक्षमता—धरणेन्द्र व्यतरोमे बहुत प्रसिद्ध और प्रभुभक्त देव होते हैं। प्रभु पार्श्वनाथके उपसर्गके समय धरणेन्द्र और धरणेन्द्रकी देवी पद्मावतीने अपनी आराधनाका विषय बनाया था, प्रभुका उपसर्ग टाला था। ऐसे विशिष्ट धरणेन्द्र जैसे देव भी इस मरणहार जीवको बचानेमे समर्थ नही होते, तब हम आप लोगो की कहानी क्या है? कोशिश सभी करते है। घरके जो इष्ट पुरुष होते है वे उस मरने वालेको बचानेका बडा यत्न करते हैं, पर वे कोई भी उसे बचा नही पाते हैं। आखो देखते ही वह इस ससारसे विदा हो जाता है। लो अब इसके प्राण पेट तक है, पैर तो ठंडे हो ही चुके है, लो अब गले तक प्राण चले आए, लो अब प्राण एकदम निकल गए। सारा दृश्य आखो देखते रह जाते हैं पर कोई किसीको मरनेसे बचा सकता है क्या? ये देव, पवन, सूर्य आदिक बड़े बलिष्ठ देहधारी सबके सब एकत्रित हो जाये तो भी इस प्राणीको कालसे बचा नही सकते। यह है इस ससारकी स्थिति।

स्वयंका शरण लेनेकी सम्मति—भैया! अपने आपके स्वरूपमे अपनेको निरखो तो किसीसे भीख मांगनेकी, मरणसे रक्षा पानेकी, कुछ सोचनेकी आवश्यकता ही नही है क्योकि यह है व सदा रहेगा। केवल इस सत् स्वरूप निजतत्त्वसे रुचि हो तो कही कष्ट नही है। लेकिन अनात्मकतत्त्वमे इसे प्रीति जगी है तो अपराधका फल तो भोगना ही पड़ेगा। अपने आपके स्वरूपकी दृष्टि न रहे वह सब अपराध है। उस अपराधके फलमे अनेक वेदनायें सहनी होती है। हे भाई! इस मृत्युसे रक्षा करने वाला न तो कोई हुआ और न कभी होगा। तू अब बाह्यमे शरणको न ढूंढकर अपने आपके स्वरूपकी सभाल कर। यही पुरुषार्थ एक वास्तविक शरण है।

आरब्धा मृगबालिकेव विपिने सहारदन्तिद्विषा,
पुसा जीवकला निरेति पवनव्याजेन भीता सती।
त्रातु न क्षमसे यदि क्रमपदप्राप्ता वराकीमिमा,
न त्वं निर्घृण लज्जसेऽत्र जनने भोगेषु रन्तु सदा ॥११३॥

श्वासके ब्याजसे जीवनकला का निर्गमन—हे पर्यायमुग्ध प्राणी! देख, जिस प्रकार वन मे मृगके बच्चेको सिंह पकडनेका आरम्भ करता है और वह मृग बालक भयभीत होकर भागता है ऐसे ही समझ कि इस जीवके जीवनकी कला कालरूपी सिंहसे भयभीत होकर श्वासोच्छ्वासके बहानेसे दूर भाग रही है। जैसे मृगबालिका पर सिंहका आक्रमण होता है,

मृत्युका आक्रमण होता है। तो यह जीवनकला श्वासके रूपसे दौड़-दौड़कर बाहर निकल रही है और फिर कितना ही भागे वह मृगबालिका, आखिर वह सिंहके पैरो तले आ जाती है। इसी प्रकार जीवोके जीवनकी कला कालमे क्रमसे अन्तको प्राप्त हो जाती है, तो समझ तू अपनी ही रक्षा करनेमे समर्थ नही है, दूसरोकी तो क्या रक्षा करेगा? परकी ओर दृष्टि देकर कातरताका भाव मत लावो।

खेद व आनन्द पानेकी स्वकला—अरे यह जीवन तो एक मायारूप है, मेरा स्वभाव नही है। मेरे शुद्ध आनन्दके महत्वको नष्ट करने वाला यह एक कलक है जीवन। इसका जो शाश्वत जीवन है शुद्ध ज्ञानज्योतिरूप अनुभव करना है, उस पर किसका आक्रमण है? जो चीज नष्ट हो जाती है उसको हम अपना मानें सो उसमे खेद है। नष्ट हो जाने वाली चीजको हम अपनी ही न समझें तो फिर खेद किस बातका? देखिये जिस पुरुषको किसी कल्पनासे खेद आ गया है वह तो अब सारी दुनियाको खेदमयी ही निरखता है। खुद खेद खिन्न है तो उसके उपयोगमे खिन्नता ही है सर्वत्र और जिसके चित्तमे सम्वेग है, वैराग्य है, यथार्थ ज्ञान है और उस सम्यग्ज्ञानके प्रतापसे एक शुद्ध सतोष हो रहा है तो सर्वत्र प्रसन्नता ही नजर आती है। देख तू बाहरमे किसीकी रक्षा करनेका विकल्प करे या किसीसे मेरी रक्षा हो, ऐसा विकल्प करे तो तू अपने आप पर निर्दयी बन रहा है क्योकि इस विकल्पजालसे अपने आपकी शान्तिको भग कर रहा है।

मूढ़ विपन्नकी उपहास्य करतूत—तू इस जगत्मे इन इन्द्रिय विषयोमे रमनेका उद्यमी होकर प्रवृत्ति कर रहा है। मृत्यु तो तेरे केशोको पकड़े हुए है और तू विषयोमे लग रहा है। जैसे किसी पुरुषको फासीका हुकुम दिया गया हो और वह फांसीसे पहिले खूब खाने पीनेमे लीन हो रहा है। तो लोग उसकी मूर्खता पर मन ही मन हसते हैं। अभी तो प्राण जायेंगे और यह लड्डू, पूडी, कचौडी, हलुवा खानेमे मस्त हो रहा है। ऐसे ही जगत्के प्राणी मृत्युके द्वारा ग्रहीत है। पता नही कब यह यम अचानक आ पड़ेगा, लेकिन यह प्राणी बेसुध होकर पञ्चेन्द्रियके विषयोके रमण कर रहा है। यह तो अपने आप पर निर्दयताका काम है। ऐसी अशोभनीय विरुद्ध बात करते हुये हे आत्मन्! तुम्हे लज्जा नही आती और भी बात देखो—तू यह देख रहा है कि यह प्राणी कालके वश है, मरने वाला है और फिर भी तू उसमें रम रहा है तो यह कैसी लज्जाकी बात है। अरे तू शुद्ध भावना कर और दूसरोंको भी शुद्ध भावनाका अवकाश दे और इस संसारकी इन विषय आपदावोसे बच। अपने आपको अकेला शुद्ध ज्ञानानन्दमात्र निरख। यह देह भी तो मेरा नही है। मैं तो केवल ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मतत्त्व हूँ। इस शरणभूत निज परमात्तत्त्वकी

भावना करो और बाह्यपदार्थोंसे अपनेको अशरण मानो ।

पाताले ब्रह्मलोके सुरपतिभवने सागरान्ते वनान्ते ।
दिक्चक्रे शैलशृंगे दहनवनहिमध्वान्तवज्रासिदुर्गे ।
भूगर्भे सन्निविष्ट समदकरिघटा सङ्कटे वा वलीयान् ।
कालोऽय क्रूरकर्मा कवलयति बलाज्जीवित देहभाजाम् ।।११४।।

पाताल और ब्रह्मलोकसे भी जीवनकी अरक्षितता—यह काल ऐसा बली है कि यह किसी भी ससारी जीवको बलात्कारपूर्वक ग्रस लेता है, यह जीव चाहे पातालमे बैठा हो जो कि हम आप सबके लिये दुर्गम्य है, कहासे पाताल जाये, इतनी मोटी पृथ्वी है जिसके तलभागमें पाताल लोक बस रहा है वहा जीवोका गमन बहुत कठिन है । ऐसी जगह भी कोई जीव बैठा हो, वहाँका उत्पन्न हुआ जीव भी इस कालके वशीभूत होकर अपना जीवन खो देता है । यह चाहे ब्रह्मलोकमे बैठा हो, उत्पन्न हो, अवस्थित हो वहा भी यह जीव सुरक्षित नही रहता । ब्रह्मलोकसे मतलब ऊर्ध्वलोकके मध्य भागमे ब्रह्मलोक माना गया है, ऊर्ध्वलोकके बीचमे भागे, वहा भी कोई जीव अवस्थित हो उसका भी जीवन सुरक्षित नही है । जब आयुका अन्त होता है तो वहां भी इस जीवको उस देहसे जाना पड़ता है । कहा यह जीव जाये कि यह मृत्युसे बच सके ? कोई ऐसा स्थान नही है ।

इन्द्रभवनमे भी जीवनकी अरक्षितता—यह जीव इन्द्रके भवनमे भी बैठा हो, ऊर्ध्व-लोकमे कल्पवासियोके २४ इन्द्र प्रतीन्द्र होते है और ऊपर तो सभी ही इन्द्र हुआ करते है । उन इन्द्रोके भवनमे भी कोई अवस्थित हो, वह भी सदाकाल जीवित नही रह सकता । स्वय इन्द्र भी सदाकाल नही रह सकता । भले ही बहुत लम्बी आयु है और उस लम्बी आयुके कारण उन्हे अमर कहा करते है किन्तु अन्त उनका भी है । यह जीव बहुत दूर समुद्रके तट पर भी चला जाय, जैसे कहते है ना चारो ओरके धाम बहुत दूर समुद्रके तट भी पहुच जाय इस कालसे बचनेके लिये कि यह काल वहां न आ सकेगा, बहुत दूर चला जाय, लेकिन वहा भी जीवन सुरक्षित नही है । आयुका अन्त होने पर वहा भी मरण करना पडता है । कही दुर्गम बनके पार भी पहुच जाय शायद इस गहन बनकी उलझनके कारण काल वहा न पहुच सकेगा, यो मानो बनके पार भी कोई जीव पहुच जाय वहा भी इस जीवका जीवन सुरक्षित नही है । वहां भी मरना ही पड़ता है ।

मरणकी दहल—मरणका भय इन ससारी जीवोको लगा हुआ ही है । कितनी भी उमर हो जाये पर मरणकी सम्भावना समझमे आये तो उस वृद्धका भी दिल दहल जाता है । हाय ! अब मुझे यहासे मरना पड़ रहा है । बहुतसे वृद्ध पुरुष अथवा वुढिया अपने

शारीरिक दुःखके कारण ऐसी प्रार्थना किया करते है कि हे भगवन्! मुझे उठा लो। अर्थात् मेरा मरण हो जाय, ऐसे अहर्निश प्रार्थना करने वाले बूढे और बुढिया मरणका अवसर सामने आने पर दहल जाते है। मान लो कोई साप निकल आया निकट तो क्या वे घबडाते नही हैं? क्या घरके बच्चोको पुकारते नही है? ऐ बच्चो—देखो सांप यहा निकला है, जल्दी आकर मुझे बचावो। यदि बच्चे यह कह दे कि अरी बुढिया दादी तू तो भगवानसे प्रार्थना किया करती थी कि मुझे उठा लो, तो तुम्हारी प्रार्थनाको ही सुनकर भगवान्ने इसे तुम्हे उठानेके लिये भेजा है, तू क्यो इतना डरती है? यदि कोई मजाकिया यो कहदे तो उसका उत्तर क्या? सब मरणसे भय किया करते हैं।

मरणसे बचनेके उपायोकी व्यर्थता—इस मरणसे बचनेके लिये लोग सारे उपाय बनाया करते हैं, अच्छा मजबूत मकान बनवाते, अपने सब तरहके भोजन पान आदिक आरामके अन्य साधन बना लेते, सब कुछ करते है लेकिन कोई यहाँ सदा जीवित रह सका क्या? बडे-बडे महापुरुष भी नही रहे तो अपनी बात सोचो। यदि यह दृश्य सामने नाचने लगे कि मेरा मरण तो किसी भी क्षण हो सकता है, तो इसे फिर आकुलता न रहेगी। लोग तो मरणकी सम्भावनामे आकुलता मचाते हैं, लेकिन विवेकी पुरुष मरणकी सम्भावनाको सामने रखकर निराकुल रहनेका यत्न करते है। लोग बडी चिन्ताएँ कर रहे हैं अगले वर्षकी घटनावोके लिये। यदि यह अभी ही गुजर गया तो फिर कहाँ इसका सम्बन्ध रहा इस लोकके वैभवसे? यह जीव इस मरणसे बचनेके लिये बहुत-बहुत उपाय करता है, लेकिन सब उपाय इसके निष्फल चले जाते है।

दिगन्त और भीड़मे भी जीवनकी असुरक्षितता—यह जीव मरणसे बचनेके लिये दिशावोके अन्तमे भी पहुच जाय जिन्हे पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर कहते है, बहुत अधिक दूर पहुच जाय तो वहाँ भी इसका जीवन सदा नही रहता। मरना पडता है। यह तो बहुत छोटी दूरकी बात कह रहे हैं। इस लोकके बिल्कुल अन्तमे जहाँ सिद्ध जीव बसा करते है वहाँ जो निगोद जीव भरे हुए है वे अपनी ही मौतसे एक श्वासमे १८ बार जन्म और मरण किया करते है। कहाँ जावोगे? इस कालका तो सर्वत्र प्रसार है। यह जीव बहुत ऊंचे पर्वतके शिखर पर भी चढकर वहाँ ठहर जाय, लो अब तो मैं बहुतसी भीडसे हटकर ऊपर आ गया हूँ, यह काल तो भीडमे तलाश करता फिरेगा कि इसका अन्त कर दें। मैं तो बहुत ही निराले विलक्षण ऊँचे पर्वत पर पहुच गया हूँ। अब यह मैं सुरक्षित रह जाऊंगा, पर कहाँ सुरक्षित रह सकता है? यह जीव कही भी चला जाय सुरक्षित नही रहता।

अग्नि और जलमे भी जीवनकी असुरक्षितता—ऐसे भी जीव है जो अग्निमे जीवित रहते हैं। अग्नि खुद जीव है, इससे बढकर और सुरक्षित स्थान क्या होगा ? काल आयेगा तो वह ही पहिले अग्निमे भस्म हो जायेगा। अग्निके मध्य भी कोई जीव हो तो भी काल द्वारा ग्रस जायेगा। कोई गहरे जलमे छिप जाय, जलमे बहुतसी सुरक्षा रहती है। जब कोई मधु मक्खी इस मनुष्यको सताने लगती है उस समय इस मनुष्यके पास अन्य कुछ उपाय नही है। कहा जायेगा ? पेड़ पर चढ जायेगा तो मधुमक्खी वहा भी सतायेगी, किसी जगह गुफामे चला जाय तो ये मधुमक्खी वहा तक भी पहुंचेगी। एक जलका स्थान ऐसा है कि जलमे डुबकी लगाले तो मधुमक्खी जलके भीतर प्रवेश नही कर सकती। तो वहा देखो यह पुरुष सुरक्षित रह गया ना ? यो कोई जलके अन्दर भी ठहर जाय तो भी सुरक्षित नही है। उसका भी मरण हुआ करता है।

हिमालयादि दुर्गम स्थानोमे भी जीवनकी अरक्षितता—कोई जीव एकदम हिमालयमे पहुंच जाय। हिमालय इस व्यवहारकी दुनियासे एक निराला स्थान है। वह देशके एक कोने पर है, वहाँ भी पहुंच जाय कोई अथवा वहाँका उत्पन्न हुआ हो कोई तो वह जीव वहा भी सुरक्षित नही है। वह भी कालके वशीभूत होता है, जन्म-मरण करता है। जीवनमे सार क्या है ? जी रहे है कितने दिनोको और जीकर भी सारभूत बात क्या लूट ली है ? इस जीवनमे भी क्लेश ही क्लेश है और जब जीवनका अन्त होता है तब भी क्लेश है। यहाँ शरण कुछ नही है। किसी भी बाह्यस्थानको शरण मानकर यह जीव ऐसे-ऐसे दुर्गमस्थान पर भी पहुच जाये तो भी आयुकर्म तो सब जीवोका उनके साथ ही है। वह जहाँ है तहाँ ही आयुगमन है, अन्त होगा और उन्हे वहाँ मरण करना पड़ेगा।

अन्धकारमे भी जीवनकी अरक्षितता—यह जीव गहन अंधकारमे पहुच जाय, लो अब अधेरेमे यह काल कहाँ ढूढ लेगा ? जब कृष्णपक्षकी अमावस्या जैसी गहन रात होती है, उसमे अपने ही हाथ पैर अपनेको नही सूझते, और कभी-कभी तो अपने अगो को छूनेमे भी, परखनेमें भी देर लग जाती है। ऐसे गहन अधकारमे हम पहुच जायेगे तो वहाँ सुरक्षित रह जायेगे। किसीकी नजर भी नही जा सकती। भाई ऐसे गहन अधकारमे भी पहुंच जाय तो भी जीवन सुरक्षित नही है। जो जीवित हुआ है वह मरण भी नियमसे पायेगा।

वज्रमयी स्थानोंमें भी जीवनकी अरक्षितता—भैया ! खोजिए कोई संसारमे बहुत मजबूत स्थान जहाँ कालका कुछ भी प्रवेश न हो, ढूंढो कोई स्थान। अच्छा लो—चलो

किसी वज्रमयी स्थानमें चलें, जिस वज्रको कोई भेद न सके ऐसे वज्रमयी स्थानमे यह जीव पहुच जाय तो वहाँ भी यह सुरक्षित नही है। कारण यह है कि कोई मारने वाला अलगसे नही है जिसकी आखोसे वचकर हम अपने जीवनको सुरक्षित बना लें। इस जीव के साथ अष्टकर्म लगे हुए हैं, उनमे एक आयुकर्म है। उस आयुकर्मके क्षय होने पर जो कि होता ही है, निषेक उदयमे आ रहे है तो कभी तो समाप्त होगे ही। वस उस आयु-कर्मके गलनेका नाम ही मरण है और इस मरण होनेके बाद भी छुटकारा मिल जाय तो वह भी भला था। लेकिन मरणके बाद इस जीवको जन्म लेना पडता है, यही कष्टकी बात है अथवा जन्म लेनेका नाम ही मरण है। यो इस जीवके साथ ही आयुकर्म लगा है और वह सर्वत्र है। जहाँ जीव जाय वह ही है। सो उस आयुकर्मके अन्तमे इसको मरना ही पडता है।

पहरे व गढ़कोटोमे भी जीवनकी अरक्षितता—अब और कोई सुरक्षित स्थान देख लो तलवारमयी पहरेदारोके पहरा दिये हुए कमरेमे कोई चला जाय तो शायद वहाँ जीवन पूर्ण रक्षित रहेगा, क्योकि चारो ओर नगी तलवार लिये पहरेदार लगे हुए हैं? अरे वहाँ भी इस जीवकी रक्षा नही हो सकती। जब आयुका अन्त होता है तो उसे भी मरना पडता है अन्यथा पूर्वकालमे कितने बलिष्ठ राजा हो गए, कोई बचा भी है आज क्या? कोई नही बचा। कहा जाय यह जीव कि मरणसे बच जाय? शायद बडे मजबूत गढकोट जैसी भूमि पर यह जीव पहुंच जाय तो वहा इसकी रक्षा हो सकेगी? खूब गढ बना है, उस मजबूत गढके मध्यमे बैठा है और वह भी एक बाहरी गढ, उसके भीतर मझोला गढ और उसके भीतर खास अन्तरगगढ उसमे बैठा हुआ कोई जीव यह सोचता हो कि मेरा यहाँ कैसे मरण होगा? हमने तो इतना डबल तिबल प्रबन्ध कर डाला है, लेकिन इस प्रबन्धसे होता क्या है? जब आयुका अन्त समय होता है तो इस जीवको संसारसे विदा होना ही पडता है। कहाँ जाय यह जीव? बडे मदोन्मत्त हस्तियोके समूहमे रहे, उन हस्तियोका प्यारा बनकर भी रहे तो वहाँ भी इसका जीवन सुरक्षित नही है।

स्वदृष्टिकी ही शरण्यता—किसी भी जगह यह काल, यह आयुक्षय बलपूर्वक जीवके जीवनको ग्रसीभूत कर लेता है। इस कालके आगे किसीका वश नही चलता। इस अशरण भावनामे इस प्रकरणको सुनकर हमे यह निश्चय करना चाहिये कि बाहरमे मुझको कुछ भी शरण नही है। केवल यह मैं ही अपनेको ठीक सही रूपमे दिख जाऊं तो यही शरण है।

अस्मिन्नन्तकभोगिवक्त्रविवरे संहारदंष्ट्राङ्किते।
ससुप्त भुवनत्रयं स्मरगरव्यापारमुग्धीकृतम् ॥
प्रत्येक गिलतोऽस्य निर्दयधियः केनाप्युपायेन वै।
नास्माग्नि.सरण तवार्य कथमप्यत्यक्षबोध बिना ॥११५॥

जीवोंकी वर्तमान विपन्नता—हे आर्य सत्पुरुष ! देख—ये तीनो लोकोके प्राणी काल-रूपी विषकी गहलतासे मूछित होकर गाढ़ मोह निद्रामे शयन कर रहे है, और शयन भी कैसा कर रहे है ? सहारस्वरूप सर्पको दाढोसे अङ्कित कालरूपी सर्पके मुखरूप बिलमे गाढ निद्रामे सो रहे हैं। देख ये दोनो ही बाते भयावह है। एक तो इच्छारूपी विषसे मूछित पड़े हुए है और दूसरे पड़े कहा है इस कालकी दाढमे तो इस जीवका क्या शरण होगा ? जैसे कोई हिरणका बच्चा जगलमे रहता है। किसी दिन उसके पीछे सौ शिकारी हाथमे धनुषबाण लिये हुए उसका पीछा कर रहे है, उसके मारनेका उद्यम कर रहे हैं और उस हिरनके आगे है कोई विशाल नदी अथवा समुद्र और अगल बगल है ऐसे पर्वत जो कि अग्निकी ज्वालासे जाज्वल्यमान् है। अब वह हिरणका बच्चा आगे जाता है तो पानीमे डूब जायेगा, अगल-बगल जाता है तो अग्निमे भस्म हो जायेगा, पीछेसे बहुतसे शिकारी उसको मारनेके लिये पीछा किये हुये है। अब बेचारा हिरणका बच्चा क्या करे ? वह तो विलाप ही करता है। कहा जाऊं ? क्या करूं ? ऐसे ही ये ससारके प्राणी कहा जाये, जीवनका अन्त होता है। जीवन के विचित्र समागम होते है।

रक्षाका एक मात्र उपाय—यह जीव स्वय स्वयके आत्मस्वरूपमे न ठहर कर कही भी बाह्यमे दृष्टि बनाये सर्वत्र अरक्षित है। ये कामकी प्रगाढ़ निद्रामे सो रहे हैं। उन सबको प्रत्येकको यह काल निगलता जाता है। इस सकटसे बचनेका अन्य कोई उपाय नही है, केवल एक ही यह उपाय है कि प्रत्यक्ष ज्ञानकी प्राप्ति करे। अमर, शाश्वत ज्ञानानन्द-घन निज चैतन्यस्वभावकी दृष्टि करे तो इस उपायसे कालके पञ्जेसे निकलनेकी बात बन सके, अन्य कोई उपाय नही है। एक अपने ज्ञानस्वरूपका शरण लेनेसे ही इस कालसे रक्षा हो सकती है।

व्यवहारकी पकड़में रक्षा का अलाभ—देखिये जगत्के अन्य जितने भी द्रव्य है निश्चय से तो वे अपनी अपनी शक्तिके भोगने वाले हैं, अर्थात् कोई जीव किसी दूसरेका न कर्ता है, न हर्ता है। जो जैसा है तैसा ही है, किन्तु व्यवहारदृष्टिसे निमित्त-नैमित्तिक भाव परखे जाया करते हैं। उन निमित्त-नैमित्तिक भावोको देखकर यह जीव किसी भी परपदार्थ के प्रति यह शरण है ऐसी कल्पनाएं कर लेता है और दिखता क्या है इसे ? केवल यह कर्म

नोकर्म पिंड शरीर जो नि.सार है। जैसा आज यह उठा है, बढा है उसका भी तो कोई विश्वास नही है। तो व्यवहारदृष्टि चूंकि इन विषयसाधनोंके साथ इसका निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है सो यह अन्य किसी भी पदार्थमे अपनी शरणकी कल्पना कर लेता है। छोटा भी वालक हो, वह भी अपने शरणके पिछानका यत्न करता है।

अपना वास्तविक शरण—निश्चय दृष्टिसे देखा जाय तो अपने आत्माका यह आत्माही शरण है और व्यवहारदृष्टिसे विचार कीजिये तो परम्परा सुखके कारणभूत वीतराग भावको प्राप्त हुये ये पचपरमेष्ठी ही शरण हैं। जव निश्चयदृष्टि समालते हैं तो खुदको खुदही शरण मिलता है। तो स्वय यह सशरण है लेकिन स्वयकी सुध न होने से यह अन्य अन्य जगह जाता है। हे आत्मन्! देख तेरा वीतराग भाव ही वास्तविक शरण है। तो वीत-राग पुरुष हैं उनके गुणोका स्मरण शरण है। यदि वीतरागताकी रुचि जगी है तो यह आत्मा ही एक अपनेको शरण है। व्यवहारसे निरखें तो जो वीतराग हुए हैं वे शरण हैं, अपने, अर्थात् पचपरमेष्ठियोकी भक्ति वदना करनेसे, उनके गुणस्मरण करने से अपने आपके स्वरूपकी सुध होती है और स्वरूप के वोधकी दृढता होती है। यो व्यवहारसे तो हम आपको पच परमगुरु शरण है और निश्चय दृष्टिसे अपना यह शुद्ध आत्मा ही शरण है, अन्य कुछ शरण मत मानो अन्यथा धोखा ही धोखा खाना होगा। अपनी एक सीमित आजीविकाका ढग बनाकर करने योग्य काम तो अपने आपमें जो शरणभूत ब्रह्मस्वरूप है उसकी आराधना करना है, सो व्यवहारमे पच परमगुरुको आराधना करके और निश्चयमे सर्वसकटोसे रहित ज्ञानमात्र निज तत्त्वकी आराधना करके वास्तविक शरणको गहे, काल्पनिक शरणके पीछे न पडे।

चतुर्गतिमहावर्ते दुःखवाऽग्निदीपिते।
भ्रमन्ति भविनोऽजस्रं वराका जन्मसागरे ॥११६॥

प्राणियोंका जगत्मे भ्रमण—इस ससाररूपी समुद्रमे जगत्के ये प्राणी दीन और अनाथसे बनकर निरन्तर भ्रमण कर रहे हैं। यह ससार समुद्र अति विषम है। चारगति-रूपा महान् इसमे भवर पडी हुई हैं और दुःखरूपी बडवानल से यह प्रज्ज्वलित है। एक यह आश्चर्य देखो कि पानी मे पानीके ही कारण आग पैदा हो जाती है, जिसे बड़वानल कहते हैं। ऐसे ही यह आश्चर्य देखो कि आनन्द शान्तिके पुज इस आत्मामें विकल्पोंकी विपदाए पैदा हो जाती हैं। इस ससारसमुद्रमे ये प्राणी दीन होकर भ्रमण कर रहे हैं। यह दीनता पञ्चेन्द्रियके विषयोके साधनकी है। इन्द्रियके विषयोके जो वश न हो वह काहेका दीन? किसके आगे दीन बनेगा? तो ये प्राणी इस ससारसमुद्रमे यो अपने नाथकी सुध भूलकर

अनाथ होते हुये यत्र तत्र भटक रहे है। आज मनुष्य है, इससे पहिले और कुछ थे, फिर और कुछ थे। भिन्न भिन्न भवोमें भिन्न भिन्न समागमोसे प्यार किया। आखिर उन्हें भी छोड़ा और उस ही धुनकी प्रगतिमे आज ये कुछ समागम मिले है सो यावत्काल ये समागम है तब तक इन्हे अपना सर्वस्व समझते है। यही सब कुछ है। भेदज्ञानकी भावना तक भी नही जगती। ये कभी मिट जायेगे, ऐसा ख्याल भी नही आता। मिटते होगे किसी औरके।

पर्यायबुद्धिकी बातें—किसी बच्चेसे कहो, देखो यह है लडकी, तो वह कहेगा कि तू ही होगा लड़की, मैं क्यों होता ? वह चू कि लडका है ना, इसलिये वह अपनी पर्यायसे भिन्न पर्यायको तुच्छ समझता है इस दृष्टिसे कह रहा है वह बालक। किसी बच्चीसे कहो कि तू तो लडका है, तो वह भी यही कहेगी कि तू ही होगा लडका। मैं क्यो लडका होती ? उस लड़कीकी दृष्टिमे लडकेकी पर्याय तुच्छ है। क्योकि वह है ना लड़की की पर्यायमे। किसी बनियेसे कहो यह है चमार, तो वह तो यही कहेगा कि तू ही होगा चमार, मैं क्यो चमार होता ? वह चमार होनेका निषेध करता है। हालाकि इसका निषेध करनेमे थोडासा यह भी धर्मका लेश हो सकता है कि मैं तो मासाहार आदिक दोषोसे रहित हू और यह मासाहार वाली बातको मुझमे लपेट रहा है, पर इतनी दृष्टि बिरलेकी उत्पन्न होती है। एकदम सीधा निषेध तो इस कारण कर दिया जाता है कि अपनी पर्याय, अपना नाम, अपनी जाति अपने को प्रिय है। किसी चमारसे कहो कि यह है बनिया, तो वह कहेगा हट मैं क्यो बनिया होता, तू ही होगा बनिया। उसकी दृष्टिमे बनिया ठीक नही है। उसे जो पर्याय मिली है वह उस ही पर्यायमे आसक्त है।

पर्यायबुद्धीकी भोगोंमे बेसुधी—जब जब इस भवमें इस जीवको जो समागम मिला है उसे यह प्यार करता है, अचेतन हो अथवा चेतन, पर यह पता नही कि अनन्त भवोमें ऐसे ऐसे समागम पाये, वे सब समागम छोडने पड़े। आज जो कुछ उपभोगमें आते है ये सब अनन्तबार भोगे जा चुके है। इसलिये ये जूठे हैं। जैसे एक बार खाया हुआ पदार्थ जठा हो गया, इसी प्रकार ये भोग उपभोगके समस्त साधन जूठे हो गये है। उन जूठोको ही बार बार भोग रहे है। ये ससारी प्राणी परपदार्थों मे आकर्षित होकर दीन बनकर अपने नाथकी सुध भूलकर इस जन्मसागरमे जो कि अति विषम है दु खके बड़वानलसे दह्यमान है ऐसे इस चतुर्गतिके आवर्तोंमे यह डोलता रहता है।

उत्पद्यन्ते विपद्यन्ते स्वकर्मनिगडैर्वृताः।
स्थिरेतरशरीरेषु सचरन्त. शरीरिणः ॥११७॥

अनन्त विपदावोका कारण बन जाती हैं। यो ज्ञानीपुरुष ससारके स्वरूपका चिन्तन कर रहा है। यह ससार अहित करने वाला है और यह अत्यन्त असार है। इस ससारमे सारभूत बात कुछ नही है। यहाँ सभलकर रहनेकी जरूरत है। आत्माकी सुध होना ही अपनी वास्तविक संभाल है। अपने आपका यथार्थ परिचय करे और अपनेको इस असार ससारसे सावधान बनाये रहे, अपनी सभालसे ही अपनी रक्षा है।

प्रच्यवन्ते तत सद्यः प्रविशन्ति रसातलम्।
भ्रमन्त्यनिलवद्विश्व पतन्ति नरकोदरे ॥१२०॥

देवोंका भी मरकर वायुवत् भ्रमण—यह जीव देवगति और देव आयुकर्मके उदयसे स्वर्गोमे सागरो पर्यन्त दिव्य सुख भोगता है, किन्तु अन्त उसका भी आता है। आयुक्षयके समय वह उस देवगतिसे च्युत होकर उस पृथ्वीतल पर जन्म लेता है। देव मरकर देव नही हो सकता, अत उसका तत्काल ऊर्ध्वलोकमे जन्म होना असम्भव है। यह देव मर कर नारकी भी नही बन सकता, इस कारण इसका पृथ्वीके नीचे भी उत्पन्न होना असम्भव है। तब मरकर वह इसही पृथ्वीतल पर जन्म लेता है। वह एकेन्द्रिय भी बन जाय, अथवा पञ्चेन्द्रिय, तिर्यञ्च, मनुष्य आदि बन जाय, जन्म लेना पडता है उन्हे चल करके यहाँ पर भू लोकमे। जिस समय वे देव मृत्युको प्राप्त होते है उस समय उनके सक्लेशका क्या ठिकाना ? वे इस बातका बहुत दुःख मानते है कि हमारा कैसा दिव्य सुख है, शरीर ही हाडमास अपवित्र चीजोसे रहित है देवागनाये भी रूपवती और दिव्य दह वाली हैं, भूख प्यासका यहाँ क्लेश नही, विक्रिया ऋद्धि है स्वय जन्मतः जिसके ऐसी है कि एक शरीरके नाना शरीर बना ले, छोटे बडे बना ले, गुप्त हो जायें, प्रकट हो जाये, ऐसे नाना प्रकारके सुख अब छूटे जा रहे है। अब मरकर अपवित्र देहमे जन्म लेना पड रहा है। यह बात सोच सोच कर वे देवता बहुत दुःखी होते है, पर विधिकी गति दुर्निवार है, उन्हे वहाँसे मरण करना पडता है, फिर इस पृथ्वीतलपर आकर जन्म लेकर वायु की तरह यहाँ वहाँ भ्रमण करना पडता है अर्थात् फिर किसी देहमे जन्म लिया, यो जन्म जन्मान्तरोके भटकनोके बाद कभी वे नरकमे भी गिरते है।

भवितव्यताकी जिम्मेदारी—भैया ! हमारी कैसी भवितव्यता बने इसके लिये हम ही जिम्मेदार है दूसरा कोई साथ देने वाला नही है। खुदके दिलमे पाप हो, खुद स्वय श्रद्धान्, ज्ञान, आचरणसे भ्रष्ट हो तो यह अपने आप ही ऐसे वातावरणको बना लेगा कि दुर्गतियोमे जन्म लेना पडेगा। यदि अपना आशय पवित्र है, पापसे दूर है, सम्यक्श्रद्धान्, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्आचरणका यत्न है, हम अपने परमार्थ भूत शरण इस निज अत-

जीवों की उलझ और सुलझ—ये ससारी जीव अपनी अपनी कर्म बेडियोसे बन्धे हुए स्थावर जीवोमे और त्रस शरीरमे संचरण करते हुये मरते रहते हैं और उत्पन्न होते रहते हैं। यह दशा है आज। जबकि स्वभाव यह था कि सारे लोकालोकको विशद जानता रहता और अत्यन्त पूर्ण अनाकुलताका अनुभव करता। था तो ऐसा स्वभाव, किन्तु अपनी सुध भूलकर अत्यन्त भिन्न असार जिससे अपना कोई सम्बन्ध नही, भिन्न भिन्न सत्त्व रखने वाले हैं ऐसे चेतन और अचेतन परपदार्थोमे इस ने अपने आपके प्रदेशोमे विकल्प-जाल गूथ लिया है और जैसे एक हवा का निमित्त पाकर पताका, ध्वजा अपने आपमे ही सुलझ जाती है ऐसे ही ये जीव जो कुछ करते हैं, निमित्त कुछ मिला, अपने आपमे ही उलझते हैं और कभी सुबुद्धि मिले तो अपने आपमे ही सुलझ जाते हैं।

देहधारियोके निर्माण पर तर्क—कोई यहाँ तर्क करे, कैसे बन जाते हैं? ये जीव ऐसे त्रस बन गया, कीडा बन गया, मनुष्य बन गया, पेड, पौधा बन गया, वे सब किस तरह बन जाते हैं? कुछ ठीक ठीक तो समझावो। हम और बातोको देखो तुम्हे ठीक समझा देंगे। लो घोडा यो बन गया, देख लो ना रोटी यो बन गई। बहुतसी चीजें समझा देंगे। जरा कोई मुझे यह तो समझा दे कि ये सब बन कैसे गये? ये गाय, बछिया बन कैसे गये, ये आदमी बन कैसे गये? क्या समझाया जाय? यहा तो हम आप लोगोके हस्तादिक व्यापारो का निमित्त पाकर ये खेल खिलौने, रोटी, घोडा, कपडे बन जाया करते है। इन्हें भी कोई अच्छी तरह समझा नही सकता। मोटी दृष्टिसे समझमे आता है कि ये पदार्थ यो बन गये। भला बतलावो तो तुमने हाथ का व्यापार किया तो हाथमे किवा, ये बाह्य-पदार्थ ऐसे कैसे बन गये? खैर उसका समाधान शायद व्यवहारिक क्षेत्रके आनेके कारण कल्पना मे हो जाता हो, फिर भी यहाके समाधानको पद्धति निमित्तनैमित्तिक विधि है, उसके बिना समाधानकी कोई दिशा नही बन सकती। तब इसी प्रकार ये त्रस स्थावर कीडे, मकौडे, पशु, मनुष्य आदिकके बननेमे भी वही निमित्तिक पद्धतिका विधान है।

परिणामका वातावरण—जीव जैसा परिणाम करता है, इस जीवके ही निकट कोई सूक्ष्म वातावरण ऐसा बन जाता है जो उस परिणामके अनुरूप कुछ प्रभाव डाल सके। जैसे कोई एक मनुष्य तीव्र क्रोध करता है तो उसके क्रोधके कारण आसपासका वातावरण भी क्षुब्ध और कुछ भयंकर हो जाता है। कोई पुरुष शान्त चित्त होकर शान्तिकी वार्ता करे और शान्तिका हीकार्य करे तो उसे निकट के वातावरणकी स्थिति ऐसी बन जाती है कि वहाके आसपास केरहने वाले लोग भी शान्तिका अनुभव करते हैं। यही बात तो समवशरणमे हुआ करती है। प्रभु तीर्थंकर जहा विराजे है उनके निकटका वातावरण ऐसा शान्त हो जाता है कि

बिल्ली, चूहे, साप, नेवले, हिरण, शेर परस्पर विरोधी जातिके जानवर वहा एक जगह खड़े रहते है। यह है ना आत्मशक्ति।

आत्मशक्तिकी विजय—शस्त्रके बलपर कोई कब तक जिन्दा रहेगा ? आखिर मरण उसका भी होता है और एक आत्म-आराधनामे रहने वाला सत शस्त्रोसे रहित है। केवल एक अपने आपको ही अपना वैभव एकमात्र सहारा मानकर रहता है, उसका भी जीवन जब तक है तब तक ठीक चलता है और जितना उपकार अथवा रक्षा कोई एक शस्त्र वाला कर सकता है उससे भी कई गुना उपकार और लोगोकी रक्षा शस्त्र रहित, किन्तु उदार सौम्य शान्त प्रकृतिका लाग लपेट लोभ लालचसे रहित प्रकृतिका मनुष्य कर सकता है। तीर्थंकर तो मनुष्योमे उत्तम है, उनके निकटका ऐसा शान्त वातावरण रहता है कि क्रोधकी दिशावोमे तो परस्पर विरोधी जीव भी शान्त होकर बैठते है, मानकी ओर देखो तो मानस्तम्भके निकट आकर बडे-बड मानी भी अपना मान त्याग देते है। माया, छल, कपटका तो वहा कुछ ख्याल नही रहता है। सीधा प्रभुगुण, प्रभुस्वरूपकी ही वार्ता रहती है। लोभ वहा क्या करे, अपना सबकुछ प्रभुके लिये समर्पण किया जा रहा है। देवी देवता मनुष्य लोग बडे सगीत गीत साजधाजके साथ जो वहाँ भक्ति प्रदर्शन करते है उनके उपयोगमे उस समय यह समाया रहता है कि मेरा सर्वस्व प्रभुके चरणोमे न्यौछावर है। मुझे किसी भी अन्य पदार्थसे कुछ प्रयोजन नही है। यदि उस भक्तिके समय किसी अन्य पदार्थ स्त्री, पुत्र, वैभवका लगाव है तो वहाँ भक्ति भी सातिशय बन नही सकती। यह सब निमित्तनैमित्तिक भावोकी बात चल रही है।

कदाचिद्देवगत्यायुर्नामकर्मोदयादिह।
प्रभवन्त्यंगिन स्वर्गे पुण्यप्राग्भारसभृता ॥११८॥

बारह भावनाओका वर्णन करते हुये तीसरी ससार भावनाका वर्णन करते है। उनमे प्रथम देवगतिका वर्णन करते है कि कभी तो यह जीव देवगति नाम कर्म तथा देवायु-कर्मके उदयसे पुण्यकर्मके समूहोसे भरे हुये स्वर्गोमे देवोका शरीर धारण करता है। परन्तु इन स्वर्गोमे भी उसे किंचित् सुख प्राप्त नही होता है क्योकि देवगतिमे कल्पनाओका जाल बड़ा विस्तृत है।

लोकमहन्तोंकी व्यथायें—कभी यह जीव देव बनता है तो देवगतिमे भी कल्पनाजालो से बधा हुआ यह आकुलित रहता है। जैसे यहाँ किसी बड करोड़पति सेठको क्या दु:ख है ? इसको हजारपति लोग नही जान सकते, उनकी दृष्टिमे तो ये बड़े सुखी नजर आते है, अनेक कार है, ठडा मकान है, ठडके दिनोमे गरम मकान बन जाते है, अनेक नौकर-

स्तत्त्वकी ओर झुका करते हैं तो यह सब ऐसा विशुद्ध वातावरण करेगा कि उत्तम गतिमे जन्म होगा।

समागमोकी अविश्वास्यता व अहितरूपता—यह संसार असार है। इन समागमोका कोई विश्वास न करे। ये समागम जितने काल है उतने काल भी इन समागमोसे कौनसा लाभ हो जायेगा ? शान्ति हो जायेगी क्या ? सतोष मिल जायेगा क्या ? जब शान्ति और सन्तोष ही नही मिल पाते है तो फिर लाभको क्या कथनी करे ? विश्वासके योग्य अपने आपका सहजस्वरूप है वह कभी हमसे दूर होता नही। चाहे हम उसे जान पाये अथवा न जान पाये, वह शाश्वत हम ही मे रहता है और अनुकूल है। उस सहजस्वरूपके कारण स्वय कोई परिणमन होता है तो वह सहजस्वरूपका भान करता हुआ ही होता है। उसका शरण गहें, उसे सार माने। अन्य समागमोको असार और अहित माने। यह जीव अपने आपकी सुध खोकर बाह्यपदार्थोमे उलझ उलझकर, नाना कल्पनायें रचकर विविध कर्म बन्ध करता है और नाना देहोमे जन्म लेता रहता है। इस ससारसे प्रीति मत करो।

आत्महितोपदेश—भैया ! कुछ अपने भीतर एक क्षणको भी तो यह बात लावो। थोडी भी क्षणिक वैराग्यकी आत्मदर्शनकी बात हो जाय तो इस जीवका मगल है, इसका कल्याण होगा यदि ऐसी ही तीव्र आसक्ति बनी है, ऐसा ही तीव्र लोभ बना हुआ है कि न वाक्योका कोई असर होता, न किसी धर्म क्रियामे हम सही मायनेमे चित्तवृत्ति बना सकते तो क्या लाभ है ? इस जीवनमे जीनेसे फायदा क्या मिला ? विषयोके भोग तो पशु पक्षी बनकर भी मिल सकते थे। उन पशुवोकी इन्द्रिय विषयभोगोसे उत्पन्न हुई मौज और इन प्राणियोकी इन्द्रिय विषयोसे उत्पन्न हुई मौजमे क्या अन्तर है ? वे भी कल्पनावश सुखी देखे जाते हैं और यह मनुष्य भी कल्पनावश सुखी देखा जाता है इस मनुष्य देहका लाभ तो धर्मसाधनमे है। उस अपने धर्मकी सुध लो। इस मोही जगत्की देखा देखी केवल बाह्य पदार्थोमे, परिग्रहोमे, परिजनोमे चित्त मत फसाये रहो। देखो ना यह जीव देवगति तक हो आता और बनकर मनुष्य तिर्यञ्च बनकर नरक गति तक चला जाता है और चारो गतियोमे डोलता हुआ यह जीव अपने खोटे दिन पूरे करता रहता है।

विडम्बयत्यसौ हन्त ससार समयान्तरे।
अधमोत्तमपर्यायैर्नियोज्य प्राणिना गणम् ॥१२॥

विडम्बना—अहो ! बडे आश्चर्यकी बात है कि यह ससार, यह विकारी जीवोका समूह समयान्तरमे ऊँची नीची पर्यायोमे जुड जुडकर पिण्डरूप बना है, अर्थात् ये विकार जीवोके स्वरूपको अनेक प्रकारोमे बिगाडते हैं। जैसे यहा कोई परम बुद्धिका पुरुष हो तो

लोग उसको सभ्य अथवा असभ्य मजाक बना बनाकर उसकी विडम्बना कर डालते है, ऐसे ही यहां इन कम अक्ल वाले जीवोको जिनके विवेक नही जगा, मिथ्यात्वसे ग्रस्त है, शुद्ध पथका जिन्हे आभास ही नही है ऐसे इन अज्ञानी जीवोको ये विकार, ये ससारभाव, ये अनेक वातावरण नानाप्रकारसे विडम्बित कर देते है और देखो ना अभी मनुष्य है और छिनमे बन जाता है गिजाई कीडा, पेड। क्यासे क्या हालत एकदम बदल जाती है ? इसे क्या कम विडम्बनाकी बात कहे ? लोग कल्पनाए करके अपने जीवनकी काल्पनिक विपत्तियोके मिटानेमे बडा जोर लगाया करते है और उन कल्पित विपदावोसे बचने के लिये किसीसे लडना पड़े, किसीको बुरा कहना पडे, किसीका द्वेषी बनना पड़े अथवा किसीसे जूझना पडे तो यह जीव सब कुछ करनेको तैयार हो जाता है। यह क्या जीवपर कम विपदा है ? क्या यह जीवकी कम विडम्बना है ?

विडम्बनाविघातका यत्न—अरे आत्मन् ! इस लोककी घटनाओको विपदा महसूस न करके एक अपने आपके बन्धनकी विपदाको जरा सामने नजर करे, इनसे छूटना है, एक ही प्रोग्राम है। कैसा तो यह आत्मा अपने स्वभावसे ज्ञानानन्दस्वरूप रहने वाला अमूर्त, किसीके छेदे छिदता नही, किसीके भेदे भिदता नही, पानीमे डूबता नही, अग्निमे जलता नही, वायुसे उडता नही, किसीकी लपेटमे आता नही, ऐसा यह अमूर्त ज्ञानानन्दघन आत्मा अपने ही अपराधके कारण कैसी विडम्बनामे पड गया है ? बडे आश्चर्यकी बात है। हो गई विडम्बना बहुत अधिक। हे आत्मन् ! तेरेमे एक ऐसी कला है जिस शुद्ध कलाके प्रयोगमात्रसे ये सर्व प्रकारकी विपत्तिया विडम्बनाए समाप्त हो जाती है। इस कारण अपने स्वरूपको सभालो और जगत्की इन विडम्बनाओसे परे हो जावो।

स्वर्गी पतति साक्रन्द श्वा स्वर्गमधिरोहति।
श्रोत्रिय सारमेयः स्यात् कृमिर्वा श्वपचोपि वा ॥१२२॥

ससारकी विचित्रता—ससारकी विडम्बनाये देखिये, देव तो बड़े रुदन सहित स्वर्गसे पतित हो जाते है, मरण करके इस भूलोकमे तिर्यञ्च अथवा मनुष्य बनते हैं और कहीं कुत्ता स्वर्गमे चढ जाये, देव बन जाये, ऐसी घटना हुई है। जब सत्यंधर कुमारके पुत्र जीवन्धरकुमारने एक किसी विधिविधानमे अज्ञानियो द्वारा सताये गए मरते हुए कुत्तेको नमस्कार मत्र सुनाया था, उस नमस्कार मत्रके शब्द श्रवणसे जो उसकी विशुद्धि प्रकट हुई उसके प्रतापसे कुत्ता भी देव हो गया।

णमोकार मंत्रके मननकी पद्धति—भैया ! णमोकार मंत्रका प्रताप अद्भुत है, किन्तु श्रद्धा न होने पर उसका कुछ भी प्रभाव नही बनता। अरहतका क्या स्वरूप है ? उस

स्वरूपको दृष्टिमें रखकर यह सत्य शरणभूत है, ऐसा जानकर उसके निकट बसनेका उद्यम करता हुआ णमो अरिहंताणं' बोले और निर्बाध केवल यथार्थ ब्रह्मस्वरूपको निरखकर यही तो मैं हूं, ऐसा अपनामतके साथ सिद्धप्रभुकी शरणमे जाते हुए 'णमोसिद्धाण' बोलें। अपने उपकारक आचार्य परमेष्ठी जो आदेशो द्वारा उपदेशो द्वारा और उन विधि विधानो द्वारा इन साधुवोका उपकार करते हैं ऐसे उपकारक आचार्य परमेष्ठियोको आन्तरिक स्वच्छता, सरलताके निकट अपने उपयोगकी पहुँच हो, यहा 'णमो आइरियाण' बोलें और ज्ञानपुञ्ज, ज्ञानकी चर्चाका ही जिनके कार्य है, पठनपाठन ही जिनका एक मुख्य गुण हो गया है और जो समस्त पंचाचारोका विधिवत् पालन करते है ऐसे ज्ञानपुज उपाध्याय परमेष्ठियोके उस ज्ञानविकासको निरख निरखकर प्रसन्न होते हुए 'णमो उवज्झायाण' बोलें और नाना गुफावोमे, वनोमे, पर्वतो पर, सागर तट पर, नदीके तट पर विभिन्न परिस्थितियोमें, उपद्रवोमे अपने ध्यानमे लीन रहने वाले साधुवोकी आन्तरिक रुचिको निरखकर 'णमो लोएसव्वसाहूण' बोलें। ऐसी भक्तिभावसे णमोकारमन्त्रका स्मरण करने वाले पुरुष पर जो प्रभाव हो सकता है, वह प्रताप अद्भुत है।

चेतनेका अवसरका सुयोग—देखो कुत्तेने भी णमोकारमन्त्रके शब्दके श्रवणमात्रसे प्राप्त की हुई विशुद्धिसे देवपद प्राप्त किया और बड़े यज्ञ पूजा विधान करने वाले पुरुष एक श्रद्धाके बिना कहो मरकर कुत्ता बन जायें, कीडा बन जायें अथवा चाडाल आदिक बन जायें, ये सब सभावनाये सही है, देखो इसी प्रकार ससारकी ये सब कैसी विडम्बनाएं है, ऐसे विडम्बनामय ससारमे स्वछन्द होकर, बेखबर होकर मत भागे भागे फिरो। इस विषम उपद्रवोसे ग्रस्त विश्वासके अयोग्य ससारमें स्वछन्द होकर रमनेका काम नही है। अपनी सभाल कर ली जायेगी तो भविष्य भी उत्तम बनेगा और अपनी सभाल न होगी तो जैसे अनादिसे अब तक भ्रमते चले आये है वही भ्रमण जारी रहेगा। चेतनेका अभी मौका है। जातिकुल भी उत्तम मिला है, ऐसे अनुपम समागमको पाकर अपना जीवन सफल करनेका यह अवसर है। ऐसे अवसरसे चूके तो फिर यह अवसर हाथ आनेका नही है। बडी कठिनतासे पुन कभी सुयोग प्राप्त होगा।

रूपाण्येकानि गृह्णाति त्यजत्यन्यानि सततम्।
यथा रङ्गोऽत्र शैलूषस्तथायं यन्त्रवाहक.॥१२३॥

देहधारियोंके नाना रूपक—यह यन्त्रवाहक अर्थात् इस शरीर मशीनको ढोने वाला यह मजदूर पुरुष कभी कभी रूपको ग्रहण करता है और कभी किसी रूपको त्यागता है। रूप बनाना, रूप मिटाना बस यही नाटक जैसा काम इस जीवका बन रहा है। जैसे कोई रंग

मचपर नृत्य करने, पार्ट अदा करने वाला भिन्न-भिन्न स्वागोको धरता है, इसी प्रकार यह जीव निरतर भिन्न-भिन्न स्वागोको धारण करता रहता है। कभी कुछ बना, कभी कुछ बना। जीवोके पापके उदय आते है और उन्हे ऐसे ही पुण्योदयी निमित्त मिलते है किन्तु क्रूर मनुष्योसे पाला पड जाता है कुछ पुण्यके उदयसे, कुछ यश चला है, प्रताप बना हुआ है तो वे बड़े लोग तो अपनी मौजके लिये, इस जगत्मे अपनी नाम-वरी फैलानेके लिये युद्ध करे, कैसी-कैसी प्रवृत्तिया करे और ये अनेक ससारी जीव उसमे पिस जाया करते है। यह सब ससारका रूपक है। ससारमे किस जगह जाये कि सन्तोषसे बैठा जा सके? जब इस जीवके साथ कषायोका दाह लगा हुआ है तो जहाँ जायेगा वही जलेगा। शान्ति कहाँ पायेगा? शान्ति चाहते हो तो इस अपने आपके अन्तरमे ही सम्यग्ज्ञानका प्रकाश पाये तो शान्ति मिलेगी। यथार्थ बोध बिना यह जीव शान्ति तो पायेगा क्या? अनेक विडम्बनाओके रूपोको ग्रहण करता है, छोडता है, जन्मता है, मरता है।

तीन मांगोसे निरुत्तरता—किसी राजाने दूसरे राज्यपर हमला बोला और उस दूसरे राज्यके सब वंशजोको मार डाला, तब इसे बडा खेद हुआ, हाय! मैंने कुबुद्धिवश इस राजवशको उजाड डाला, क्या फायदा मिला? इस सोच विचारके बाद वह इस तलाशमे रहा कि इसके घरानेका कोई मिले तो उसको ही यह राज्य सौप दूँ। हमे क्या करना है इस राज्यको? खोजा तो कोई न मिला। एक पुरुषने बताया कि इस राजवशका राजा का एक चाचा मरघटमे रहता है। वह घर आता भी नही है। वही उसे मौज मिलता है। वह राजा मरघटमे उसके पास पहुचा। सारी कथा सुनाई और कहा कि तुम जो चाहते हो हमसे माग लो। राजा तो सोचता था कि यह तो अधिकसे अधिक राज्य माग लेगा और क्या माग सकेगा? तो वह चाचा बोला—हम जो चाहेगे क्या तुम वह दोगे? राजा बोला—हाँ देगे। तो चाचा कहता है अच्छा मुझे ऐसा सुख दो जिसके बाद फिर कभी दुःख न आये। राजा ऐसे अटपट प्रश्नको सुनकर गम्भीर विचारमे पड गया और उसे ऐसा लगा कि इस ससारमे ऐसा कोई भी वैषयिक सुख नही है जिसके पानेके बाद फिर कभी दुःख न आये। वह हाथ जोडकर बोला—महाराज मैं ऐसा सुख देनेमे असमर्थ हूँ। कृपया आप कोई दूसरी चीज मागो। चाचा बोला—अच्छा देखो तुम हमे ऐसा जन्म दो कि जिसके बाद फिर कभी मरण न हो। राजा इस दूसरी बातको भी सुनकर विस्मय मे पडा। सोचता है राजा कि ऐसा किसका जीवन है कि जिस जीवनको पाकर वह कभी मरता न हो। बडी-बडी स्थितियोके देवता लोग भी आखिर मरा करते है, सो ऐसा सोच

कर राजा कहता है—महाराज इस बातको भी देनेमे असमर्थ हूँ। आप कोई तीसरी चीज मागो। तो चाचा बोला कि मुझको ऐसी जवानी हो जिसके बाद फिर कभी बुढापा न आये। ऐसा तो कही देखा ही न होगा किसीने कि जवानी आनेके बाद बुढापा आता ही न हो, सदा जवान ही बना रहता हो ऐसा तो कही होता नही। ऐसी बात सोचकर राजा हाथ जोडकर कहता है—महाराज तुम्हारी इस मागको भी मैं पूरा करनेमे असमर्थ हूँ। आखिर अपनी हार मानकर राजा वापिस चला जाता है।

सुखके लिये अविवेकी होनेकी मूर्खता—भैया! खूब देख लीजिये कि इस ससारमे ऐसा कोई भी सुख ऐसा नही है जिस सुखमे अनन्त दुःख न बसे हुए हो। फिर इन सासारिक सुखोकी आशा करना और उनके लिये विवाद विरोध और विकल्प मचाना, यह तो कुछ विवेककी बात नही है। सुखके लिये, अविवेकसे लिपटना तो मूर्खताका काम है। विवेकका काम तो है अपने सत्यस्वरूपकी दृष्टि करना और उस निजतत्त्वके दर्शनमे ही प्रसन्न बने रहना, यही है विवेकका काम। इस विवेकपूर्ण कार्यसे हम अवश्य शान्त होगे व पूर्ण सन्तुष्ट होगे।

सुतीव्रासातासंतप्ता मिथ्यात्वातङ्कितर्किता।
पञ्चधा परिवर्तन्ते प्राणिनो जन्मदुर्गमे ॥१२४॥

अज्ञानी प्राणियोका जन्मवनमे भ्रमण—अत्यन्त तीव्र असातासे सतप्त हुए और मिथ्यात्वरूपी रोगसे शकित हुए यहाँ प्राणी ५ प्रकारसे इस जन्मरूपी दुर्गम बनमे भ्रमण कर रहे हैं। इस ससारको दुर्गम बन कहा है, जो कि नाना प्रकारके पेड कटीले अनेक वृक्ष और लतावोसे वेष्टित है। जहाँ इन वृक्षोके फैलावके कारण अधरासा छाया रहता है, ऐसे बनमे प्रवेश करना कठिन है, उस बनसे निकलना कठिन है। ऐसे ही इस ससारमे जहाँ विषमकषायकी वासनाओके कारण अधेरा छाया रहता है, ऐसे इस अज्ञानी जगत्से निकलना कठिन है, इसीसे ससारको बनकी उपमा दी गई है। इस ससाररूपी दुर्गम बनमे यह प्राणी मिथ्यात्वसे सतप्त व शकित हुआ यत्र तत्र भ्रमण करता है। जैसे दुर्गम बनमे फसा हुआ मनुष्य जहा सूर्यका प्रकाश भी नही आ पाता तो थोडा पूर्व दिशाकी ओर भागता है, फिर शकित हो जाता है। फिर कही उत्तर और दक्षिणकी ओर भागता है। ऐसे ही ये ससारके प्राणी मिथ्यात्वके वशीभूत होकर नाना योनियोमे भ्रमण कर रहे हैं और इसी कारण उन्हे तीव्र असाताका सताप उत्पन्न होता है। जब ज्ञान सही नही रहता, विपरीत ज्ञान बन जाता है तो वहा असाता ही उत्पन्न होती है। यो असातासे तप्तायमान् हुआ मोहके वशीभूत यह प्राणी इस ससाररूपी दुर्गम बनमे परिवर्तन करता रहता है।

द्रव्यक्षेत्रे तथा कालभवभावविकल्पतः ।
ससारो दुःखसकीर्णः पञ्चधेति प्रपञ्चितः ॥१२५॥

ससारी प्राणियोंका द्रव्यपरिवर्तन—ससारके परिवर्तन ५ प्रकारके होते है—द्रव्यपरिवर्तन, क्षेत्रपरिवर्तन, कालपरिवर्तन, भवपरिवर्तन और भावपरिवर्तन । इन परिवर्तनोके स्वरूपको बतानेका प्रयोजन इतना है कि इस जीवको यह ज्ञात हो जाये कि मैंने ससारमे भ्रमण करते करते कैसे अनन्तकाल व्यतीत किया है ? द्रव्यपरिवर्तनमे यह बताया है कि इस एक परिवर्तनमे ही शरीरकी अनेक वर्गणाएं भोग उपभोगकी समस्त सामग्री अनन्त बार ग्रहणकी है और छोड दी है उसका वर्णन ग्रहीत अग्रहीत मिश्रके माध्यमसे बताया गया है, वह सर्वजनोको क्लिष्ट रहेगा । उससे इतना ही तात्पर्य ग्रहण करना कि इस जीवने अनन्त बार इस शरीरकी वर्गणावोको भोगा और उपभोगके विषयोको ग्रहण किया और छोड दिया । वैसे भी देख लो तो किसी भी विषयके साधनमे सुख काहे का है ? कल्पनाएं करके कुछ मान लिया जाय तो वह सत्य सुख तो नही कहा जायेगा । भोगोमे सुख नही है । इस बातका परिचय आप इस पद्धतिका ज्ञान करें तो हो जायेगा । जो भोग भोगे हैं अनेक बार और अनेक दिन व्यतीत किए है । यदि ये भोग न भोगे जाते, न भोगते तो कौनसी हानि इस जीवको आज थी ? इस पद्धतिको विचार करके भोगोकी असारता सुविदित हो जाती है ।

ससारी प्राणियोका क्षेत्रपरिवर्तन व लोकके मध्यका वर्णन—क्षेत्रपरिवर्तनमे यह दिखाया गया है कि यह जोव ३४३ घनराजू प्रमाण लोकमे लोकके बीचसे क्रम क्रमसे एक एक प्रदेश बढ बढकर कितने ही बार पैदा हुआ है । यो लोकके प्रत्येक प्रदेशपर अनेक बार उत्पन्न हुआ है, इतना काल व्यतीत किया है । इस लोकका मध्यस्थान है मेरूपर्वतके जडके नीचेके ८ प्रदेश । इस लोकमे प्रदेश असख्याते है । असख्याते होकर भी चाहे वे गिनतीमे न आये लेकिन उनमे यह व्यवस्था तो जरूर होगी कि वे प्रदेश इतने है कि दो का भाग तो पूरा चला जाय या एक बच जाय । कितने ही अनगिनते प्रदेश हो फिर भी यह व्यवस्था तो सम्भावित है । जैसे हजार प्रदेश है, दो का भाग दो तो पूरा भाग चला जाता है । १००१ प्रदेश हो तो दो से भाग देने पर एक बच जाता है । तो लोकमे प्रदेश तो असख्याते हैं, पर यह सभावना है कि दो का भाग दे तो पूरा भाग चला जाय इतने प्रदेश हैं या एक बच जाय । इस व्यवस्थासे लोकमे ऊने हैं प्रदेश या पूरे ? पूरे हैं प्रदेश । चारो ओर पूरे प्रदेश है ।

उदाहरणपूर्वक लोकके मध्यका प्रतिपादन--कोई चीज उतनी लम्बी उतनी चौडी उतनी मोटी हो सब जगह, मानलो कि वह १२ अगुलकी है चारो ओर १२ अगुल लम्बा, १२ अगुल चौडा, १२ अगुल मोटा कोई काठ है तो बतलावो अगुलकी नापसे उसके बीच कौनसा अगुल पडेगा ? ११ अगुल होता तो कह देते कि छठवा अगुल है बीच। अब १२ अगुलमे बीचका अगुल क्या बताये ? प्रकृतमे यूनिट एक अगुलको मान लो सो अगुलसे कम ज्यादा बताना है नही। तो लम्बाईमे बीचकी दो अगुल आयेगी, चौडाईमे बीचकी दो अगुल आयेगी। चारो दिशाओसे ऊपर नीचेसे दो दो अगुल आयेगा, तब बीच कितना पडा ? आठ अगुल। ऐसे ही यह लोक समसख्याके प्रदेश वाला है। उन अनगिनते प्रदेशो मे दो का भाग पूरा चला जाता है तो ऐसे इस बडे लोकमे बीचका स्थान कितना पड़ेगा ? आठ प्रदेश। ऊपरसे नापा तो चारो दिशावोके चार प्रदेश रहे। नीचेसे नापा तो नीचेसे चार प्रदेश रहे। यो लोकके ठीक मध्यभाग ८ प्रदेश है।

क्षेत्रपरिवर्तनका रूप—लोकके मध्यमे यह जीव छोटी अवगाहनासे पैदा हो और ऐसी जगह कि जीवके अथवा शरीरके बीचके ८ प्रदेश और लोकके बीचके ८ प्रदेश, आठ पर आठ रह जाये ऐसी जगह यह जीव पैदा हुआ, फिर उसके बाद किसी एक दिशामे एक प्रदेश बढकर वहाँ पैदा हुआ, फिर दुनियामे कही भी पैदा हो वह गिनतीमे नही आता। फिर उसके ही बाद मे फिर पैदा हो, इस तरह क्रम-क्रमसे एक-एक प्रदेशपर पैदा हो होकर सारे लोक प्रदेशोमे यह जीव उत्पन्न हो जाय इतने मे जितना समय व्यतीत हो उसका नाम है एक क्षेत्रपरिवर्तन। ऐसे-ऐसे इस जीवने अनन्त क्षेत्रपरिवर्तन किये हैं। इन परिवर्तनोका एक मोटा स्वरूप बता रहे है।

ससारी प्राणियोका कालपरिवर्तन--कालपरिवर्तनमे मान लो कभी जब कल्पकाल शुरू हुआ, अवसर्पिणीके पहिले समयमे यह जीव उत्पन्न हुआ, फिर कभी उत्सर्पिणी काल आया और उसके दूसरे समयमे जन्म ले ले तो वह क्रममे शामिल होगा, नही तो यो अनन्त उत्सर्पिणी व्यतीत हो जाय उनके अन्य-अन्य समयोमे पैदा हो तो हमारे इस परिवर्तनके क्रममे न आयेंगे। यो फिर उत्सर्पिणी हुआ, उसके तीसरे समयमे उत्पन्न हुआ। यो एक-एक समय बढकर सारी उत्सर्पिणी और सारी अवसर्पिणीमे उत्पन्न हो जाय, उसमे जितना समय लगे वह है एक कालपरिवर्तन। बहुत सक्षिप्त और मोटा स्वरूप बता रहे हैं कि इस जीवने ससारमे कितने परिवर्तन कर डाले।

ससारी प्राणियोका भवपरिवर्तन—अब सुनिये—भव परिवर्तन। जैसे मान लो नरक भवका परिवर्तन बताना है तो नारकी जीव कमसे कम १० हजार वर्षकी उमरका होता

होता है। इससे कम उमर नारकी जीवकी नही होती और ज्यादासे ज्यादा ३३ सागरकी उमर होती है। कोई जीव १० हजार वर्ष की आयु लेकर नारकी बने और फिर वहाँसे मरण करके फिर १० हजार वर्षकी आयु लेकर नारकी बने, यो १० हजार वर्ष मे जितने समय होते है उतने बार दस-दस हजार वर्षकी आयु लेकर उत्पन्न हो, बीचमें कही भी उत्पन्न हो और नारकी की भिन्न-भिन्न आयु लेकर उत्पन्न हो वह इस गिनतीमे नही है। जब १० हजार वर्षके समय बराबर बार १० हजार वर्षकी आयु लेकर नरक भव धारण कर लिया, फिर एक समय अधिक दस हजार वर्ष की आयु लेकर उत्पन्न हुआ, फिर दो तीन आदि समय अधिक दस-दस हजार वर्ष की आयु लेकर उत्पन्न होता रहे, यो एक-एक समय बढाकर ३३ सागरकी आयु पर्यन्त नरकमे उत्पन्न हो ले, इसमे जितना समय लगे उतने समयका नाम है एक नरकभव परिवर्तन ऐसी ही बात चारो गतियोमे ले लो। अन्तर इतना रहेगा कि देवगति मे १० हजार वर्षसे लेकर ३१ सागरकी आयु तक ही लगाना, क्योकि ३१ सागरसे १ समय भी अधिक आयु सम्यग्दृष्टि ही पायेगा। उसका परिवर्तन होता नही। मनुष्यभवमे अन्तर्मुहूर्तसे लेकर तीन पल्यकी आयु तक परिवर्तन लेना। ऐसी ही बात तिर्यञ्चोमें लेना। यह है भवपरिवर्तन।

भावपरिवर्तन व उपसंहार—भावपरिवर्तन तो अति विषम है। कितने-कितने कषाय के क्रमवार अध्यवसाय स्थान व्यतीत हो जावे तब एक योगस्थान गुजरे, यो क्रमसे सब योगस्थान गुजरे, वहाँ सबसे बडा भारी काल व्यतीत होता है। यो ५ प्रकारके परिवर्तनो से यह जीव ससारमे जन्ममरण कर रहा है। क्या किया इसने सर्वपरिवर्तनोमे, क्या बीती इस पर, सो आगे श्लोकमे सुनिये—

सर्वैं सर्वेऽपि सम्बन्धाः संप्राप्ता देहधारिभिः।
अनादिकालसभ्रान्तैस्त्रसस्थावरयोनिषु ॥१२६॥

अनादिकालसे भ्रमण करने वालोंका परस्पर सबसे सम्बन्धकी घटनायें—इस ससारमें अनादि कालसे भ्रमण करते हुए जीवो ने सभी जीवोके साथ सभी प्रकारके सम्बन्ध पाये है। आज जिन्हे आप गैर मानते हैं, जो दूसरे घरके हैं, दूसरे देशके है वे सभी जीव आपके अनेक बार कुटुम्बी बन चुके है। ऐसा कोई भी जीव अथवा ऐसा कोई भी समय बाकी नही रहा जो इस जीवने न पाया हो। आज जिसका यह पिता कहलाता है कभी उसका यह पुत्र भी था, पर नाना भवोकी बात तो जाने दो, ऐसा भी सम्भव हो सकता कि इस ही भवका जो पुत्र है इस पिताके मरने के बाद यह पिता उस ही पुत्रका पुत्र बन जाय। ऐसा कोई सम्बध नही बचा जो सम्बध सब जीवोके साथ न जुडा हुआ हो।

जब अनन्तकाल, अनन्तभव इस जीवने धारण किये तो किसी न किसी रूपमें प्रत्येक जीवसे इसका सम्बध हुआ है। आज यह मोहवश अज्ञानवश ऐसा भाव कर रहा है कि ये लोग मेरे हैं, ये लोग गैर हैं। क्या क्या हुआ उन परिवर्तनोमे सो भी सुनिये—

देवलोके नृलोके च तिरश्चि नरकेपि च।
न सा योनिर्न तद्रूप न तद्देशो न तत्कुलम् ॥१२७॥
न तद्दुःख सुख किञ्चिन्न पर्याय सविद्यते।
यत्रैते प्राणिनः शश्वद् यातायातैर्न खण्डिताः ॥१२८॥

देवलोकमे अनेक जन्म—देवलोकमे, मनुष्यलोकमे, तिर्यञ्चमे और नारकोमे ऐसी योनि नही बची, वह रूप, देश, कुल, दुःख, सुख आदिक कोई ऐसे परिणमन नही बच जिन परिणमनोको इस प्राणीने ससारमे जन्म मरण करते हुए न पाये हो। देवलोकसे प्रयोजन व्यवहारकी अपेक्षा तो ऊर्ध्वलोकसे है और देव जहाँ जहाँ रहते है उस अपेक्षासे भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक चारो प्रकारके देवोको देवलोकमे उत्पन्न होनेका साधन उपपाद है। माता पितासे देव उत्पन्न नही होते, किन्तु विशिष्ट स्थानो पर शैया बनी है और वहाँ देव स्वय ही अपने आप वहाँ की वैक्रियक वर्गणाओको ग्रहण करके बालककी तरह लेटे हुये प्रकट हो जाते हैं और फिर वे देव अन्तर्मुहूर्तमे ही जवान हो जाते हैं।

प्रभुभक्त दर्दु रका देवलोकमे उत्पाद—भगवान् महावीर स्वामीके समवशरणमे राजा श्रेणिक जा रहा था हाथी पर चढा हुआ और समवशरणमे प्रभुदर्शनके लिये प्रभुभक्तिसे एक मेंढक भी अपने मुखमे कमलकी एक पाँखुरी दबाये हुये जा रहा था। रास्तेमे वह मेंढक राजा श्रेणिकके हाथीके पैरोके नीचे आकर दबकर मर गया। प्रभु पूजाकी परिणतिके प्रसादसे मरकर वह देव हुआ और अन्तर्मुहूर्तमे ही जवान होकर अवधि ज्ञानसे अपना पूर्वभव और प्रभुभक्तिभावकी महिमा जानकर भगवान महावीर स्वामीके समवशरणकी भावनाका ध्यान करके अपने मुकुटमे मेंढकका चिन्ह बनाकर समवशरणमे पहुँच गया राजा श्रेणिकसे भी पहले। वहाँ जब एक अद्भुत रूपधारी तेजस्वी देवको देखा और देखा कि इसके मुकुटमे मेंढकका भी चिन्ह है, मेंढक कोई बढिया चीज तो नही है। मुकुटमे तो मेंढककी फोटो यदि बनायी जाय तो वह तो भद्दी लगेगी। जैसे पुरानी चालकी स्त्री अपने शिर पर एक मेंढकसा रख लेती हैं, उस मेंढकसे फायदा तो था कि शिरके ऊपरकी जो साडी है वह चिकनी न होती होगी, पर लगता बडा भद्दासा, उठा हुआ सा है। कोई मुकुटमें मेंढकका चिन्ह बनाले तो वह बढिया तो नही लगता। उस चिन्हको देख

कर श्रेणिकके यह जिज्ञासा हुई कि यह कौन है और ऐसा चिन्ह क्यो बनाया है? तो वहाँ समाधान मिला कि तेरे ही हाथीके पैरके नीचे दबकर मरकर यह देव बना है और तुमसे पहिले प्रभुदर्शनके लिये समवशरणमे आ गया है। तो देवलोकमे उपपाद शैया होती है वहा जन्म होता है।

नृलोक, तिर्यग्लोक व नरलोकमे अनेक जन्म—मनुष्यलोकमे जन्मस्थान मनुष्योकी तरह है, तिर्यञ्चोमे तिर्यञ्चोके योग्य है, किन्तु नरकगतिमे नारकियोके उत्पन्न होनेके स्थ न ऐसे है जैसे छतके नीचे कोई आकार बने हुये हो ऊटपटाँग तिरछे, यो इस पृथ्वीमे पोलके भीतरो भागमे ऊपर अनेक तरहके बहुत आकारके स्थान बने है, वे है नारकियोके जन्म लेनेके स्थान। वहाँसे नारकी औंधे शिर टपकते है और जमीन पर सैकडो बार उछलते है। जैसे गेद किसो जगह गिरने पर सैकडो बार उछलती है ऐसे ही नारकियोका जन्म होता है।

जन्म सुख दुःख आदिकी अनन्तानन्त घटनायें—इन योनियोमें कोई योनि ऐसी नही बची जो इस जीवने अनेक बार न पायी हो। न एसा रूप, न ऐसा देश, न ऐसा कुल, न ऐसा दु ख सुख, न अन्य प्रकारका किसी भी प्रकारका विभावपरिणमन कोई नही बचा, जिसको इस जीवने अनेक बार पाया न हो। सभी अवस्थाओमे इस जीवने अनेक बार सुख दु ख भोगे है बिना भोगे कुछ भी नही बचा। तब किसी भी पदार्थको निरखकर हे आत्मन्! तू अपूर्व क्यो मानता है, नवीन क्यो मानता है? जो भी तेरे उपभोगमे आ रहे है वे सब अनेक बार भोगकर छोडे है। ये तो सब तेरे जूठे है। तू इन जूठे विषय भोगोमे इतनी प्रीति करता है कि जिस आसक्तिके कारण तू अपने आनन्दधाम निजस्वरूप को भी भूल गया है। परिवर्तनरहित शुद्ध ज्ञानस्वरूपकी भावना करें तो ससारके ये सारे परिवर्तन समाप्त हो सकते है और अपने आपको ज्ञानस्वरूपमे लीन करके सदाके लिये सकटोसे छूट सकते है। इन ससारसमागमोको असार जानकर इनसे प्रीति मत करो और अपने शाश्वत स्वरूपमे ही अनुराग करो।

न के बन्धुत्वमायाता न के जातास्तव द्विष।
दुरन्तागाधससारपङ्कमग्नस्य निर्दयम् ॥१२६॥

बन्धुता और शत्रुताका भ्रम—इस दुरन्त अगाध संसाररूपी कीचडमे फसे हुए जीवो मे से ऐसा कौनसा जीव है जो मित्र व शत्रु न हुआ हो? व्यतीत हुआ काल अनन्त हो चुका है। जिसमे अनन्त परिवर्तन समा जाते हैं। इस अनन्त कालमे अनन्त बार जन्म लेने वाले इन प्राणियोके ऐसे-ऐसे जीवोके समागम हुए है कि कोई कभी, कोई

कभी इसके बन्धु हुए हैं, परिजन बने है और वे ही के वे ही सब किसी भवमे शत्रु बने है। मित्रता और शत्रुता की तो नाना भवोकी क्या कहानी कहे? इस ही भवमे जो आज मित्र हैं वे अगले कभी शत्रु बन जाते है, और जो आज शत्रु हैं वे कारण पाकर कभी मित्र बन जाते हैं। वस्तुत किसी जीवमे शत्रुता और मित्रताका निर्णय नही है कि यह जीव किसीका शत्रु ही रहा करे अथवा यह जीव किसीका मित्र ही रहा करे। यह सब कषायोके मिलने और न मिलनेका खेल है। जिस पुरुषसे हमारी कषाय मिल जाती है, जैसी कषाय हम रखते है उसही प्रकारकी कषाय दूसरेमे हो तो बस मित्र बन गए। हमारी कषाय हो और तरहकी और दूसरेकी कषाय हो और प्रकारकी, हमसे विरुद्ध तो शत्रु बन गये।

अज्ञानियोका खेल—जरासी देरमे मित्र बन जाना, जरासी देरमे शत्रु बन जाना यह सब क्या है? बच्चो जैसा खेल है। जैसे बालक एक जगह मिलकर खलते है, पर थोडे ही समय खेल पाये कि कुछ जरासी बात ऐसी बन उठी कि आपसमे लडाई हो गयी, हाथापाई हो गयी। खेल छोडकर अपने दरवाजेसे निकलकर घर पहुँच गये और थोडी ही देर बाद घरसे निकल कर फिर मिलजुलकर खेलने लगे। यह क्या है? क्षणिकमे कषाय मिल गयी, क्षणिकमे कषाय न मिली और उससे यह शत्रुता और मित्रताका खल चल रहा है। ऐसे ही ससारी प्राणियोमे विषयसाधनोका साधनभूत कषाय बन जाय तो वे मित्र हो जाते है और विषय साधनोमे कोई बाधक बन जाय तो वे शत्रु हो जात हैं।

अपनी संभालके कर्तव्यपर दृष्टि—भैया! अपने आपको सभालने का बहुत महत्वपूर्ण कार्य पडा हुआ है। किसी दूसरेपर क्या दृष्टि देते हो? उपेक्षा करो, ज्ञाता द्रष्टा रहो। अपने आपके परिणामोकी सभालपर अधिक दृष्टि देनी चाहिये। क्योकि इस लोक मे किसी भी जीवका कोई अन्य शरण नही हो सकता। खद जैसा करेगे वैसा भोगेंगे। अतएव अपनी करनीका सुधार होना चाहिये। पापोकी बात हिसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह अथवा क्रोध, मान, माया, लोभ अथवा पञ्चेन्द्रियके विपयोके भोग आदिकमे आसक्त न हो और अपने आपके स्वरूपके विचार सहित शुभ अथवा शुद्धपथमे वृत्ति जगे, यही है अच्छे होनहारकी बात।

प्रीति अप्रीतिके हठके परिहारमे लाभ—जगतके जीवोमे हम किससे प्रेम करे? जो आज इष्ट जच रहा है वह अनेक वार विरोधी घातक प्राण लेने वाला शत्रु बना। किससे आज हम द्वेष करें? जिससे हम द्वेष करते है वह अनेक वार हमारा मित्र विषयसाधक बंधु परिजन बना है। जब सभी जीव कभी कोई शत्रु हुये है, कभी कोई बन्धु हुये हैं तो

उनमे प्रीति अप्रीति करनेका एकान्त कैसे किया जाय ? और फिर प्रेम और द्वेषके परिणमन विभाव है। बाह्यपदार्थोंकी ओर आकर्षण होने पर ऐसी प्रवृत्ति होती है, वह सब जीवका अहित है। इन कल्पनाओको त्यागे और अपने स्वरूपस्मरणकी ओर आये।

भूप कृमिर्भवत्यत्र कृमिश्चामरनायकः।
शरीरी परिवर्तेत कर्मणा वञ्चितो बलात् ॥१३०॥

देहियोंका विचित्र परिवर्तन—इस ससारमे यह प्राणी कर्मोसे बलात् ठगा गया है। राजा तो मरकर कीडा बन जाता है और कीडा मरकर देव बन जाता है। ऐसी नीची गतिसे उच्च और उच्चगतिसे नीच गति पलटती रहती है। ससार नाम परिभ्रमणका है, परिवर्तनका है। यही तो एक दु ख है। उच्च गति प्राप्त की, उच्च स्थिति प्राप्त की और उसके बाद नीची गति मिली। इसमे क्या होता है ? नीची स्थिति मिले तब बड़ा क्लेश मानता है यह। अथवा इसे क्या पता कि पहिले मैं क्या था, अब क्या हूँ। किन्तु जो भी स्थिति मिलती है उसही मे अनेक कल्पनाएं बना लेता है।

सतोषकी रेखाका अदर्शन—अहो, कहा सतोष करे यह जीव ? कौनसी रेखा संतोषकी है कि जहा यह जीव टिक जाय ? धनकी दिशामे सतोषकी रेखा कहीं नहीं मिलती। लौकिक विद्यावोकी दिशामे सतोषकी रेखा कही नही मिलती, ऐसे ही धर्मकी समाजकी दिशामे सतोष की रेखा कही नही मिलती। कितना धन हो जाय तो सतोष हो सकता है, इसका कोई परिमाण नही है ? ऐसे ही लौकिक ज्ञान कल्याणभावनासे रहित पुरुषका ज्ञान कितना बन जाय कि वहाँ सतोष हो इसकी भी रेखा कहो नही है। आविष्कारो पर आविष्कार बनते जाते है, आगे जिज्ञासा बढती है, अपने विकल्प और लम्बे करते जाते है। लोकमे यश और नामकी दिशाओमे भी कोई रेखा ऐसी नही कि जहाँ यह जीव संतोष कर सके। कभी कोई गाँवका ही नेता बन गया तो यह बडो खुशो मानता है। देखो अबकी बार हम म्यूनिस्पिल्टीके मेम्बर बन गए। पर इतनेसे वह सतोष नहीं करता। कुछ समय बाद इच्छा होती है कि मैं चेयरमैन बन जाऊँ, पर इतने से भी चैन नही मानता वह। फिर जिलेका, प्रान्तका, देश भरका और फिर विश्व भरका नायक बनना चाहता है।

अज्ञानका संकट—प्रत्येक सासारिक स्थितिमे इसके सकट लगे रहते है, किसी भी स्थितिमे हो, जो देशका मालिक है उसके संकट उसकी तरहके है, जो गावका नायक है उसके सकट उसकी तरहके है। सकट सब पर लदे हैं और उसका कारण बाह्यपरिस्थिति नही है कि इसपर देशभरका बोझ है इस कारण सकट हैं, इस इस तरहका सचय है या

जमीदारी है इस कारण सकट है, यह बात नही है। सब संकटोका मूल अज्ञानभाव है। आत्माका स्पर्श न हो सके, आत्माकी अनुभूति न जगे, सबसे निराला सूक्ष्म, अछद्य, अभेद्य, किसीको पकडमे न आने वाला, किसीके साथ किसीका नाता नही, सम्बन्ध नही, ऐसे निज सहजस्वरूपकी दृष्टि नही जगी इसी कारण यह अपने पख बहुत फैलाना चाहता है। यही सब क्लेशोकी जड है।

ससारकी अनभिलष्यता—भैया! इस ससारमे क्या चाहते हो? जब यह स्थिति बन रही है कि राजा तो मरकर कीडा बन जाय और छोटे-छोटे तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय मर कर देव बन जायें। जब यह स्थिति है तो यहा किस बातमे रमा जाय? यहा कोई रमने का स्थान नही है। अपने आपके अन्तःस्वरूपका उपयोग द्वारा सिंचन बना रहे तो इसमें वह बल बनता जायेगा कि जिससे सकटोके सहनेकी शक्ति रहे और यथार्थ ज्ञाता द्रष्टा रह सकें। इतनी भर तो सारभूत बात है और बाकी तो सब लोकाचारमे लोकदृष्टिसे ठीक माना जाता है, वस्तुत तो वह सब विरूपक विपदा है। यह जीव कर्मोंके वश होकर जगह-जगह ठगा जाता है। विषयोका लोभ हो तो उसमे यह जीव ही ठगा गया। कषायो की जागृति हो तो उससे यही जीव ठगा गया।

वर्तन व कर्तव्य—भैया! कोई किसीका क्या बिगाड करता? खुद दुर्भाव करता और खद ठगा जाता। ऐसे इस ससारमे किसी भी पदमे किसी भी स्थितिमे रमण करने का यत्न न करे। हो रहा है उसे एक गले पडे बजाये सरेका बात जाने। क्या करें? बहुतसे मित्रोके साथ मजाक कर रहे थे कि मजाक मजाकमे ही एक मित्रको नीचा दिखानेके लिये उसके गलेमे ढोल डाल दिया तो वहा वह क्या करे? अगर कुछ क्रोध करने लगे तो उससे तो मजाक और कई गुना बढ जायेगा। उस समयका विवेक तो यही है कि दो पतली डडी उठाये और घूम-घूमकर उसे बजाना शुरू कर दे। इससे मित्रो के द्वारा किया हुआ मजाक खत्म हो जायेगा। ऐसे ही क्या है? इस ससारमे अनेक परिस्थितिया बन गयी हैं। गृहस्थीका समागम, मित्रजनोका समागम, अनेक अनेक प्रकार की स्थितिया हैं, उनमे हम क्या करें? बस जैसे निर्वाह बने, जैसे इनसे सुलझना बने उस तरहका उपाय करलें। पर बात मनमे सही जानते रहे और यत्न करें अपने अन्त स्वरूपकी ओर लगे रहने का।

ससारमे सम्बन्धोकी मायारूपता—कहो माता मरकर पुत्री बन जाय, बहिन मरकर स्त्री बन जाय, कहो वही स्त्री मरकर पुत्र हो जाय, पिता मरकर पुत्र हो जाय और वही मरकर पुत्रका पुत्र हो जाय, इस प्रकार कितने ही परिवर्तन इस ससारमे हो रहे हैं।

किसको क्या एकान्तत. माने ? ये सब ससारकूपमे रहटकी घड़ियां ऊपर आयी, नीचे गयी, जैसे यह चक्र चलता है इस प्रकार यह सब सम्बन्धो का चक्र है। आज यह कुछ है, कल यह कुछ हो जायेगा। आज पिता है, यही उसीका पुत्र हो जाय। तो यो ये कोईसे भी सम्बन्ध कही जमकर नही रह सकते। अमुक जीव मेरा यह है ऐसा तो निर्णय नही है, कैसे मायाजाल है, इन्द्रजाल है ! इन्द्र मायने आत्मा उसका यह जाल है। कभी कुछ, कभी कुछ अथवा परमार्थरूप कुछ नही है, बनना बिगड़ना ही बना रहता है।

कर्त्तव्यका निर्णय—भैया ! गभीरतासे सोचिये परिवर्तनशील इस ससारमे हमारा क्या कर्तव्य है, इसी परिवर्तनमे बहते चले जायें क्या ? कोई ठौर कोई आश्रय कोई आलम्बन यहाँ परमार्थभूत नही है, जिस एक को पकडकर जिए। एक पर अपना श्रद्धान, ज्ञान, आचरण करके शरण लिए रहे तृप्त और सन्तुष्ट रह सके—ऐसा काम, तो केवल अपनेको निर्मल ज्ञानमात्र अनुभवमे लेना है। इसही कार्यसे उद्धार है, अन्य किसी भी उपायसे अपना कल्याण नही है। अठारह नातेकी कथा प्रसिद्ध है। तीन व्यक्तियोमे परस्परमे ६-६ नाते हो गए और बेढगे नाते। यह सब एक ससारका ससरण है। यहाँ सारतत्व कुछ नही है। कोई भी स्थिति बडप्पन की नही है कि जहाँ हम अपनेको तृप्त कर सके। कल्पनासे थोडी देरको मौज मनानेसे यह चूकता नही है, फिर अन्य कल्पनाएं ऐसी बन जाती हैं कि वहाँ अपने आपको दुखी बना लेता है। बचपनमे और तरहका दुख। बड़े हुए, परिचय बना तब और तरहका दुख। कुछ इज्जत बढी और बड़े बने, उम्रके बड़े हुए, लोकमे बड़े हुए तब और तरहके दुख। जरा-जरा सी बातमे अपना अपमान महसूस करना, यह विपदा इस अज्ञानी जीव पर हर जगह छायी हुई है। कहा जाय, कहाँ छुपे, कैसे बचे। जब तक अपने सत्य स्वरूपका भान नही होता तब तक जीव चैन का पात्र नही हो सकता।

> श्वभ्रे शूलकुठारयन्त्रदहनक्षारक्षुरव्याहतैः।
> स्तिर्यक्षु श्रमदुःखपावकशिखासभारभस्मीकृतैः ॥१३१॥
> मानुष्येऽप्यतुलप्रयासवशगैर्देवेषु रागोद्धतैः।
> ससारेऽत्र दुरन्तदुर्गतिमये बम्भ्रम्यते प्राणिभिः ॥१३२॥

नरकमे भ्रमण और क्लेश—इस दुरन्त दुर्गतिरूप ससारमे यह जीव यो निरन्तर भ्रमण करता है। कभी यह जीव नरकोमे गया तो वहा अनेक तरहके दुख है, किसी को शूली पर चढा दिया किसीको कुल्हाडीसे काट डाला, किसी को घानी मे पेल दिया, किसीको आगमें पटक दिया, किसीको छारसे ढक दिया, किसीको अनेक शस्त्रोसे पीड़ा पहुँचाया, यो अनेक तरहके दुःख उन नरकोमे प्राप्त हुए हैं और इतना ही नही इस देहके तिल-तिल बराबर टुकड़े फिर मिल जाते है, मरते नही हैं। देहकी भी कसी-कैसी विचित्रताए है ? यहां किसी एक आदमी की हत्या कर दी जाय तो उसे फाँसीका दड दिया जाता है। कोई पुरुष उद्दण्ड होकर हजारो आदमियोकी हत्या करा दे, क्रूरता ही बनाये रहे तो उसका

दंडविधान यहां क्या हो सकता है ? उसका दड तो ऐसी नरकगतिमे उत्पन्न होना ही है कई बार शरीर छिद जाय, देहके तिल-तिल वरावर खण्ड हो जाये फिर भी मरे नही ऐसे दुःख इस जीवने सहे हैं ।

तिर्यञ्चोमे भ्रमण और क्लेश—तिर्यञ्चोमे उत्पन्न हो तो वहा भी वडे परिश्रमका दु ख भोगना पडता है। शक्तिसे भी अधिक बोझ लादा जाता, चाबुक मारकर उन्हें चलाया जाता। बेचारे वे पशु जीभ निकालते जाते है फिर बड़ी तेजी से चाबुक मार मारकर उनसे बोझा ढुलाते हैं। डडोकी मार अथवा कोलियोसे चुभोया जाना, यह सब उनको चलने के लिए प्रेरित करते हैं। वे पशु किसको अपने दर्दकी कहानी सुनायें ? किसी-किसी पशुको यो ही अग्निमे डाल दिया ज ता है। मासभक्षी लोग जिस पर वश नही चलता उसे तो मारकर पीछे पकाकर खाते है और जिसपर वश चलता है उसे सीधा यो ही अग्निमे डाल देते हैं। कितनी क्रूरता है एकेन्द्रिय व विकलत्रिकोके तो क्लेश ही अटपट हैं। यो नाना प्रकारसे क्लेश इस तिर्यञ्च गतिमे यह जीव सहता है।

मनुष्यभवमें क्षुब्ध प्रयास—मनुष्य हुआ तो क्या, वहां भी बडे-बडे परिश्रमके क्लेश सहता है। रात दिन विकल्प और बहुतसे कामोके करने का यत्न इन सबका श्रम सहता रहता है। कल्पनाए तो बहुतकी, पर अन्त मे उनसे फल क्या मिला ? लो जीरो उत्तर आयेगा। कितने वर्ष लगा दिए मोहवश दूसरोकी रक्षामे रागमें, प्रसन्न करनेमे ? बहुत-बहुत निर्वाह किया सब तो लोगोका, अन्तमे इसके हाथ लगा क्या ? यह मेरा और फिर अकेला आ गया ! मिला क्या ? कुछ भी नही। यह मनुष्य भी रागवश बडे-बडे प्रयास करके केवल सक्लेशोको सहता है।

देवलोकमें बरबादी—कभी देव हुआ तो वहा राग से उद्दण्ड रहा करता है। खाने पीनेका तो दुःख वहां है नही, दुकान, रोजगार करनेका तो वहा काम है नही। वैक्रियक शरीर है। तो ऐसी सुविधामे उनके राग प्रबल हो जाता है और रागदाहसे जल भुनकर वे अपने जीवनको यो ही समाप्त कर देते हैं। सागरो की आयु उनकी होती है, किन्तु उस सुखमे ऐसा मस्त हो जाते हैं कि सुखका समय कैसे व्यतीत हो गया ? यह वे जान नही पाते।

तथ्यकी बात—यो यह जीव चारो गतियोमे भ्रमण कर करके नाना क्लेशो को सहता है। क्या सार है ? निर्धन धनके बिना दु खी है। धनी तृष्णाके कारण दुःखी है। मूर्ख ज्ञानके न होनेसे दु खी हैं, कुछ पढ लिख भी गए, पर लौकिक ज्ञानकी तृष्णासे, लोगोके द्वारा सम्मान अपमान आदिकी शकासे कल्पनाओसे दु खी रहा करते हैं। यो ही सभी बातो मे लगा लो। तथ्यकी बात यह है कि यह संसार सुखरूप नही है, असार है। यहा रमण किये जाने योग्य कुछ भी नही है। हितपद रम्य तो एक निज सहजस्वरूप है, उसको ओर झुकाव हो तो कल्याण है।